

शब्दामृत धारा

प्रथम भाग



शब्द प्रताप सत्संग और आश्रम
के संस्थापक परम सन्त सतगुरु
हुज़ूर दाता दयाल द्वारा
रचित

मैनेजिंग कमिटी
शब्द प्रताप सतसंग, ग्वालियर
द्वारा प्रकाशित



द्वितीय संस्करण
१९६१

भगवती प्रिंटिंग प्रेस में छपी



शब्द प्रताप

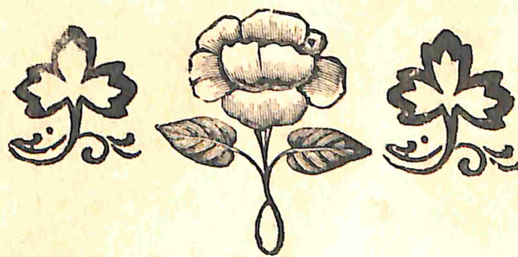
परमसिन्धु चैतन्य से, उठी दया की धार ।
परम सन्त सतगुरू हो, आई जगत मँझार ॥

धारा धारा नाम निज, 'धारा सिन्धु प्रताप'।
ताहि सुमिरि जग जीव सब, तरैं काटि कलि श्राप ॥

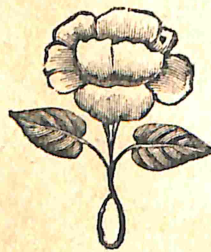
श्यामलाल निज दास से, रचवाया यह ग्रन्थ ।
ताके पढ़ने से खुलै, पूरण मुक्ती पंथ ॥

निज सतगुरु पद कँवल में, हाथ जोड़ सिरधार ।
करूँ प्रकाशित ग्रन्थ यह, गुरु आदेश अनुसार ॥

सतगुरु से ये है विनय, भूल चूक जो होय ।
क्षमा कीजिये कृपा कर, लखि अजान जन भोय ॥



अनुक्रमणिका



शब्द सूची

टेक | सफा नम्बर

अ

आ

टेक	सफा नम्बर

ग

घ

च

छ

टेक सफा नम्बर

ज

त

टेक सफा नम्बर

प

ब

शब्द सूची

टेक सफा नम्बर

स

टेक | सफा नम्बर



शुद्धि पत्र.

पृष्ठ संख्या	कड़ी संख्या	जैसा छपा है	जैसा छापा जाना चाहिये था.
३	फुट नोट	अन्त में	बिल्कुल.
४	५३	कोई नर कोई	कोइ नर कोइ
८	फुट नोट	बहुत दुब	दुख.
२५	४	सोज़	सोज़[२]
२६	२७	अधीना	आधीना
३०	१	अद्भुत	अद्भुत
३३	१३	भानु	भानु[१]
३३	फुट नोट		१. सूरज
४५	१८	गुरु	गुरू
५२	१०	दपण	दर्पण
५३	२०	नकन	नर्कन
७३	फुट नोट		चश्मे = स्रोत
७३	८	कोई	कोइ.
७४	६	संग	सँग.
८२	१२	बशिष्ठ	बशिष्ठ.
८६	१	संतसँग	सतसँग.
८९	८	अनमोल	अमोल.
९२	९	बँधन	बंधन.
९५	शब्द ९४. ॥टेक॥	रहा	रही.
९५	२	छान	छानै.
९६	४	उज्वल	उज्ज्वल.
९६	७	नई नई	नइ नइ.
१०४	१	गुरु	गुरू.
१०७	१९	कोय	होय.
१०८	२५	ररंग	ररँग
११०	शब्द नं.	सत्गुरु महिमा	{ सत्गुरु महिमा शब्द ११

पृष्ठ संख्या	कड़ी संख्या	जैसा छपा है	जैसा छापा जाना चाहिये था.
११५	६	बँधन	बंधन
१२०	.फुट नोट	आदि रूप सदा रहने वाला	हमेशा
१२९	.फुट नोट	चरन	चरने
१३३	१५	का	की.
१४६	१६	हक़ तो	तो हक़.
१४८	८	उनको	इनको
१५५	११	जोव	जीव
१५६	१५	दापक	दीपक
१५८	.फुटनोट	हाय हाय करना	आह भरना.
१५९	१२	नोचे	नीचे.
१६४	४	दया करो अब	करो दया अब.
१६९	१६	अद्भुत	अद्भूत.
१७१	७	गुरु	गुरू
१९३	.फुटनोट	सिरजनहार	मालिक कुल.
१९६	१९	गुरु	गुरू
२०८	पद २	लगा	लगी.
२२३	शब्द २१२ ॥टेक॥	का	की.
२२७	१०	गाऊगी	गाऊँगी
२३४	१८	सिन्धु	सिँधु.
२३६	१९	सेबक	सेवक.
२४३	१३	अड़	अंड
२५५	१	भिरै	फिरै.
२५६	४	सन्मुख़	सन्मुख.
२६८	६	जावें	जाबें.
२६९	२६	बना	बनी.
२७४	२	ओर	और.
२७६	२२	अह	अहं
२८०	१०	जा	जो.
२८१	१३	सँभव	संभव.



शब्दामृत धारा

भाग १

शब्द प्रताप

शब्द १

मंगलाचरण

'धारा सिन्धु प्रताप' को, संख अनन्त प्रणाम ।
गुरु प्रताप ने दया कर, प्रगट कियो यह नाम ॥१॥
सिन्धु धुनी है सिन्धु में, धार में धा रा होय ।
पूरित सब स्थान में, कहीं प्रगट कहिं गोय[1] ॥२॥
जड़ चेतन की रचन सब, विस्तृत[2] ठौर अपार ।
आतम और परमात्मा, वही धार भण्डार ॥३॥
दोनों मिलकर एक भये, धारा सिन्धू नाम ।
नाम 'प्रताप' मिलाय कर, ताहि जपो निष्काम ॥४॥

१-गुप्त, २-फैली

चौपाई

प्रेम गुरू का हिय में धारो । 'धारा सिन्धु प्रताप' उचारो ॥५ ॥
जब यह नाम जपो अंतर में । गुरु स्वरूप को ध्याओ तिल में ॥६ ॥
तब धुन शब्द प्रगट हो जावे । सूरत सुषमन में खिंच जावे ॥७ ॥
गुरु अरु नाम प्रताप से माया । मन अरु काल कर्म की छाया ॥८॥
दूर होंय निर्मल होय सूरत । प्रगटै नूरानी गुरु मूरत ॥९ ॥
पिंड अण्ड ब्रह्मण्ड के पारा । पहुँचै सत्तपुरुष दरबारा ॥१०॥
परमानन्द अमर जहँ पावे । काल देश में फिर नहिं आवे ॥११॥
अलख अगम में करै निवासा । भोगै अचरज रूप विलासा ॥१२॥
धारा सिन्धु प्रताप सुधामा । परम शान्ति में करैं विश्रामा ॥१३॥
धन धन धन सतगुरू हमारे । नित पुकार रहुँ चरण अधारे ॥१४॥

भेदबानी

शब्द २

पिता एक सत् सिन्धु है, धारें पुत्र अनन्त ।
धारें माया संग मिल, विश्व अपार रचन्त ॥ १ ॥
वस्तु असल में एकहि जानो । रूप अनेक एक के मानो ॥२ ॥
एक से दोय तीन फिर चारा । बढ़त बढ़त नहिं रहा शुमारा॥३ ॥
सिन्धू धारा दोऊ चेतन । माया जड़ प्रकृती उनसे भिन ॥४ ॥
जड़ हू चेतन ने प्रगटाई । ज्यों प्रगटावे दूध मलाई ॥५ ॥
चेतन सिन्धु में केन्द्र अनामी । सोई विश्व का पूरण स्वामी ॥६ ॥
कुल्ल विश्व को देही जानो । वामें केन्द्र मग्ज़ पहिचानो ॥७ ॥
उठीं केन्द्र से धारें बहुतक । प्रगटा बड़ा शब्द धुन्यात्मक ॥८ ॥
सो धारें आतम कहलाईं । भिन्न[१] केन्द्र के बाहर छाईं ॥९ ॥

[१] अलग

एक बड़ी धारा भइ जारी। अगम पुरुष बन दूर पधारी ॥१०॥
ज्यों आरामगाह तज राज़ा। तख्तगाह में आन विराजा ॥११॥
अगम पुरुष फिर धार बढ़ाई। अलख पुरुष का रूप रचाई ॥१२॥
वहां से फिर धारा भइ जारी। आगे बढ़ सतरूप धरारी ॥१३॥
तीनों पुरुष रचे निज लोका। परम विलास स्थान अशोका ॥१४॥
चतुर रूप परमातम प्रीतम। प्रेमी भईं सर्व बुँद आतम ॥१५॥
पूरन निर्मल आनँद देशा। दुख की छांयहु का नहिं लेशा ॥१६॥
पूरन निर्मल प्रेम समाना। नहीं द्वेष का पता निशाना ॥१७॥
शोभा अकह अपार अनन्ता। केलि करैं सुरतें सँग कंता ॥१८॥
अचरज लीला नइ नइ नित नित। धारैं सुरतें संग परम पति ॥१९।
कहिं विलास कहिं परम शांती। रूप अनन्त प्रकाश क्रांती ॥२०॥
बहु प्रकार अमृत के रस जँह। भांति अनेकन धुनें उठें तँह ॥२१॥
भांति अनेकन उठैं सुगन्धा। मलयागिर अनन्त जँह मन्दा ॥२२॥
और अनंत भांति के रस वहँ। नहिं मिसाल उनकी कोई यहँ ॥२३॥
अकह मनोहर सुरतन की छवि। परिपूरन त्रिकाल ज्ञानी सब ॥२४॥
विश्व देह का यह है शीशा। जहां बसैं सर्वोपरि ईशा ॥२५॥
धारा सिन्धु का यह निज देशा। गुरु प्रताप जहँ किया प्रवेशा ॥२६॥

केवल चेतन शुद्ध की, रचना बहुतक काल।
सर्वोपरि सर्वान्तरी[२], राखी परम दयाल ॥२७॥

वह चैतन ही चैतन धाम। वहां न जड़ता का कहिं नाम ॥२८॥
जहां पदारथ एकहि होय। भिन्न विरुद्ध वस्तु नहिं कोय ॥२९॥
हो नहिं सकता तहां विचार। बिन विचार है ज्ञान असार ॥३०॥
सुख का बोध नहीं बिन ज्ञान। बिन सुख प्रेम न होय निदान[३] ॥३१॥

२ सब के अन्तर मे रहने वाली, ३ अन्त में, ।

रचना सब बिन प्रेम अनंदा । रहती रूखी फीकी मन्दा ॥३२॥
ताते सिन्धू मौज उठाई । जड़ चेतन की रचन रचाई ॥३३॥
सुरतें सात उतारीं नीचे । सूक्षम जड़ परमाणू बीचे ॥३४॥
सोहँ नाम सुरत इक कीन्ही । वाने भँवर गुफा रच लीन्ही ॥३५॥
आगे तिमिर[1] खण्ड मैदाना । पांच सुरत को दिया ठिकाना ॥३६॥
सुरत सातवीं अक्षर नामा । सबसे नीचे रचिया धामा ॥३७॥
तिमिर खण्ड का नाम महासुन । ताके नीचे है दूसर सुन ॥३८॥
चेतन से निर्मल जड़ माहीं । अनुभव काज सुरत बहु आईं ॥३९॥
जड़ मलीन बिन अनुभव पूरा । हुआ नहीं, सुख रहा अधूरा ॥४०॥
ताते जड़ मलीन अस्थाना । सिन्धू मौज सृष्टि की ठाना ॥४१॥
आतम धारा और उतारी । खींच गुबार श्याम तन धारी ॥४२॥
मलिन सृष्टि की चाह भराई । फिर वासे विनती करवाई ॥४३॥
धारा ने मंज़ूरी पाई । मान सरोवर नीचे आई ॥४४॥
रही अकेली भई दुखारी । सृष्टि रचन की शक्ति न धारी ॥४५॥
सत्त पुरुष को विनय सुनाई । तब उन धार इक और उपा[2]ई ॥४६॥
पीत वर्ण वह धारा आई । उत्पति का बीजा सँग लाई ॥४७॥
यह दो धारें भईं नर मादा । दोउ मिल काज सृष्टि का साधा ॥४८॥
पुरुष प्रकृती नाम धराई । पहले सुन की रचन कराई ॥४९॥
जो सुरतें पहले आईं थीं । सोहम् तन में लिपटाईं थीं ॥५०॥
सो सब उतर सुन्न में आईं । हं तन पर तन काम चढ़ाईं ॥५१॥
काम अंग से सृष्टि उत्पत्ती । जारी करी पुरुष प्रकृती ॥५२॥
आपस में संजोग कराई । कोई नर कोई मादा उपजाई ॥५३॥
नर मादा संजोग बढ़ाई । बहु दीपन की रचन रचाई ॥५४॥

१ अंधकार से भरा हुआ लोक, २ उत्पन्न की ।

सत्तलोक से बँधा सिल्सिला । सोहं महा सुन्न हो निकला ॥५५॥
सुरतन की आमद भई जारी । आई क्रम क्रम[1] सुन्न मंझारी ॥५६॥
नर मादा से उतपन होकर । लागी बसन शक्ति निज खोकर ॥५७॥
यहँ भईं धार असंखन जारी । इक इक रची त्रिलोकी न्यारी ॥५८॥
दो धारें मिश्रित[2] हो धाईं । नीचे माया ब्रह्म कहाईं ॥५९॥
आगे जो कुछ हाल बखानो । सो इस त्रयलोकी का जानो ॥६०॥

जहां भिन्नता अधिक थी, परमाणू अस्थूल ।
धार उतर स्थित[3] किया त्रयगुण सृष्टी मूल[4] ॥६१॥

माया ब्रह्म रचा अस्थाना । ओंकार पद सोई कहाना ॥६२॥
सृष्टि करन का सबहि मसाला । जीव फँसाने का जंजाला ॥६३॥
किया इकट्ठा ब्रह्म और माया । जासे बनी सुरत की काया ॥६४॥
रज सत तम त्रय गुण प्रगटाये । तीन सुरत त्रय देव बनाये ॥६५॥
ब्रह्मा विष्णु महेश कहाना । तीन गुणन के तीन प्रधाना[5] ॥६६॥
सूक्ष्म पांच तत्व प्रगटाये । प्रत्येक[6] पांच प्रकृति धराये ॥६७॥
पृथ्वी जल वायू और अग्नी । और अकाश किये सब त्रिगुनी ॥६८॥
शब्द रूप स्पर्श[7] गन्ध रस । रहीं तत्व प्रत्येक में यह बस ॥६९॥
ब्रह्म ब्रह्मण्डी मन उपजाया । ताकी दीन्ह सुरत को काया ॥७०॥
क्रोध धार पुनि उन उपजाई । सो मन के तन माहिं भराई ॥७१॥
बहुत काल इतनी रही सृष्टी । पुनि उन अग्र[8] पसारी दृष्टी ॥७२॥
उतरे माया ब्रह्म अगाड़ी । सुरतें तिनके चलीं पिछाड़ी ॥७३॥
धारें ठहरीं इक सुन जाई । ज्योति निरंजन नाम धराई ॥७४॥
सहस धार यहँ दीन्ह पसारी । अपन रूप से आप निकारी ॥७५॥
तत्व अरु गुण धारें सँग आईं । सो आगे नीचे फैलाईं ॥७६॥

१. धीरे-धीरे, २. मिली हुई, ३. कायम, ४. जड़, ५. मुखिया, ६. हर एक, ७. छुए जाने का गुण ८. आगे

अपना अंश निरंजन राई[1] । सुरतन का निज मन करवाई ॥७७॥
लोभ मोह यहँ से उतपाने । सुरतन के तन मांहि समाने ॥७८॥
इतनी ब्रह्म सृष्टि कहलाई । आगे हाल सुनो अब भाई ॥७९॥
नीचे फिर इक अंड बनाया । ब्रह्मा विष्णु महेश समाया ॥८०॥
धार निरंजन से इक आई । अंड के तले विराट कहाई ॥८१॥
यहां से रचना पिण्ड कहाई । ताका रूप विराट बनाई ॥८२॥
प्रथम भाग षट[2] लोक बनाये । माया अरु त्रय देव रचाये ॥८३॥
लोक विराट अरु माया लोका । तीसर धाम महेश्वर रोका ॥८४॥
विष्णू चौथा धाम बनाया । पंचम ब्रह्मा लोक कहाया ॥८५॥
छठे लोक में बैठे गणपति । मध्य रहे सब सुर अरु सुरपति[3] ॥८६॥
पिंडी मन के दो अस्थाना । लोक विराट अरु शिव का थाना ॥८७॥
उतरत में स्रुत को इन घेरा । तीसर तिल और हृदय बसेरा ॥८८॥
यह तो लोक मुख्य बतलाये । छोटे लोक अनन्त रचाये ॥८९॥
फिर भइ चार खान की रचना । लख चौरासी योनी तपना ॥९०॥
यह सब सूरज मंडल माहीं । पिंड सृष्टि के बीच रहाहीं ॥९१॥
नीचे सात लोक की रचना । महा विषम[4] जड़ जाय न बरना ॥९२॥
तल और अतल वितल स्थाना । नीचे सुतल तलातल थाना ॥९३॥
ताके नीचे बसा रसातल । फिर पताल जहँ रहें राजा बल ॥९४॥
यह संक्षेप[5] सृष्टि का लेखा । जो सन्तन निज नैनन देखा ॥९५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया । सो उनके सेवक ने गाया ॥९६॥

रचना के प्रति लोक का, रस्ता है घट माहिं ।
बाहर से पहुँचे नहीं, घट से गुरु पहुँचाहिं ॥९७॥

जीव उतार समय तन धारे । लोक लोक में न्यारे न्यारे ॥९८॥

१. राजा, २. छै, ३. इन्द्र, ४. भयंकर, ५. खुलासा, ६ हर एक

तन पर तन चढ़ाय सुत आई। मनुष योनि में यह तन पाई ॥९९॥
प्रति तन में जो दृग[1] अस्थाना। उच्च[2] लोक मारग का थाना ॥१००॥
पहुँचे अंतर सुत जिस तन में। पावे तन का लोक गगन[3] में ॥१०१॥
भेद मार्ग का गुरु बतलावें। निज किरपा से सुरत चढ़ावें ॥१०२॥
द्याल देश मस्तक ऊपर है। जो निर्मल चैतन निज घर है ॥१०३॥
मस्तक में ब्रह्मण्ड पसारा। मस्तक नीचे अण्ड उजारा ॥१०४॥
ताके तले विराट समाना। तहँ से नीचे पिंड अस्थाना ॥१०५॥
माया शक्ति कण्ठ में राजैं[4]। हिरदय पर शिव गौर विराजैं ॥१०६॥
विष्णु लक्ष्मी नाभ अंतरी। ब्रह्मा सावित्री काम इन्द्री ॥१०७॥
गणपति रहें गुदा अस्थाना। नीचे सब मृत लोक बसाना ॥१०८॥
लोक तलादि हैं औरहु नीचे। महा मलीन शून्य के बीचे ॥१०९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बखाना। पुनि उनके दासन ने जाना ॥११०॥

शब्द ३

चेतन केन्द्र धाम अति निर्मल। पूरन शुद्ध पवित्र अरु उज्ज्वल ॥१॥
सिन्धु मौज उत्थान[5] ठिकाना। कुल्ल हुकुमरानी का थाना ॥२॥
मालिक कुल्ल ज्ञान भंडारा। कुल रचना का कुल करतारा ॥३॥
यहां से ले पाताल लोक तक। लोक राह में बस रहे बहुतक ॥४॥
बढ़त मलिनता गई क्रम-क्रम से। घिरत गई आतम बुंद भ्रम से ॥५॥
आई तज निज निर्मल देशा। करने को अनुभव दुख क्लेशा ॥६॥
माया ब्रह्म तीन गुण देवा। नियत[6] हुये जीवन दुख देवा ॥७॥
प्रथम सुरत में अहं भराया। परम पिता से द्वेष कराया ॥८॥
फिर स्वतंत्र इच्छा प्रगटाई। सोई कर्म की नीव जमाई ॥९॥

१ आंख २ ऊंचे ३ आकाश ४ शोभित हैं ५ उठने का ६ मुकर्रर।

लोभ मोह और क्रोध उपजाये। गुण तत मन इन्द्री प्रगटाये ॥१०॥
भांति भांति के भोग रचाये। अस जीवन से कर्म कराये ॥११॥
कर्म कराय जाल में फांसा। थोड़ा सुख दिया अधिक तिरासा[1] ॥१२॥
ब्रह्म बन गया काल जीव का। पता भुलाया परम पीव का ॥१३॥
दे ब्रह्माण्ड में सुक्ख विशेषा[2]। गया बढ़ाता दुःख कलेशा ॥१४॥
तह पर तह चढ़वा काया की। महामलिनता बहु माया की ॥१५॥
लाय दिया नर देह ठिकाना। जो पूरन है कर्म अस्थाना ॥१६॥
यहां से राह दशों दिशि जाई। कर्म अनुसार भोग करवाई ॥१७॥
नर्क स्वर्ग और चारों खाना। लख चौरासी योनि फँसाना ॥१८॥
जीव हुए जब महा दुखारी। सत्तपुरुष तब दया विचारी ॥१९॥
परम धाम से धार उतारी। बन सतगुरु आई तन धारी ॥२०॥
जीवन को सब भेद सुनाया। उनका असली रूप बताया ॥२१॥
थे तुम कौन कहां से आये। काल जाल क्यों रहे फँसाये ॥२२॥
उलटन की युक्ती बतलाई। घट ही में मारग दरसाई ॥२३॥
माया की सीमा[3] को छोड़ो। परम पिता से नाता जोड़ो ॥२४॥
जनम मरण और दुख के कारन। हैं जो तुम पर चढ़े मलिन तन ॥२५॥
जितनी माया देह मलीना। उतनेहि जल्दी होवे छीना[4] ॥२६॥
उतना ही वह है दुखदाई। आयू कम दुख अधिक रहाई ॥२७॥
माया मलिन जहां कम जितनी। सुख और आयू ज्यादा उतनी॥२८॥
निर्मल ब्रह्मण्डी है माया। आयू अधिक सुक्ख अधिकाया ॥२९॥
पिंड देश परलय अस्थाना। महा प्रलय ब्रह्माण्ड ठिकाना ॥३०॥
महा प्रलय बहु परलय पीछे। होवै कभी सत्य पद नीचे ॥३१॥
सत्तलोक में परलय नाहीं। सुरतें जहां अमर सुख पाहीं ॥३२॥

१ बहुत दुख २ बहुत ३ हद ४ नाश

जो सतलोक सुरत नहिं जावे। काल जाल में फंसी रहावे ॥३३॥
आवागमन दुःख नहिं छूटैं। पुनि पुनि काल और माया लूटैं॥३४॥
ताते खोज करो सतगुरु का। उनसे लेउ भेद निज घर का ॥३५॥
ले उपदेश करहु अभ्यासा। सत्तधाम की धारो आसा ॥३६॥
दीन होय उन चरन पखारो। पुनि २ विनवो शरण सम्हारो ॥३७॥
सन्त मता है मत दयाल का। और पसारा सभी काल का ॥३८॥
और मते हैं सभी काल के। फांसन हारे माया जाल के ॥३९॥
इनमें जो भक्ती की रीतैं। सबही काल देश की नीतैं ॥४०॥
इन अनुसार चले जो कोई। कुछ दिन सुख ले पीछे रोई ॥४१॥
ताते पकड़ो सतगुरु सरना। निश्चय धर मानो उन वचना ॥४२॥
वे ही हैं सच्चे हितकारी। देवें परमानन्द अपारी ॥४३॥
'धारा सिंधु प्रताप' परम गुरु। इक दिन पहुँचावेंगे सतपुरु ॥४४॥

शब्द ४

परमारथ में तीन मत, कर्म भक्ति और ज्ञान।
सो प्रचलित[1] संसार में, उनका सुनो विधान[2] ॥ १ ॥
जप तप व्रत तीरथ अरु दाना। मूरत पूजा नदी नहाना ॥ २ ॥
हवन यज्ञ सन्ध्या और तर्पण। पठन शास्त्र और कथा कीर्तन ॥ ३ ॥
नेती धोती बस्ती किरिया। प्राणायाम आदि सब चरिया ॥ ४ ॥
और अनेक प्रकार के धर्मा। जानो ये सब कर्म सुकर्मा ॥ ५ ॥
करें जो इन्हें आस जग हिय धर। भक्ति रहित मज़दूरा सो नर ॥ ६ ॥
वे संसारी निपट स्वार्थी। ना वे भक्त न हैं परार्थी[3] ॥ ७ ॥
निशि दिन चहे करें यह करनी। छूटें नहीं जनम और मरनी ॥ ८ ॥
जो नर चाहें सिद्धी शक्ती। उनकिहु नाहिं निःकरम भक्ती ॥ ९ ॥

१ जारी २ हाल ३ दूसरे का हित करने वाले

उन्हें काल मारग में रोकैं । कुछ सुख दे पुनि नर्कन झोंकैं ॥१०॥
जोग अष्टांग करै जो कोई । कलि में सिद्धी पाय न सोई ॥११॥
गुरू दया से कोइ विरला नर । पावै सिद्धी पूरन श्रम कर ॥१२॥
उच्च लोक माया हद अन्दर । रहै प्रलय तक सुक्ख भोग कर ॥१३॥
प्रलय बाद जब फिर हो रचना । पड़ै उसे फिर जग में पचना ॥१४॥
माया हद के सब भगवन्ता । निज भक्तन के सब हैं हन्ता ॥१५॥
उनकी भक्ति करै जो कोई । कुछ दिन सुख ले पुनि नर होई ॥१६॥
पूरे कर्म कटैं नहिं वाके । सूक्षम कर्म रहैं सँग ताके ॥१७॥
प्रलय बाद वे देंय गिराई । नर तन दे फिर कर्म बढ़ाई ॥१८॥
भले बुरे फिर कर्म चढ़ाकर । पटकैं चौरासी ले जाकर ॥१९॥
कोई लक्ष ज्ञान में पागे । वाच रूप भक्ती तज भागे ॥२०॥
लक्ष रूप भगवन्त समावैं । प्रलय बाद पुनि नीचे आवैं ॥२१॥
बहुतक समय ज्ञान रस लेवैं । आखिर फिर चौरासी सेवैं ॥२२॥
वाचक ज्ञानी किस गिनती में । रहैं कुकर्मी जन पंक्ती में ॥२३॥
सन्त मता इन सब से न्यारा । जामें बसै सत्त पद धारा ॥२४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' यह भाखी । निज दासन की खोली आंखी ॥२५॥

शब्द ५

भेद द्याल अरु काल का, निर्णय किया बखान ।
द्याल मौज से काल ने, मायक रचा जहान ॥ १ ॥
द्याल पुरुष ने असल में, सुख हित रचिया काल ।
पर वाका निज काम सब, सूझत है जंजाल ॥ २ ॥
जैसे लघु बालक लखै, निज अध्यापक[१] काल ।

१ पढ़ाने वाला,

कुट पिट के लायक़ बनै, पीछे होय निहाल ॥ ३ ॥
तैसे अनुभव दुःख का, देवै स्रुत को काल।
पुनि गुरु सँग निज पद पहुंच, होवै सुरत निहाल ॥ ४ ॥
वैरी सुख और प्रेम के, हैं दुख और विरोध।
इक के अनुभव किये बिन, दूसर का नहिं बोध ॥ ५ ॥
दुख हू का नहिं बोध हो, बिना सुक्ख और प्रेम।
ताते कुछ सुख प्रेम का, रखा सृष्टि में नेम ॥ ६ ॥
सो सुख स्रुत को देन हित, काल रचे बहु पन्थ।
किये अचारज महात्मा, जिन रचि राखे ग्रन्थ ॥७॥
सो ये सब मत काल के, थोड़ा सुख पहुंचाहिं।
दे कर अनुभव सुक्ख का, दुख मात्रा अधिकाहिं[१] ॥८॥
पिण्ड अण्ड ब्रह्माण्ड में, उच्च लोक दें बास।
मृत्यु लोक में राज धन, विद्या बुद्धि विलास ॥ ९ ॥
सुख अनुभव करवाय के, नर तन दें अधिकार।
कर्म करें बल अहं में, बढ़े पाप का भार ॥१०॥
भोगन को फल पाप के, नर्क आदि जिव जाय।
अनुभव सुख पद उच्च का, दुख को देय बढ़ाय ॥११॥
दुख की पूरन मात्रा, भोग लेय जब जीव।
फिर नर तन में आय कर, पावै सतगुर पीव ॥१२॥
सो है सतगुरु सन्त मत, सब जग मत से न्यार।
निर्मल चेतन धाम पथ, सुख दे अमर अपार ॥१३॥
मारग है यह शब्द का, उठै जो घट के माहिं।
जब अन्तर स्रुत सुनै धुन, कर्म छार होइ जाहिं ॥१४॥

१ बढ़ाते हैं

सूक्ष्म तन जो सुरत के, उन सब में धुन होय।
सुन धुन तन तन वेधि[१] स्रुत, चढ़े कर्म सब धोय ॥१५॥
शब्द भरा सब विश्व में, खाली ठौर न कोय।
और शब्द सब काल के, सुषमन घाल समोय[२] ॥१६॥
सो सुषमन के शब्द का, सतगुरु भेद बताहिं।
निज बल दे करनी करा, सतपुर में पहुंचाहिं ॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, शब्द जहाज़ चढ़ाय।
दुःख अनुभवी जीव को, दें सतपुर पहुँचाय ॥१८॥

शब्द ६

'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, बतलाया निज नाम।
भेद सहित समझाइया, इक इक ध्वनि का धाम ॥ १ ॥
दो प्रकार के नाम हैं, सन्त साधु बतलाहिं।
इक कहिये धुन्यात्मक, दूसर वर्ण कहाहिं ॥ २ ॥
धुन्यात्मक अन्तर धुनी, घट घट रही समाय।
मुख द्वारे वर्णात्मक जीभ से बोला जाय ॥ ३ ॥
किरतम[३] है वर्णात्मक, गुण से लिया बनाय।
धुनहु होय वर्णात्मक, लिखी पढ़ी जब जाय ॥ ४ ॥
धुन का जो उच्चार हो, युक्ति सहित मन माहिं।
प्रगटै धुन कुछ काल में, जो गुरु दया कराहिं ॥ ५ ॥
फल वर्णात्मक जाप का, जग वृद्धी[४] में जान।
माया फांसै जाल में, कर जग भोग प्रदान ॥ ६ ॥
फल अन्तर धुन श्रवन का, भक्त मुक्ति में पांय।
सदा की या कुछ समय की, जैसे गुरु मिलि जांय ॥ ७ ॥

१ पार करके, २ समाये हुए, ३ कृत्रिम; बनावटी ४ बढ़ती

वर्ण के नाम अनेक हैं, जैसे देव अनेक।
धुन्यात्मक जो मुक्ति दें, उनका सुनो विवेक ॥ ८ ॥
ओ ना मा सी धं रहं, सात अक्षर जो आहिं।
ना और मा इक वर्ण हुइ, छै अक्षर रहि जाहिं ॥ ९ ॥
ये छैओं धुन्यात्मक, मूल धार के माहिं।
भिन्न भिन्न अस्थान से, उठ इक तार बनाहिं ॥१०॥
द्याल देश ब्रह्मण्ड में, अण्ड पिण्ड सब ठौर।
धुनें अनेकन प्रगट हैं, येही छै सिरमौर ॥११॥
तन की सुषमन नाल में, ये ही छै धुन मूल।
सूक्षम ऊंचे लोक में, नीचे में अस्थूल ॥१२॥
राम ओम् सोहं जो, मुख्य धुनें कहलाहिं।
योगी और योगेश्वर, इनहीं को बतलाहिं ॥१३॥
भँवर गुफा और हृदय में, सोहं रही समाय।
नाभि चक्र और सुन रहे, राम हिरंग उठाय ॥१४॥
इन्द्री चक्र और तिकुटी, बोल रहे ओंकार।
और धुनें जो होत हैं, इनकेहि अंग विचार ॥१५॥
ओ ना मा सी धं रहं, धुनें छओं जो आहिं।
उनके भिन भिन मेल से, ये तीनों बनि जाहिं ॥१६॥
इनही से 'धारा' बनै, 'सिन्धू' यही बनाहिं।
सर्वोपरि स्वामी बसै, सोऊ नाम इन माहिं ॥१७॥
अहंकार की हं धुनी, काल देश के माहिं।
द्याल देश में है नहीं, ताते सन्त छुड़ाहिं ॥१८॥

पिछले जुग के महात्मा, सैन बैन में भाख।
ओ ना मा सी धं कहा, गुप्त भेद सब राख ॥१९॥
ओ ना मा सी धं जप, गुप्त भया जग माहिं।
विद्याध्ययन[१] आरम्भ में, पंडित यहीं बताहिं ॥२०॥
ओम् नमः सिद्धम् किया, संसकिरत में लाय।
असल भेद जाना नहीं, विद्या गये भुलाय ॥२१॥
यही चली कुछ काल तक, कलि अरम्भ के माहिं।
अब तो इन अक्षरन की मूरख हँसी उड़ाहिं ॥२२॥
किया इशारा साफ कर, साहब संत कबीर।
ओ ना मासी धं पढ़न, बतलाई तदबीर ॥२३॥
इनहीं सब छे धुनन की, जुदा जुदा तर्तीब[२]।
साध सन्त दे कर करैं, नाम की निज तर्कीब[३] ॥२४॥
गुरु 'प्रताप' ऐसी करी, जाके दोनों अर्थ।
सूचक[४] धार भंडार के, 'धारा सिन्धु' समर्थ ॥२५॥
संसकिरत के शब्द हैं, दोनों में सम्बन्ध।
सर्व जगत विख्यात हैं, देखो धारा सिन्ध ॥२६॥
परमातम तो सिन्धु है, आतम वाकी धार।
आदि धार से अनगिनत, भये धार भंडार ॥२७॥
धार उठै जब सिन्धु से, गिरै नियत अस्थान।
उठन गिरन स्थान पर, शब्द धकार प्रमान ॥२८॥
अराटा राकार धुन, धार मार्ग में होय।
ताते 'धारा' नाम निज, धुन्यात्मक है सोय ॥२९॥

१ विद्या पढ़ना, २ क्रम, ३ मिलाकर बनाया, ४ बतलाने वाला।

सिन सिन होय भंडार में,'धू' धारा उत्थान ।
तातै सिन्धू नाम को, धुन्यात्मक पहिचान ॥३०॥
धारा सिन्धू कुदरती, ध्वन्यात्मक है नाम ।
परम सिन्धु चैतन्य का, पूर रहा सब ठाम ॥३१॥
या सम मानीदार कोइ, नाम जगत में नाहिं ।
सूचक रूप और कार्य का, शब्द अर्थ के माहिं ॥३२॥
या का बड़ा प्रभाव जो, है सुमिरन के माहिं ।
अनुभव करि के देख लो, दूसर में यह नाहिं ॥३३॥
नाम प्रताप मिलाय के, सुमिरो चित्त लगाय ।
'धारा सिन्धु' प्रताप की, सकै को महिमा गाय ॥३४॥

शब्द ७

हिंडोला झूलै सुत सजनी । अधर में सतगुर सँग मगनी ॥ १ ॥
खोल कर तिल खिड़की झांकै । कँवल दल सहस मध्य ताकै ॥ २ ॥
जोत लख बंक नाल में जाय । शंख ध्वनि से अति प्यार बढ़ाय ॥३॥
सुनै फिर मेघ गरज धर ध्यान । वहीं सत रज तम का उत्थान[१] ॥४॥
लाल धरती जहँ लाल अकाश । दशों दिशि लाल २ परकाश ॥५॥
वस्तु सब लाल लाल दमकैं । सुनहरी नूर भरीं चमकैं ॥६॥
त्रिलोकी नाथ विराज रहा । ॐ धुन निज मुख गाज रहा ॥७॥
करम स्थूल होंय जहँ भस्म । सुरत के खुलैं हिये के चश्म[२] ॥८॥
होय निर्मल आगे पग धार । लगी सुन धुन से करन विहार ॥९॥
पाय फिर पारब्रह्म दर्शन । कुतूहल करै संग हंसन ॥१०॥
मान सर कर के पुनि अश्नान । धसै चढ़ महासुन्न मैदान ॥११॥
हिंडोला भँवर गुफा झूलै । अहं तन सुन सोहं फूलै ॥१२॥

१ निकास २ आंख

विरह सत लोक की जब जागै। अहं तन फूला सुत त्यागै ॥१३॥
गुफा की सीमा[१] जब छोड़ै। बीन धुन से नाता जोड़ै ॥१४॥
मनोहर मग सुन्दर रमणीक। चली सुत गह संतन की लीक ॥१५॥
कहूं क्या शोभा सतपुर की। सुरत जहां जानी गति गुरु की ॥१६॥
पाय सुत भई अत्यन्त मगन। सूर सत नामी का दर्शन ॥१७॥
चली फिर आगे चढ़ि सूरत। लखी जहँ अलख पुरुष मूरत ॥१८॥
वहां से पहुँची लोक अगम। बढ़ी जहँ विरह दरश प्रीतम ॥१९॥
अगम तन त्याग चली सुत नार। सुरत का यहां यही सिंगार ॥२०॥
किया सिन्धू से सुरत मिलाप। मिलाया 'धारा सिन्धु प्रताप' ॥२१॥

शब्द ८

गुरु घट खोलैं खान रतन की ॥टेक॥
चढ़ै सुरत जब नाम समावे। देख दिवाली घन की ॥ १ ॥
लाखन दीप माल उजियारी। शोभा बनी गगन की ॥ २ ॥
जहां उठाय दृष्टि सुत देखै। लीला लखै अगिन की ॥ ३ ॥
सूक्षम अगिन तत्व परकाशै। धार बँधी तारन की ॥ ४ ॥
कहीं सूर सम कहीं चन्द्र सम। सकल भांति भिन भिन की ॥ ५ ॥
कुञ्जैं लता सभी प्रकाश की। शक्ति नहीं बरनन की ॥ ६ ॥
महल सुनहरी चमक दमक के। फुलवारीं नूरन की ॥ ७ ॥
करैं कुतूहल धूम मचावैं। पांतें जुड़ हंसन की ॥ ८ ॥
तरह तरह की होय रोशनी। अद्भुत छवि रूपन की ॥ ९ ॥
बदल बदल छवि हंसा बैठे। क्यारिन में गुलशन की ॥१०॥
सदा दिवाली हो ब्रह्माण्ड में। महिमा नहीं कहन की ॥११॥
यह थोड़ी सी गुरू बताई। नीच ऊंच लोकन की ॥१२॥

१ हद

द्याल देश में बड़ी दिवाली। नहिं वह कहन सुनन की ॥१३॥
विरली सुरत ताहि लख पावे। दया होय सन्तन की ॥१४॥
गुरु किरपा से होय दिवाली,। सतपुर में सबहिन की ॥१५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। आस पुरै दासन की ॥१६॥

शब्द ९.

सुरतिया हरषि हरषि, आज लेत शब्द रस सार ॥ टेक ॥
शब्द धार धुर घर से आवत। जो है माया हद के पार ॥ १ ॥
इसी धार ने सृष्टि रची सब। इसी ने रचे ररँग[1] ओं कार ॥ २ ॥
यही धार है मौज दया की। यही जान और रूह की धार ॥ ३ ॥
सूर चाँद तारागण रचना। इसी धार ने करी सम्हार ॥ ४ ॥
इसी ने रचीं अनंत त्रिलोकीं। किया इसी ने सब विस्तार ॥ ५ ॥
सुर नर मुनि सब रचे इसी ने। इसी से हुए सभी अवतार ॥ ६ ॥
सिन्धु परम चैतन्य केन्द्र से। आई यह बनकर करतार ॥ ७ ॥
खड़ी इसी की शक्ति से रचना। इसका है सब को आधार ॥ ८ ॥
रूप रंग रेखा उत्पत्ती। इसी धार का है इज़हार[2] ॥ ९ ॥
यही धार जब सिमटै अन्तर। प्रलय होय सृष्टी की झार[3] ॥१०॥
इसी धार की डोर गहा कर। खींचें सुरत गुरू दातार ॥११॥
काल ने इसी धार के बल से। जीव फँसाये जक्त मँझार ॥१२॥
इसी धार से सन्त सतगुरू। आये जग में करन उधार ॥१३॥
यही धार निज रूप गुरू का। घट घट में करता उजियार ॥१४॥
सन्त करैं उपदेश जीव को। इसी धार से करो पियार ॥१५॥
इसी धार की ध्वनि को गह कर। सुरत चढ़ाओ गगन मँझार ॥१६॥
कँवल सहस दल पहिले पहुँचो। करो निरंजन का दीदार ॥१७॥

१ रारंग, २ प्रगट होना, ३ बिल्कुल

वहां से त्रिकुटी धाम सिधारो। पाओ लाल रूप ॐकार ॥१८॥
राम और कृष्ण लोक में होकर। पहुँचो सुन में दसवें द्वार ॥१९॥
हंसन से जहँ करो मित्रता। हर्षो सुन धुन रारंकार ॥२०॥
महा सुन्न और भँवर गुफा चढ़। सुनो बीन सतलोक मँझार ॥२१॥
अलख अगम का रूप निहारो। वहां से पहुँचो सिन्ध अपार ॥२२॥
शब्द धार की पूरी महिमा। तबही तुम जानोगे यार ॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू को। करो दण्डवत बारम्बार ॥२४॥

शब्द १०.

आज घन उमँड़ रसीली गरज सुनाय रहा।
भाग मन विषय से अन्तर की ओर धाय रहा ॥ १ ॥
इन्द्रियों ने भी बहाई उलट अपनी धारें।
मन भँवर चढ़ के श्याम कंज में समाय रहा ॥ २ ॥
देख शोभा सहस्र सूर नूर धारों की।
वह अपने धाम का पूरण सरूर पाय रहा ॥ ३ ॥
काम तन ले के सुरत निज मन तज आगे चली।
सुन्न में ररंकार नूर जग मगाय रहा ॥ ४ ॥
धुन के मोती चुने जहँ सुरत ने हंसा बनकर।
माया मुरझाय रही काल भी शर्माय रहा ॥ ५ ॥
करम का बीज जला के सुरत गई ऊपर।
गुफा में सोहंग निज मुर्ली धुन गजाय रहा ॥ ६ ॥
अहं की काया तज गई सुरत सतपुर में।
जहां सतनाम मधुर बीन धुन बजाय रहा ॥ ७ ॥

देख लीला बिलास सच्च खण्ड अलख अगम ।
पिया अमृत जो अमीसिन्ध से वँह आय रहा ॥ ८ ॥
हो गई अमर अजर शान्त रूप बुन्द सुरत ।
परम शक्ती की गती का सरूर छाय रहा ॥ ९ ॥
सतगुरू 'धारा सिन्धु प्रताप' की अनुग्रह से ।
बुन्द को परम सिन्ध अपने में मिलाय रहा ॥१०॥

शब्द ११.

सतगुरु शब्द प्रताप से, जब जग चाह नसाय ।
तन अभिमान रहै नहीं, अन्तर पट खुल जाय ॥ १ ॥
करम चित्र आवरण पर, जब पूरे मिट जाँय ।
छिन्न भिन्न हों आवरण, ग्रन्थीं सब खुल जाँय ॥ २ ॥
दयाल देश ब्रह्माण्ड के, खुलें जभी सब द्वार ।
'धारा सिन्धु प्रताप' पद, पहुँचे सूरत नार ॥ ३ ॥
गुप्त शब्द जो सिन्धु का, स्रुत को जब प्रगटाय ।
धुन रस मधुर अपार में, स्रुत धुन रूप समाय ॥ ४ ॥
गुप्त शक्तियां सुरत की, प्रगट होंहि छिन मांहि ।
रचना के सब लोक तब, दृष्टी मांहि समांहि ॥ ५ ॥
बुन्द समावै सिन्धु में, एक होय अलगाय ।
सिन्धु बुन्द की मौज तब, सब विधि इक हो जाय ॥ ६ ॥
परम प्रेम आनन्द रस, बुन्द सिन्धु में पाय ।
प्रेमी प्रीतम भाव रहि, दो का इक हो जाय ॥ ७ ॥
दो में इकता एक में, दुई भाव ठहराय ।
दौनो रत हो एक हों, दुई रहै मिट जाय ॥ ८ ॥

सिन्धू प्रीतम बुन्द का, सिन्धु का प्रीतम बुन्द।
दो आशिक़ माशूक़ दो, इक हों बुन्द समुन्द ॥ ९ ॥
आशिक़ बहु माशूक़ इक, रत हों एकहि संग।
आशिक़ इक माशूक़ सब, रल मिल हों इक अंग ॥१०॥
ज्ञान रूप जो सुरत का, विश्व अनन्त समाय ।
आदरु[1] अन्त अनन्त का, छिन में भ्रम मिट जाय ॥११॥
एक एक परमाणु के, आदि अन्त का हाल।
है होगा अरु हुआ जो, सब प्रगटै ततकाल ॥१२॥
रूप अरूप अनन्त का, काल अनादि अनन्त।
ज्ञान रूप में सुरत के, जाय समाय तुरन्त ॥१३॥
प्रति इक सुत के जन्म का, आदि अन्त अरु मद्ध।
जो जो परिवरतन हुये, छिन में पावै सुद्ध[2] ॥१४॥
बुन्द रूप विस्तार कर, सिन्धु रूप हो जाय।
सिन्धु रूप संकुचित[3] हुइ, बुन्दहि मांहि समाय ॥१५॥
बुन्द प्रकाश सरूप का, प्रगटै जब निज रूप।
सूर संख संखन गुना, दरसैं अधिक कुरूप ॥१६॥
परम शक्ति जो सिन्धु की, बुन्दहि में दरसाय।
बुन्द अनन्त अपार हो, सिन्धु गती को पाय ॥१७॥
गुरु जो सिन्धु समान हैं, कर शिष निजहि समान।
जाय रलावें[4] सिन्धु में, तीनों एकहि जान ॥१८॥
तब महिमा सतगुरू की, जानै शिष्य सुजान।
होय गुरू पद कँवल पै, रोम रोम कुरबान ॥१९॥

१ आदि और, २ खबर, ३, सिकुड़ कर, ४ मिलावें.

बदला ऐसी दात का, क्या दे सकता जीव।
तन मन धन तो तुच्छ है, रटो नित्त गुरु पीव ॥२०॥
बार बार कर दण्डवत, बार बार गुन गाव।
निश्चय दृढ़धर हृदय में, नित गुरु चरन धियाव ॥२१॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, बख़शेंगे यह दात।
भजन ध्यान सतसंग धुन, करत रहो दिन रात ॥२२॥

शब्द १२.

मुक्ती का अब भाषूँ लेखा। जो सन्तन निज आँखन देखा ॥ १ ॥
स्वर्ग के ऊपर ररंग पद तक। मायक लोक रचे हैं बहुतक ॥ २ ॥
लोक प्रत्येक के तीन स्थाना। लक्ष सुन्न अरु वाच ठिकाना ॥ ३ ॥
लोक धनी का जो है रूपा। सो कहलावै लक्ष स्वरूपा ॥ ४ ॥
नगर बसैं जो लक्ष के नीचे। भक्त बसैं उन नगरिन बीचे ॥ ५ ॥
सो कहलावै वाच स्थाना। इधर उधर है सुन मैदाना ॥ ६ ॥
जस सूरज ऊपर भू नीचे। सुन्न दसों दिशि और दुबीचे ॥ ७ ॥
जो पावें मुक्ती सालोका। नगर नगर में जावें रोका ॥ ८ ॥
जिनको मिलै समीपी मुक्ती। सुन[1] में रहैं करैं जहं भक्ती ॥ ९ ॥
मुक्ती सायुज अरु सारूपा। पाय समावें धनी स्वरूपा ॥१०॥
तज आपा पूरे लय होवें। धनी रूप में गहरे सोवें ॥११॥
उन सायुज्ज मुक्ति गति पाई। प्रलय समय तक निद्रा छाई ॥१२॥
प्रेम नशे में जो रहें चूर। अर्ध जागृत में मसरूर[2] ॥१३॥
सो सारूप मुक्ति रस पावें। प्रलय बाद फिर नीचे आवें ॥१४॥
सारूपी को ज्ञानी जानो। सायुज्जी विज्ञानी मानो ॥१५॥

१ शून्य, २ डूबे हुये.

पिण्ड अभाव होय परलय में। खसै ब्रह्माण्ड महा परलय में ॥१६॥
इन लोकन जिन पाई मुक्ती। गिर गिर फिर चौरासी भुगती ॥१७॥
बहुत काल तक पाय अनन्दा। फँसे आय फिर जम के फन्दा ॥१८॥
गये नहीं माया हद पारा। तासे रहे काल के जारा[1] ॥१९॥
सन्त सतगुरू शरण न पाई। माया काल रखा उलझाई ॥२०॥
धरैं समाधें वर्ष हजारन। माया के नहिं हटैं आवरन ॥२१॥
सन्त सत् गुरू पाये जिन जन। छूटे काल करम माया मन ॥२२॥
उन जन पाया अमर परम पद। घाल देश गये तज माया हद ॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' परम गुर। पकड़ चरण उन पहुँचो सतपुर ॥२४॥

शब्द १३.

सिन्धु अनन्त घाल अस्थाना। काल देश इक बुन्द समाना ॥ १ ॥
सिन्धु केन्द्र मण्डल विस्तारा। रंग रूप रेखा से न्यारा ॥ २ ॥
सत्त लोक तक सन्तन देखा। पाया रंग रूप और रेखा ॥ ३ ॥
जोगेश्वर जो ररंग समाये। परम दिव्य दृष्टी नहिं पाये ॥ ४ ॥
सूक्षम रंग रूप और रेखा। ररंग धाम में उन नहिं देखा ॥ ५ ॥
ताते ररंग अन्त पद जाना। निज मुक्ती गति अन्तिम माना ॥ ६ ॥
महा प्रलय पीछे उत्थाना। होकर माया देश रचाना ॥ ७ ॥
तब धोखा जोगेश्वर जन का। खुला जभी पाया संग मन का ॥ ८ ॥
उतर उतर आये मृतु लोका। चार खान में खाये झोका ॥ ९ ॥
जोग समाधि ज्ञान सब कीन्हा। सत गुरु बिन रहे काल अधीना ॥१०॥
देश अपने में पद जोगेश्वर। सर्वोपरि राखा कालेश्वर ॥११॥
उनकहु आवागमन न छूटा। मुक्त हुए जम फन्द न टूटा ॥१२॥
जोगी तपी और सन्यासी। व्रतधारी और तीरथ बासी ॥१३॥

[1] जाल

नैमी धर्मी मूर्ति अधारी । और अनेकन पूजा धारी ॥१४॥
कथाकरी और वाचक ज्ञानी । इन सब की क्या कहूं कहानी ॥१५॥
जगत आस धर चक्कर खावें । थोड़ा सुक्ख बहुत दुख पावें ॥१६॥
ताते खोजो सतगुरु सन्ता । जो कर अमर मिलावें कन्ता ॥१७॥
सतगुरु की यह है पहिचान । सुरत शब्द बतलावें ध्यान ॥१८॥
तीसर तिल से राह चलावें । पाँच शब्द का भेद बतावें ॥१९॥
तिल के नीचे चक्र छुड़ावें । कर्म काण्ड के भर्म तुड़ावें ॥२०॥
घट में बारह कँवल बतावें । उनका भिन्न भेद समझावें ॥२१॥
आपहु होवें सुरत शब्द रत । अन्तर में परखो उनकी गत ॥२२॥
परमारथ करनी करवावें । तामें नहिं कुछ दाम कमावें ॥२३॥
गुरुवाई द्वारे जग वृद्धी । धन सामां की करें न सिद्धी ॥२४॥
बाहर मुख बिरती न पसारें । अन्तर मुख हो तन मन गारें ॥२५॥
सतोगुनी धारें वे रहनी । धर सन्तोष जगत नहिं बहनी ॥२६॥
ऐसे सतगुरु की लो शरणा । ले उपदेश कमाई करना ॥२७॥
तो पाओ इक दिवस अमरपुर । परम शान्ति विश्राम मिलै धुर ॥२८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' उचारो । तन, मन, धन उनके पद वारो ॥२९॥

शब्द १४

तन में नाड़ी बहुत हैं, योग मार्ग की तीन ।
इड़ा पिंगला सुषमना, मुख्य सुषमना चीन्ह ॥१॥
सिर की चोटी से चली, आई भृकुटी बीच ।
कण्ठ, नाभि और गुदा हो, रीढ़ से आई घींच[1] ॥२॥
घींच बीच होकर चली, ठहरी दो दृग मध्य ।
जहां तीसरा नयन है, राखे तन की सुद्ध ॥३॥

१. गर्दन.

भृकुटी मध्य स्थान से, पिंगल दहिनी ओर।
बाईं ओर इड़ा रहे, जहां काल का ज़ोर ॥४॥
जिन नाड़िन चेतन बहै, जीव देह के माहिं।
सो सब सूक्षम पवन की, दृग से दीखें नाहिं ॥५॥
सुषमन में बह कर सुत धारा। चेतन करती जिव तन सारा ॥६॥
बारह कँवल सुषमना अन्तर। गुदा से सत्तलोक गगनन्तर ॥७॥
प्रथम कँवल है मूल अधारा। दल हैं चार लाल रँग धारा ॥८॥
दूसर स्वाधिष्ठान[१] बखाना। पीत वरण षटदल पहिचाना ॥९॥
तीसर नाभि नील रँग दस दल। चौथा स्वेत हृदय बारह दल ॥१०॥
पँचम कँवल कण्ठ में ठहरा। सोलह दल माया का पहरा ॥११॥
षष्टम कँवल विराट स्थाना। दो दल दो दृग मध्य समाना ॥१२॥
सप्तम सहस कँवल दल छोटे। आठ बड़े उनसे दो मोटे ॥१३॥
अष्टम त्रिकुटी दल हैं द्वादश। सुन में तेरह महासुन्न दश ॥१४॥
कँवल अष्ट दल भँवर गुफा में। अनगिनती सतलोक सफ़ा में ॥१५॥
जो आवरण सुरत पर आहीं। उनमें यह सब कँवल रहाहीं ॥१६॥
जिस परदे पर जो कँवल, वह वाका दृग जान।
वही मार्ग है सुरत का, आवरन केन्द्र स्थान ॥१७॥
आरम्भ योगाष्टांग का, गुदा चक्र से होय।
अभ्यासी या योग के, कलि में विरले कोय ॥१८॥
महा असम्भव गृहस्थ जन को। महा कठिन है विरक्त नरन को ॥१९॥
होय कदाचित जो यह पूरा। तऊ मुक्ति फल रहै अधूरा ॥२०॥
बहुधा योग भ्रष्ट हो जावे। बिरला योग सफलता पावे ॥२१॥
या साधन का पूरा योगी। षट चक्कर अन्तर फल भोगी ॥२२॥

१ इन्द्री कँवल.

कोइ योगी फिर राज योग से । चढ़ै ऊँच षट चक्र रोग से ॥२३॥
सो पीछे ब्रह्मण्ड समावै । माया हद के पार न जावै ॥२४॥
संत पंथ आरम्भ स्थाना । योग अष्टांग अन्त पद माना ॥२५॥
जागृत में जीवातम आसन । तीसर तिल में रहै संग मन ॥२६॥
वहँ से सन्त चढ़ावें ऊपर । नीचे छोड़ पिण्ड के चक्कर ॥२७॥
जब धुर धाम रसाई पावें । सुषमन द्वारे पिण्ड समावै ॥२८॥
पिण्ड चक्र तब सब खुल जावें । सर्व लोक मण्डल दरसावें ॥२९॥
सन्त पन्थ सब से बड़ा, सहज शब्द का योग ।
और मते सब काल के, छूटै रोग न सोग ॥३०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, बतलाया यह योग ।
देंहिं दया से दास को, अमर लोक के भोग ॥३१॥

शब्द १५.

आरती

अति आरत हो आरत थाली । दास तुम्हारे लीन्ह सम्हाली ॥ १ ॥
धारा सिन्धु प्रताप दवामी[१] । सतचित आनँद रूप अनामी ॥ २ ॥
जब हम आरति करैं बनाई । धार दया की उमड़े आई ॥ ३ ॥
प्रेम भक्ति का थाल सजावैं । बिरह सोज़[२] की जोत जगावैं ॥ ४ ॥
दया बिना कस आरति पूरी । बिरह प्रेम तो रहैं अधूरी ॥ ५ ॥
या ते मेहर करो अब भारी । आरति पूरन होय हमारी ॥ ६ ॥
गुरु स्वरूप जोती मध निरखैं । कर कर आरति हिय में हरषैं ॥ ७ ॥
फिर चढ़ त्रिकुटी आरति गावैं । गुरु स्वरूप सूरज मध ध्यावैं ॥ ८ ॥
तीसर आरति सुन में धारैं । चन्द्र मध्य गुरु रूप निहारैं ॥ ९ ॥
द्वादश सूर हंस गति धर धर । अति हरषैं आरति हम कर कर ॥१०॥

१. सदा रहने वाला २. जलन ।

महा सुन्न और गुफा भँवर में । करैं आरती अधर सफर में ॥११॥
सत्त लोक में फिर हम पहुँचैं । बड़ी आरती विधि जहँ सोचैं ॥१२॥
षोड़स सूर हंस गति धारैं । प्रेम पूर्वक आरति वारैं ॥१३॥
कोटिन चन्द्र भानु गति परखैं । सत्त पुरुष सम सतगुरु निरखैं॥१४॥
हंस मंडली मध्य तुम्हारी । होय आरती सिद्ध हमारी ॥१५॥
अलख लोक में फिर चढ़ जावैं । वहां आरती बहु विधि गावैं ॥१६॥
यहँ हम माया शुध भी नाशैं । सहस सूर सम नूर प्रकाशैं ॥१७॥
आगे अगम लोक धस जावैं । अगम पुरुष सम सतगुरु पावैं ॥१८॥
वहां आरती कर कर हरषैं । कोटि भानु छवि निज जब निरखैं॥१९॥
अलख रूप है अरब भानु सम । खरबन सूर अगम परमातम ॥२०॥
फिर आगे को करैं पयाना । 'धारा सिन्धु प्रताप' स्थाना ॥२१॥
दोनों संख अनन्त भानु सम । परम पिता वे परम पुत्र हम ॥२२॥
आरति कर कर केलि करैं सब । जाय न बरनी वह अद्भुत छब॥२३॥
मिल गुरु चरण केन्द्र[1] में धावैं । वहँ उनके निज रूप समावैं ॥२४॥
परम शान्त हैरत अस्थाना । गति उनकी को करै बखाना ॥२५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू जब । दया करी हम आये घर तब ॥२६॥
परम स्वतंत्र न पर अधीना । दोनों गति अपने में चीन्हा ॥२७॥
क्या गुन गावैं क्या शुकराना । खुद हम सब जब चरन समाना॥२८॥

शब्द १६.

कौन करै आरति सतगुरु की ॥टेक॥

भाग तो यह निज दासन पाया । जिन पर दया मेहर है धुर की ॥ १ ॥
परब्रह्म भी रहें तरसते । क्या ताक़त फिर ब्रह्म चतुर की॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश भुलाने । क्या गिनती इन्द्रादिक सुर की॥ ३ ॥

१ परम चैतन्य सिन्धु के बीच का मुख्य स्थान ।

राह न पाई धुन खाली गइ। ऋग अरु साम अथर्व यजुर की ॥४॥
गुरु दासन यह अवसर पाया। गही धुनी सत शब्द मधुर की ॥५॥
सहस कँवल त्रिकुटी सुन चढ़ कर। सुनी बीन धुन जा सतपुर की ॥६॥
अलख अगम के पार सिधारे। सर्व आस भइ पूरन उर की ॥७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' कराई। आरति सिद्ध परम ठाकुर की ॥८॥

शब्द १७.

आरति करूं जन्म दिन गुरु की। आई धार उबारन धुर की ॥१॥
धन वह दिन वह घड़ी मुबारक। जब जन्मे सतपन्थ प्रचारक ॥२॥
धन वह देश धन्य धन वह घर। जहँ प्रगटी सत धार देह धर ॥३॥
सम्वत् अठरह सौ सत्तासी। जग आये धुर धाम निवासी ॥४॥
कुँवार कृष्ण तिथि तीज मुबारक। जन्मे गुरू परम उपकारक ॥५॥
शुभ लग्नी शुभ दिन रवि वारा। रवि सम गुरु सुत किया उजारा ॥६॥
भ्रात बड़े को माना स्वामी। धारे गुरु लख पुरुष अनामी ॥७॥
गुरु लख प्रगट आप रहे गुप्ता। गुरु सेवक रहि चही न प्रभुता ॥८॥
गुरु की मौज सदा सिर धारी। तन मन धन उन पर सब वारी ॥९॥
जब गुरु तन तज गये स्वधामा। दिया ख़ास दासन को नामा ॥१०॥
जब भ्राता गुरु धार यहां से। गइ तज काज उबार जहां से ॥११॥
धारा गुरु निज सिन्धु समाई। तब ख़ुद उन निज नाम बताई॥१२॥
नाम पुराना देख बे असर। बख़्शा नया नाम किरपा कर ॥१३॥
धारा सिंधु धुन आदि बताई। तामें गुरु निज नाम मिलाई ॥१४॥
सो जप जप जिव होवैं पारा। करैं पहुँच निज धाम विहारा ॥१५॥
कोटि कोटि आरति कर गुरु की। त्यागो सीमा मायापुर की॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम निज। घट के सर्व रोग का मुआलिज[१]॥१७॥

१. अच्छा करने वाला।

शब्द १८.

सुरत नित आरति कर। गुरु रूठे लेत मनाय ॥ १ ॥
परमारथ में मनमुखता लख। सतगुरु रहे रिसाय ॥ २ ॥
निर्मल सुरत दुष्ट दूतन सँग। रही जगत भरमाय ॥ ३ ॥
उनसे ज़ोर चलै नहिं याका। फिर फिर ग़ोता खाय ॥ ४ ॥
जब गुरु दृष्टि दया की धारें। मन में बहु पछिताय ॥ ५ ॥
पड़े मार सत्संग बचन की। तभी बहुत शर्माय ॥ ६ ॥
दयासिन्धु सतगुरु जब देखैं। रही सुरत मुरझाय ॥ ७ ॥
भूल चूक की माफ़ी देकर। लैं मन चरन लगाय ॥ ८ ॥
कभी रोष कभी दया बिचारैं। मार पियार कराय ॥ ९ ॥
मन को गढ़ैं अनेक विधी से। जग की चाह मिटाय ॥१०॥
अन्तर से कबहूं नहिं कोपैं। बाहर डर दिखलाय ॥११॥
भय बिन प्रीति न होय गुसांईं। ताते दैं धमकाय ॥१२॥
लाखन बार चूक यों बख़शैं। जब जिव शरनी आय ॥१३॥
हलगे हलगे भक्ति बढ़ा कर। प्रीति प्रतीति पकाय ॥१४॥
संस्कार अधिकार बढ़ावैं। गुरुमुख सुरत बनाय ॥१५॥
शब्द शब्द पौढ़ी चढ़वा कर। दैं सतपुर पहुँचाय ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' परमपितु। लैं सुत कण्ठ लगाय ॥१७॥

शब्द १९.

आरति करूं परम सतगुरु की। धरि निज दृग छवि सर्वेश्वर की ॥१॥
शब्द थाल मध निज सुत जोती। होय प्रवेश एक अँग होती ॥२॥
इक अंगी हो सुरत शब्द मिल। आरति वारैं गुरु चरनन रल॥३॥
एक रूप में तीन स्वरूपा। छवि नहिं बरनी जाय अनूपा ॥४॥

मगन होय निज पद में बिचरैं। चारों सिन्धु कँवल में सँचरैं ॥ ५ ॥
कँवल कँवल पर होंय निछावर। मिल कर पुत्र पिता और शिष गुर॥६॥
आरति करें अनोखी ऐसी। होवे सच्ची सुरत सुदेसी ॥ ७ ॥
कभी तो शान्त सिन्धु विश्रामा। कभी है परम विलास अकामा ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' ढुरें जब। आरति करवावें ऐसी तब ॥ ९ ॥

शब्द २०.

सत गुरु की अब करूं आरती। सुन्दर छबि पर हृदय वारती ॥ १ ॥
चित निर्मल कर थाल बनाती। प्रेम उमंग की डारूं बाती ॥ २ ॥
बिरह तेज की जोत जगाऊं। शुभ गुण हार बनाय चढ़ाऊं ॥ ३ ॥
सात बार परिकरमा देकर। सन्मुख खड़ी थाल कर लेकर ॥ ४ ॥
नयन कँवल गुरु निरख निहारूं। थाल फेर कर आरति वारूं ॥५॥
धुनें रसीली लोक अमर में। हंस उचारें विगस अधर में ॥ ६ ॥
शब्द प्रकाश स्वरूपी सतगुरु। होय प्रसन्न लगाया निज उर ॥ ७ ॥
बख़्शा लोक अलोक निवासा। सुरत करै जहँ परम बिलासा ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सराहूं। धन्यबाद उनका नित गाऊं ॥ ९ ॥

शब्द २१.

परम पद दातार सतगुरु दास यह आरति करै।
अति दीन हो प्रभु कँवल पद में शीश निज पुनि पुनि धरै ॥१॥
प्रति लोक में वा लोक के स्रुत आवरण को बाल कर।
बना जोती धरै लोक के भूप[1] रूपहिं थाल कर ॥२॥

[1] धनी।

रूप के बिच जो कँवल है सो कँवल दीवा करै ।
कँवल के बिच छिद्र है वा छिद्र में जोती धरै ॥३॥
छिद्र में सुर्त जरत तन से झांक गुरु दर्शन करै ।
करत दर्शन जरत तन तज पार पद में पग धरै ॥४॥
लोक लोकहिं अस चढ़त आरति करत सत पद गहै ।
दया सतगुरु सत पुरुष ले अलख पद में जा रहै ॥५॥
वहां से चढ़ अगम पद पूरन परम हंसा बनै ।
अमी शब्द प्रकाश के भिन रूप रस में पुनि सनै ॥६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' के सँग सिन्धु धस क्रीड़ा करै ।
दया उनकी हो तो ऐसी आरती कर भव तरै ॥७॥
सुनो सज्जन गुरू सेवक सतगुरू को ध्याओ नित ।
वह तुम्हारे सच्चे हितकारी हैं सच्चे मात पित ॥८॥
वही ऐसी आरती करवायँगे निश्चय करो ।
उन्हीं के केवल चरन में दया की आसा धरो ॥९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सतगुरु द्याल सर्व समर्थ हैं ।
मुक्ति पूरन वही देंगे और देव विअर्थ हैं ॥१०॥

शब्द २२.

सुरतिया आरति करि । रही गुरु को नित्त रिझाय ॥१॥
ध्यान करै सतगुरु स्वरूप का । तीसर तिल पर चित्त जमाय ॥२॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम निज । सुमिर सुमिर सब विघ्न हटाय ॥३॥
कँवल सहसदल से धुन आई । झीनी झीनी पड़ी सुनाय ॥४॥

सुनि सुनि श्याम कंज को तोड़ा। बंक नाल में गई समाय ॥५॥
संख शब्द से परिचय करके। ॐकार धुन लई जगाय ॥६॥
त्रिकुटी चढ़ सुमेर पद पहुंची। शब्द गुरू से भेंटी जाय ॥७॥
वहां आरती करी गुरू की। लाल रूप मन भावन पाय ॥८॥
अर्ध मात्रा राम लोक चढ़ि। शहनाई धुन रही बजाय ॥९॥
आगे सुन धसि परब्रह्म का। चन्द्ररूप लख लीन्हा जाय ॥१०॥
दर्शन कर के मान सरोवर। न्हाय रही निर्मल गति पाय ॥११॥
हंस रूप धरि महासुन्न के। तिमिर खण्ड में गुरु सँग धाय ॥१२॥
भँवर गुफा सोहं मुरली सुन। अद्भुत घाटी रही समाय ॥१३॥
वहां से सत्त लोक में धस गई। सतगुरु आरत करी बनाय ॥१४॥
ले दुर्बीन चली आगे को। अलख अगम पद पार कराय ॥१५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' आरती। पूरन पद चढ़ कीन्ही जाय ॥१६॥

शब्द २३.

सुरतिया अधर चढ़त। निज आरति गुरु पद वार ॥ १ ॥
बांधि डोर निज गुरु चरनन में। कर सतसंग बढ़ावत प्यार ॥ २ ॥
सुषमन में धसि भाग सराहे। मिला पिया घर मारग सार ॥ ३ ॥
नया नया दिन दिन अनुभव कर। हरषत नित्त उमँग नई धार ॥ ४ ॥
प्रीति प्रतीति बढ़त गुरु चरनन। अरु हं बढ़ै हर्ष की लार ॥ ५ ॥
जब कुछ प्रीति प्रतीति पकै तब। गुरु हं पर खींचें तलवार ॥ ६ ॥
चमत्कार मायक कम करके। तरसावैं तोड़ैं हंकार ॥ ७ ॥
विरह अग्नि उत्तेजन करिके। जारैं मन के सभी विकार ॥ ८ ॥
रूप शब्द का भी रस रोकैं। जब देखैं बढ़ता हंकार ॥ ९ ॥
जब उदास देखैं सेवक को। तब प्रगटाँय दया की धार ॥१०॥

ऐसे ही फिर जब हं बाढ़े। भींचें मन नइ नइ विधि धार ॥११॥
कभी उमँग कभी बिरह बेकली। दें सेवक को बारम्बार ॥१२॥
बिरह बेकली कर्म कटावे। उमँग से तेज़ बिरह तलवार ॥१३॥
यही बेकली हं को तोड़े। खा गया जो ऋषि मुनि सब झार॥१४॥
बिरह प्रेम दोनों का बल दे। सुरत चढ़ावें गगन मझार ॥१५॥
धीरे धीरे सहज सहज में। बख़शें इक दिन निज पद सार ॥१६॥
दास की परमारथ और जग में। रक्षा करें सम्हार सम्हार ॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' कँवल पद। सेवो धर धर हृदय मझार ॥१८॥

शब्द २४.

करूं आरती अद्भुत गुरु की। जोड़ूँ सामग्री निज उर की ॥१॥
प्रेम उत्साह उमँग अनुरागा। खिल खिल फूले बिच घट बागा ॥२॥
इन फूलन का हार बनाऊं। शब्द गुरू के गल पहिनाऊं ॥३॥
सुरत अंग का थाल सजाऊं। निरत अंग की जोत जगाऊं ॥४॥
श्रद्धा रोली तिलक लगाऊं। निज आतम धुन आरति गाऊं ॥५॥
फेरत आरति शब्द समाऊं। प्रीतम सँग इक अंग हो जाऊं ॥६॥
प्रगटै घट आनन्द अपारा। प्रेम सुधा स्रुत करै अहारा ॥७॥
अटल सुहाग परम प्रीतम रँग। पावै स्रुत अर्धांग शब्द सँग ॥८॥
अस आरति की है अभिलाषा। गुरु पूरी करि हौ कब आशा ॥९॥
मांगू मैं तुम को तुमसे वर। करूं अनन्त ब्रह्माण्ड निछावर ॥१०॥
प्रेमी प्रीतम मिलि होवें रत। पूरन होय तभी मम आरत ॥११॥
दो अब 'धारा सिन्धु प्रताप'। मम स्रुत मांहि रूप निज छाप ॥१२॥

शब्द २५.

आज सन्त सतगुरु पर आरति। घट अन्तर खिँचकर स्रुत वारति॥१॥

'धारा सिन्धु प्रताप' गुहारत। चढ़त मार्ग ईश्वरन जुहारत॥ २ ॥
प्रथम विराट पुरुष पद परसत। आगे गुण स्वरूप त्रय दरसत॥ ३ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तीनों। धारें असल अण्ड में चीन्हों॥ ४ ॥
महा प्रकाशवान यह अण्डा। नीचे पिण्ड ऊपर ब्रह्मण्डा॥ ५ ॥
मनुष जीव मर यहँ तक आवैं। यहां से योनि कर्म वश पावैं॥ ६ ॥
मन में फुरै विचार कर्म वश। तुरत गिरै पावै योनी तस॥ ७॥
अभ्यासी ऊपर को धावै। श्याम सेत के मध्य समावै॥ ८॥
दासी सुरत सहस दल जावै। सतगुरु की जहँ आरति गावै॥ ९॥
निज मन श्याम कंज में सोऐ। मन ब्रह्मण्डी त्रिकुटी भोऐ॥१०॥
सुरत चढ़ी पहुंची त्रिकुटी में। जहँ इक कँवल मध्य भृकुटी में॥११॥
ॐकार धुन से कर मेला। आरति करै गुरू की चेला॥१२॥
मन को छोड़ गई सुत सुन में। पागी जाय रसीली धुन में॥१३॥
जो सतगुरु खोलैं वहां दृष्टी। तो दीखे वहां से सब सृष्टी॥१४॥
धारैं अनगिनती जहां फूटीं। निज निज तिलोकी में छूटीं॥१५॥
महा प्रकाशवान यह धारैं। मायक सृष्टी काज सँवारैं॥१६॥
धार इक इक में भानु अनन्ता। दीखैं लटकत सृष्टि करन्ता॥१७॥
रहँट समान दशों दिशि घूमैं। निज निज मंडल में सब झूमैं॥१८॥
लीला अद्भुत पड़ैं दिखाई। सुरत देख विस्मित रह जाई॥१९॥
जो सुत बहै नाद के संगा। दिखैं अनन्त अकाशी गंगा॥२०॥
जो खुलना नहिं परारब्ध में। तो गुरु रखें समेट शब्द में॥२१॥
जो सुत दृग पूरा खुल जागे। तो या जन्म चढ़ै नहिं आगे॥२२॥
करै समय बहु यहीं निवासा। आगे पूरी होवै आशा॥२३॥
जो कच्चा फल बीचहिं फूटै। बढ़न पकन की आशा टूटै॥ २४ ॥

गुरु पद कंज आरती वारो। मौज गुरू की सिर पर धारो ॥२५॥
रहो सदा सतगुरु पद भिक्षुक। पूरन निज स्वरूप के इच्छुक ॥२६॥
जब पाओ पूरन सतगुरु पद। खुलै दृष्टि तुम्हरी तब बेहद ॥२७॥
धीरज धरि राखो दृढ़ आशा। इक दिन लखो अपार तमाशा ॥२८॥
सहज सहज करते रहो करनी। सतगुरु की राखो दृढ़ सरनी ॥२९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' अचिन्ता। निज दासन की राखैं चिन्ता ॥३०॥

शब्द २६.

दिवाली की आरति गाऊं। गुरू के चरण कँवल ध्याऊं ॥ १ ॥
दीप दानी घट में परखूं। ताहि गुरु चरन वार हरषूं ॥ २ ॥
दिवाली पूजैं जो बाहर। लक्ष्मी परस रुपैया धर ॥ ३ ॥
जुआ खेलैं जीतैं हारैं। दांव में आसक्ती धारैं ॥ ४ ॥
जीत हुलसैं हारैं रोवैं। धर्म ईमान अरु धन खोवैं ॥ ५ ॥
वे हैं चौरासी अधिकारी। अभी उनका चक्कर जारी ॥ ६ ॥
दिवाली सत गुरु सँग कीजै। अधर चढ़ दया दान लीजै ॥ ७ ॥
सफ़ाई घट की करवाओ। जोत निज रूपी जगवाओ ॥ ८ ॥
दिवाली रोशन हो घट में। पिया से भेटो तिल पट में ॥ ९ ॥
जुआ वहां खेलो उनके संग। लगाओ बाज़ी उमंग उमंग ॥१०॥
पिया इक दाव पै इक पर हम। प्रेम सँग होवै खेल गरम ॥११॥
जो जीतैं पिया हों बस हमरे। जो हारैं हम उनके चेरे ॥१२॥
दोऊ विधि बनै हमारी बात। पिया पर मारैं ऐसी घात ॥१३॥
परम गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। दिवाली करवावैं अस आप ॥१४॥

शब्द २७.

आई बसन्त बहार सुहावन। सखियन के हिये कँवल खिलावन ॥१॥

हृदय कँवल का थाल सजावन। शब्द अनाहद जोत जगावन॥२॥
लगीं सखीं सब आरति गावन। सत गुरु दीन दयाल रिझावन॥३॥
रंग बसन्ती अति मन भावन। खिल रहा शोभा गगन बढ़ावन॥४॥
आरति कर सखियाँ हुईं पावन। लागीं दसवें द्वार समावन॥५॥
हंसन सँग लगीं आगे धावन। पहुंचीं मान सरोवर न्हावन॥६॥
धोय कर्म महासुन्न चढ़ावन। फिर प्रगटे गुरु रूप दिखावन॥७॥
तिमिर खंड में सँग ले जावन। सब को भँवर गुफा पहुंचावन॥८॥
जहां लगा सतपुर दरसावन। अहंकार चोला उतरावन॥९॥
चैतन रूपी आपा पावन। सँग ले लगीं सन्त पद धावन॥१०॥
सत्त पुरुष के पद परसावन। जुड़े हंस सब आरति गावन॥११॥
यह है सत्त बसन्त मनावन। 'धारा सिन्धु प्रताप' मिलावन॥१२॥

शब्द २८.

आरति करूँ दशहरा दिन की। वरणूँ लीला रामायण की॥१॥
दसवां द्वार अयोध्या ठामा। प्रगटे जहां कला धर रामा॥२॥
पीछे सुरत जानकी आई। काम के धाम राम सँग ब्याही॥३॥
निज घर छोड़ गये दोऊ बन को। अण्ड पिण्ड बनवास करन को॥४॥
हृदय कँवल लंका अस्थाना। पिण्डी मन रावन का थाना॥५॥
तम अज्ञान और विषम विकारा। पिण्डी मन रावण परिवारा॥६॥
यही राक्षस सैना बसती। फाँसै सुरत करै बदमस्ती॥७॥
पञ्चवटी षट चक्र स्थाना। हरी सिया रावण अज्ञाना॥८॥
हृदय कँवल लंका में लाया। दिया दुःख पिण्डी मन राया॥९॥
ब्रह्मण्डी मन जो हनुमाना। बुध विचार जा में ठहराना॥१०॥
शुभ गुण दल बुधि संग निवासी। त्रिकुटी किष्किन्धा के वासी॥११॥

सो सब राम के भये सहायक। चले मारुती के सँग इक इक॥१२॥
त्रिकुटी में गरजे हनुमाना। ज्यों बादल गरजै असमाना॥१३॥
राम उतारो निज दल रन में। भई लड़ाई काया बन में॥१४॥
राम ब्रह्मण्डी दल जहँ जीता। रावन मार उबारी सीता॥१५॥
लाय अयोध्या दसवें द्वारा। मायक सृष्टि राज पद धारा॥१६॥
प्रति इक त्रेता युग अस लीला। करी राम सँग सिया सुशीला॥१७॥
अब की बेर राम सँग त्यागा। खुला सुरत का भाग सुभागा॥१८॥
सत्गुरु बाल्मीक अब पाये। सेवा कर कर तिन्हें रिझाये॥१९॥
सीता पुत्र प्रेम गुरु पद का। पाया बल दयाल बे हद का॥२०॥
यह दोनों लव कुश कहलाये। ब्रह्मण्डी सब दूत हटाये॥२१॥
लड़े राम दल से रण में जब। मार गिराये ब्रह्मण्डी सब॥२२॥
राम बन्धु मानी जब हारी। सीता उन्हें भई तब भारी॥२३॥
कहैं यह नाहिं हमार काम की। राम तजे अस भई नाम की॥२४॥
गई जहां से फिर वहीं आई। सुरत सिया सत नाम समाई॥२५॥
विजय दशहरा की यह आरति। सीता सुरत गुरू पर वारति॥२६॥
राम हुये रावन के काला। सोई राम को नाम दयाला॥२७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' आवन से। हुआ उबार राम रावन से॥२८॥

शब्द २९.

पहिला दिन विक्रम सम्वत। उन्नीस सौ छियासी का आया॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू ने। सत मत जारी करवाया॥१॥
सेवक सब मिल आरति करते। प्रेम उमँग हिरदे भर भर॥
देंय बधाई एक दूसरे को। सब हर्षित हो हो कर॥२॥
बहुरि मुक्ति का द्वार खुला। अब जगा भाग जग जीवन का॥

दया जो लूटी जाय सो लूटो। दे नज़राना तन मन का ॥३॥
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। हाथ से छोड़ो मत इसको ॥
रोक टोक है नहीं किसी को। लो जितनी चहिये जिसको ॥४॥
परम सत्गुरू दाता ने अब। मोक्ष बहुत आसान करी ॥
प्रीति करो उनके चरणों में। सुफल करो अब देह नरी ॥५॥
थोड़ी प्रीति प्रतीत से सत्गुरु। देते दात परम पद की ॥
काटें जड़ वे काम क्रोध और। लोभ, मोह, माया मद की ॥६॥
सतसँग उनका करके देखो। जाँच करो उनके बल की ॥
काल कला से न्यारा कर देवें। रस्ता सुखमन नल की ॥७॥
तीसर तिल धस सहस कँवल में। दर्शन करो निरञ्जन का ॥
बंक नाल होकर त्रिकुटी में। निरखो थाना निज मन का ॥८॥
ॐकार धुन पकड़ सुनो फिर। रारंग धुन चढ़कर सुन में ॥
त्रयगुण फाँसी काट आत्मा। रलै जाय फिर निर्गुण में ॥९॥
अपना रूप लखो फिर आगे। पहुँचो जाय महा सुन में ॥
कटैं कर्म स्थूल सुन्न में। सूक्षम कटैं गुफा धुन में ॥१०॥
हंसन साथ हिंडोला झूलो। भँवर गुफा की सैर करो ॥
बीन शब्द की धुन सुन सुन कर। सत्त पुरुष की मेहर भरो ॥११॥
सत्त पुरुष की करो आरती। सत्गुरु की गाकर महिमा ॥
जिन प्रताप यह देखी लीला। काट कर्म और कलि धर्मा ॥१२॥
अलख अगम का देख विलासा। धन्यवाद गुरु का गाओ ॥
पूरन परमानन्द स्वरूपी। आतम का निज पद पाओ ॥१३॥
परम शान्ती रूप पिया सँग। परम शान्ती रूप धरो ॥
भानु अनन्त प्रकाश रूप को। खुद धर रूप अनन्त बरो ॥१४॥

१ गुरू।

अस पूरन कल्याण काज के। पिरारम्भ[1] की जो तिथि है ॥
कौन सकै दे धन्यवाद उसका। नर बुद्धी विस्मित[2] है ॥१५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' ग्वाल की। आरति गाओ बारम्बार ॥
गुण गाओ और महिमा गाओ। जब लग तन में प्राण तुम्हार॥१६॥

चेतावनी

शब्द ३०.

अरे मन यह झूठा संसार ॥ टेक ॥

जो उपजै आयू सँग लावै, आखिर मृत्यु अहार ॥ १ ॥
कोटिन जीव मरत प्रति इक पल, देखो दृष्टि पसार ॥ २ ॥
जब लग आयू अन्त न होवै, दीखत सुन्दर सार ॥ ३ ॥
जबहिं अवधि पूरी हो जाकी, बिनसत लगत न बार ॥ ४ ॥
यह मन मूढ़ मोह निद्रा में, गाफ़िल रहै गँवार ॥ ५ ॥
भाला लिये काल सिर ठाड़ा, करै अचानक वार ॥ ६ ॥
बुधिमानी है यही तुम्हारी, या से रहो हुशियार ॥ ७ ॥
करना चहो सुफल जो नरतन, परखो सार असार ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम निज, यही सत्य यहि सार ॥ ९ ॥
बिसरो मत याको तुम इक पल, बारंबार उचार ॥ १० ॥

शब्द ३१.

अरे मन होश में अब आ। फिरै क्यों तू दिवाना है ॥ १ ॥
यह दुनिया चार दिन की है। थोड़े अर्से में जाना है ॥ २ ॥
यहां पर कौन है तेरा। तुझे किसका बहाना है ॥ ३ ॥

१. शुरू २. चकित

जो हैं सब ग़रज़[८] के साथी। उन्हें मतलब बनाना है ॥ ४ ॥
अज़ीज़[१] और आशना[२] ही क्या। तेरा तन भी बेगाना[३] है ॥ ५ ॥
ग़ौर कर दुनिया भी क्या है। अजब सारा फ़िसाना[४] है ॥ ६ ॥
बख़ूबी जांच हर इक शय[५]। यह झूठा कारख़ाना है ॥ ७ ॥
यह दौलत और हुकूमत भी। सब इक दिन छूट जाना है ॥ ८ ॥
यह तेरी उम्र इन्सानी। बेशक़ीमत ज़माना है ॥ ९ ॥
ग़नीमत जान हर इक दम। उसे हक़[६] में लगाना है ॥१०॥
शग़ल आवाज़[७] ही हक़ है। फ़क़ीरों ने बखाना है ॥११॥
समझ ले राज़[८] तू उसका। उसी में दिल लगाना है ॥१२॥
यही राहे निजाते[९] कुल। यही हक़ का निशाना है ॥१३॥
यह रस्ता अर्श हश्तम[१०] है। यही आख़िर ठिकाना है ॥१४॥
ऐ दिल अब जाग ग़फ़लत से। नहीं अब दिन गँवाना है ॥१५॥
पनाहे[११] 'धारा सिन्धु प्रताप' में। अब जल्द आना है ॥१६॥
उन्हीं की मेहर से सारी। उमेदों का बर आना है ॥१७॥

शब्द ३२.

तम में भ्रमत श्रमत दुख पावत। चार खान में चक्कर खावत ॥ १ ॥
भूले निज घर जीव अनन्ता। काल जाल में रहे फसन्ता ॥ २ ॥
मोरी के कीड़े बन बैठे। तहूं अहं में अकड़े ऐंठे ॥ ३ ॥
जादूगर यह काल अन्याई। कभी गधा कभी सुअर बनाई॥ ४ ॥
मद पिलाय असलियत भुलाई। नर्क के कोल्हू में पिलवाई ॥ ५ ॥
प्रेरक हो करवावे दुष्कृति[१२]। बहुत अनर्थ करे वह नित प्रति ॥ ६ ॥
ऐसी दशा देख कर सतगुर। दया करी आये तज निज पुर ॥ ७ ॥
जीवन को सब भेद सुनाया। काल निर्दयी तुमको खाया ॥ ८ ॥

१ रिश्तेदार. २ मुलाक़ाती. ३ पराया. ४ झूंटा क़िस्सा. ५ चीज़. ६ सत्य वस्तु.. ७ शब्द अभ्यास, ८ भेद. ९ मोक्ष. १० आठवां. ११ शरण १२ बुरा काम.

बार बार निगले अरु उगलै । हृदय कठोर तनक नहिँ पिघलै ।। ९ ।।
सतगुरु छूटन बिधि बतलावें । जीव अचेत चित्त नहिँ लावें ।।१०।।
सहज योग की राह लखावें । जीव अभागी ढिँग नहिँ आवें।।११।।
विष्टा कीड़ा विष्टा माहीं । मग्न रहै छोड़न नहिँ चाहीं ।।१२।।
बारम्बार करें उपदेशा । सुरत शब्द में करो प्रवेशा ।।१३।।
निद्रा छोड़ गहो गुरु चरना । तो फिर चौरासी नहिं गिरना ।।१४।।
'धारा सिन्धु प्रताप' शरण जो । लेय मिटावै जन्म मरण सो ।।१५।।

शब्द ३३

अब जागो मुसाफ़िर बहुत सो चुके ।
जो लाये थे तोशा वह सब खो चुके ।। १ ।।
यह धोखे की जा है तुम्हें भी अभी तक ।
क्या काफ़ी तजुर्बे नहीं हो चुके ।। २ ।।
जिन्हें तुम समझते हो अपना यहां पर ।
कई को क्या उनमें नहीं रो चुके ।। ३ ।।
जिन्हें चैन तुम बिन न था क्या वह हक़ में ।
तुम्हारे ही कांटे नहीं बो चुके ।। ४ ।।
यहां जिनसे जिनसे मुहब्बत तुम्हारी ।
तजुर्बे से साबित वह ठग हो चुके ।। ५ ।।
जो धब्बे तुम्हारे जिगर पै हैं देखो ।
उन्हें तुम अभी तक नहीं धो चुके ।। ६ ।।
ख़बर्दार गर हो तो अब भी है मौक़ा ।
जो होने थे सदमे वह सब हो चुके ।। ७ ।।
बक़ाया हैं क़र्ज़ें करम के जो तुम पर ।

चुकाऐंगे सतगुरु नहीं जो चुके ॥८॥
शरन में तू सिन्धू की धारा के आजा।
रही अब है थोड़ी बहुत खो चुके ॥९॥

शब्द ३४.

सोरठा.

यह संसार सराय, भये मुसाफ़िर जीव सब।
कोइ उतरै कोइ जाय, थिर नहिं कोई रह सकै ॥

काल को तुम भटियारा जानो। भटियारी माया पहिचानो ॥ १ ॥
दोउ मिल रची सराय बनाई। नाना विधि के भोग रचाई ॥ २ ॥
जीव जो आये अपने काजा। लिया लुभाय अधिक रचि साजा ॥३॥
माया बहुत करी घटियाई। भांति भांति के रूप बनाई ॥ ४ ॥
जीव अचेत काज निज भूला। भूलन लगा भोग का झूला ॥ ५ ॥
मात पिता की सुधि बिसराना। काल देश घर अपना जाना ॥ ६ ॥
भटियारी के रूप लुभाना। द्याल देश तो हुआ बिगाना[1] ॥७॥
बुद्धि विचार ज्ञान सब खोया। इतको जागा उतसे सोया ॥ ८ ॥
जग सराय में रहा बसन्ता। बदल रूप बहुरुपिया बनता ॥ ९ ॥
रूप अनेकन में दुख सहता। लख चौरासी में रहे बहता ॥१०॥
दुक्खन माहिं रहैं मस्ताना। मन में फूल फिरै बौराना ॥११॥
परम पिता कालहि को जाना। जिसने ऐसा किया दिवाना ॥१२॥
सतगुरु बार बार चेतावें। निज घर का सब भेद बतावें ॥१३॥
वादा करैं परम सुख का वे। करवावैं प्रतीति पर्चा दे ॥१४॥
सुरत शब्द की राह लखावें। साधारन युक्ती बतलावें ॥१५॥
उनकी बात झूठ कर मानै। बैरी काल को रक्षक जानै ॥१६॥

१ पराया.

'धारा सिन्धु प्रताप' बतावें। बिन अधिकार कोइ नहिं पावें ॥१७॥

शब्द ३५.

तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ टेक ॥

चाह की आग में सब जीव नित्त जलते हैं।
दिल उनके धन की हाय हाय में उबलते हैं ॥
माया कल्वारनी मदिरा उन्हें पिलाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ १ ॥

जैसे मद का खुमार पीते पीते चढ़ता है।
वैसे ही धन का नशा रोज़ रोज़ बढ़ता है ॥
चाह दौलत में कहूं क्या बड़ी बलाय भई रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥२॥

मरते दम तक यह चाह जीव को न छोड़े है।
चाहे जितना करे पैदा तो भी भँमोड़े है ॥
दिल और दिमाग़ को चक्कर सदा खिलाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥३॥

ग़रीब या अमीर हो वह ख़्वाह शाहे जहां।
चाह धन की हमेशा करती है उसे हैरां ॥
गुनाह जीव से यह सैकड़ों कराय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥४॥

यह चाह बेईमान जीव को बनाती है।
यही वादा खिलाफ़ी चोरियां कराती है ॥
यही डाँके अमीरों के यां डलाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥५॥

करावै यही क़त्ल शहरों को लुटवाती है।
यह बैरी बाप का बेटे को ही बनाती है ॥
फ़िसाद भाई व भाई में यह कराय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ ६ ॥

ख़्यानतो ग़बन व रिश्वत का है यही तो सबब।
सूद ख़ोरी जुआ दग़ा का वही हैगा मतब ॥
यही तो परजा और राजा में जंग कराय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ ७ ॥

ग़रज़ यह बड़े बड़े पाप की बुनियाद यही।
नर्क के दुख में करै जीव को बरबाद यही ॥
चारखानों में यही जीव को घुमाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ ८ ॥

कोई दुनिया में नहीं चाह को जो नाश करै।
यही माया का बड़ा तीर जो विनाश करै ॥
यही सब ऋषी मुनी जोगियों को खाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥ ९ ॥

सन्त सतगुरु ही हैं समरथ जो इसे मार सकें।
माया और काल की सब ही बलाय टार सकें ॥
माया उनके स्वरूप से बहुत डराय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥१०॥

शरण में उनकी तुम आओ जो चाहो इससे निजात[1]।
तुम्हें अपना[2] के धरें सिर पे वे दया का हाथ ॥

१ मोक्ष, २ अपना करके,

माया गुरु दासों को खुद रास्ता बताय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥११॥
शरण में उनके आई जो सुरत आज़ाद हुई।
दुख से वह छूट के सदा के लिये शाद[१] हुई ॥
पहुँच के धाल देश परमानन्द पाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥१२॥
है नाम 'धारा सिन्धु प्रताप' मेरे सतगुरु का।
बतावें रास्ता बज़रिये शब्द सतपुर का ॥
जहां सुरत परम शान्ति में समाय रही रे।
तृष्णा अग्नी सारा जहां जलाय रही रे ॥१३॥

शब्द ३६.

सुरतिया सुन यह बात हमार। आई तू कहां से जगत मंझार ॥१॥
कहां से तन पिँजरा पाया। कौन तोहि जग में भरमाया ॥२॥
किया किसने अस क़ैद तुम्हें। पता तुम्हरा नापैद[२] तुम्हें ॥३॥
कहां तुम पहले रहते थे। कौन से माता कहते थे ॥४॥
कहां पिछले साथी छोड़े। काहे उनसे नाते तोड़े ॥५॥
तुम्हें छोड़त वे बहु रोये। जभी तुम मृत्यु नींद सोये ॥६॥
तुम्हारी लाश बीच में धार। बैठ गये चारों ओर तुम्हार ॥७॥
रोऐं चिल्लायें पिता सुत नार। कहां गये सुत पितु पती हमार ॥८॥
काल जबरन तुमको पकड़ा। बांध ज़ंजीरों में जकड़ा ॥९॥
प्रथम किया उसने तुमको भूत। जहां तुम खाया गू अरु मूत ॥१०॥
वहां से नर्क दिया पहुंचाय। बांध दिया अग्नि खंभ में जाय॥११॥

१ खुश, २ नामालूम,

बहुत तुम कीन्ही रोय पुकार। देंय सब मार मार ललकार ॥१२॥
सुनै नहीं वहां तुम्हरी कोइ बात। जो आवै जड़ै तुम्हारे लात ॥१३॥
करी ऐसी दुरगती तुम्हार। घुमाया फिर चौरासी धार ॥१४॥
भ्रमे जहां बरसों कई हज़ार। दुक्ख बहु भोगे अकथ अपार ॥१५॥
दया से फिर नर तन पाया। मगर मन बैरी सँग आया ॥१६॥
करे यह यत्न गिराने का। जहां का तहँ लौटाने का ॥१७॥
गुरु समझाय रहे तुमको। देउ अब धक्के इस मन को ॥१८॥
मानियो मत उसका कहना। गहो अब दृढ़ कर गुरु चरना ॥१९॥
और नहिं कोइ बचावन हार। वही सब समरथ सूर दयार ॥२०॥
जो तुम लोगे अब उन शरना। तो फिर नहिं काल तपन तपना॥२१॥
छूटना काल से निश्चय जान। बचन विश्वास सहित उन मान॥२२॥
ध्यान धर 'धारा सिन्धु प्रताप'। करो नित इसी नाम का जाप॥२३॥

शब्द ३७.

सोचो अपने मन में भाई। किया काज क्या जग में आई ॥१॥
बचपन खेले मात गोद में। रहे अचिन्त और बड़े मोद में ॥२॥
हुये बड़े लड़कों सँग मेले। कुछ दिन बहुत मस्त हुइ खेले ॥३॥
फिर पढ़ने के दिन जब आये। पिता मदरसे में पहुंचाये ॥४॥
पढ़ लिख कर हुशियार हुए जब। मात पिता कर दिया ब्याह तब॥५॥
लगे करन रुज़गार कोई फिर। रैन दिवस अब चित्त नहीं थिर ॥६॥
भई सन्तान बढ़ी अब तृष्णा। नित्त पड़ा गृह काज में पिसना ॥७॥
इन कामों में दिवस गंवाये। क्या तुम इसी हेतु जग आये ॥८॥
पिछले नरतन जो तुम क़रज़े। लिये दिये किये लाभ और हरजे॥९॥

आये कुटुम्बी उन्हें चुकावन । तुम लगे उनसे नेह बढ़ावन ॥१०॥
भूल गये तुम अपना काजा । तन अटके भूले तन राजा ॥११॥
देही तुम माता उर पाई । जिव तुम्हार अन्तहि से आई ॥१२॥
क़र्ज़ा तो है उचित चुकाना । पर क्यों हुये इन संग दिवाना ॥१३॥
जो तुम क़र्ज़ा और बढ़इहो । धर धर जन्म पटावत रहि हो ॥१४॥
सदा यही विधि चक्कर खइ हो । रहि हो दुखी चैन नहिं पै हो ॥१५॥
यासे समझो सोचो भाई । किस विधि जीव की होय रिहाई॥१६॥
यह जिव आतम बुन्द है निर्मल। आनँद ज्ञान रूप अति उज्जल ॥१७॥
या जग आन फँसी माया सँग। आनँद ज्ञान हुये इसके भँग ॥१८॥
माया से अब याहि निवारो । यही काज निज मुख्य विचारो॥१९॥
जो याकी चिन्ता मन लाओ। नर तन ही में मौक़ा पाओ ॥२०॥
सो नरतन दिन जावत बीते । चेतो अब नहिं रहि हो रीते ॥२१॥
फिर पछितैहो अन्त समय पर। काल प्राण खींचे जब धर धर ॥२२॥
फिर नहीं चलै तुम्हार उपाई । चार खान फिर चक्कर खाई ॥२३॥
ढूंढ़ भाल कोई सन्त सुजाना। पूछो भेद राह निर्वाना ॥२४॥
पूरे गुरु की यह पहचान। सुरत शब्द बतलावें ध्यान ॥२५॥
ऐसे गुरु से ले उपदेशा। सुरत शब्द में करो प्रवेशा ॥२६॥
प्रीति उनकी तुम हृदय बसाओ। धर प्रतीति उन जुगत कमाओ॥२७॥
पांच शब्द सुषमन में परखो। मुक्त द्वार निज घट में निरखो ॥२८॥
बीच में जो मृत्यू आजावे। तो तुरन्त नर तन फिर पावे ॥२९॥
इस तन में जो भक्ति कमाई। सो आगे पूरी मिल जाई ॥३०॥
विरथा भक्ति कभी नहीं जाई। आगे को अधिकार बनाई ॥३१॥
वह अधिकार जगे कोई दिन। भक्ति करै पूरी धर नर तन ॥३२॥

जैसे दरज़ी सींते सींते । सोवै जगै रैन के बीते ॥३३॥
सीना शुरू करै जहां छोड़ा । पूरा करै वह थोड़ा थोड़ा ॥३४॥
सूरत इक दिन निरबँध होवै । पाय मुक्त आनन्द में सोवै ॥३५॥
अमर शान्ति में जाय समावै । भव सागर में लौट न आवै ॥३६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सरावै । जिन प्रताप वह यह गति पावै॥३७॥

शब्द ३८.

करो रे मन अन्त का कोई उपाय ॥टेक॥
अन्त काल नगिचावै दिन दिन । तुम नहिं सोचो ताय ।
काल नाग फुसकारै सिर पर । एक दिवस डस खाय ॥१॥
माया डांकिन तुम्हें लुभावै, भिन भिन स्वाँग बनाय ।
तुम मूरख निज हित सब भूले, उस सँग रहे मस्ताय ॥२॥
कनक कामिनी के फन्दे में, कंठ तुम्हार फँसाय ।
तुम तो समझो भोग विलासा, अन्त धोख खुल जाय ॥३॥
बैठे धरैं समाधि गुफा में, तहां ही पकड़े जाय ।
बड़े बड़े जोगी और तपसी, सब ही लिये लुटाय ॥४॥
राम कृष्ण औतार सरीखे, करमन फाँस फँसाय ।
जीवन सम दुरियाय तिनहु को, दीन्हे दुख अधिकाय ॥५॥
काल जाल से बचने को अब, एकहि युक्ति दिखाय ।
कोइ बासी सतपुर का हो जो, नर तन में मिल जाय ॥६॥
जान सकै नहिं कोई उनको, रहें वे भेद छिपाय ।
पर सच्चे जिज्ञासू को वे, मौज से लेंय बुलाय ॥७॥

अपनी प्रीति प्रतीति बख़्श कर, लें वे संग लगाय ।
दें उपदेश करावैं करनी, अपनी दया से ताय ॥८॥
'धारा सिन्धु प्रताप, नाम सँग, सुमिरन ध्यान कराय ।
शब्द नसैनी जो सतपुर की, क्रम क्रम देंय चढ़ाय ॥९॥
वहां पहुँच कर पाओ परम सुख, जन्म मरन छुट जाय ।
अन्त का सही उपाय यही है, भाग से जो मिल जाय ॥१०

शब्द ३९.

वृथा क्यों खोवो जीवन सार ॥ टेक ॥
पूजा करो परिश्रम धारो सब बिन सोच विचार ।
गंगा जमुना सरजू आदिक न्हावो बारम्बार ॥ १ ॥
गया द्वारिका जगन्नाथ काशी बद्रिक केदार ।
तीरथ कर न्हाये तुम बहु दिन हर पौड़ी हरद्वार ॥ २ ॥
वर्ष में जितने व्रत सब कीन्हे निरजल निर आहार ।
रुद्राक्ष तुलसी की माला फेरी रोज़ हज़ार ॥ ३ ॥
खान पान और छूत पाक के साधे धर्म अचार ।
चन्दन घिस मस्तक में थोपा सूरज को जल ढार ॥ ४ ॥
सालिगराम शिवादि की प्रतिमा पूजी निश्चय धार ।
कथा भागवत सतनारायन सुने तीज त्योहार ॥ ५ ॥
यह करतूत करी जीवन भर तोउ न छुटे विकार ।
मन ज्यों का त्यों नाच नचावै भरमे भोगन लार ॥ ६ ॥
झूठ कपट और बेईमानी औगुन भरे हज़ार ।
हिंसा आदिक पाप करें सब ताकें नर्क द्वार ॥ ७ ॥

अविचारी और बुद्ध हीन नहिं सोचें सार असार।
सत असत्त में भेद करें नहिं देखन में हुशियार ॥ ८ ॥
चैतन परम तत्व जो आतम है सब सार का सार।
काल देश से मुक्ति को उसकी गुड़िया खेलें यार ॥ ९ ॥
अपने तन और गृह कारज में ऐसे रहें हुशियार।
क्या मजाल कोइ कौड़ी गठ ले सिर फोड़ें बहुबार ॥१०॥
जग के तुच्छ काज में निरखें बाल की खाल निकार।
मुक्ति हेतु आतम अपने के लापरवाह गँवार ॥११॥
आतम हित की जो समझावे उससे करते रार।
अति क्रोधित हो अनुचित बोलें नास्तिक कहें पुकार॥१२॥
जो अन्धे के अन्धे रहि हौ तुम्हें अपना अख़्तयार।
पर रखियो तुम गांठ बांधकर याद इक बात हमार ॥१३॥
अन्त समय सिर धुन पछितैहो देख काल तलवार।
मारत नर्क दूत धर बाधें तब समझोगे यार ॥१४॥
अबहूं समझ ढूंढ़ सतगुरु को गिर उन चरण मँझार।
सेवा कर पूजा कर उनकी तो होवे निरवार ॥१५॥
आतम बुन्द को वे पकड़ावें आतम सिन्धु की धार।
करै, दया बल ले, अभ्यासा तब होवे उद्धार ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू हैं सर्वोपरि करतार।
परम सिन्धु की धार ने धारा जीव काज औतार ॥१७॥

शब्द ४०.

जो मालिक ने अक़ल दी है उसे कुछ काम में लाओ।
जो आंखें बन्द कर रक्खीं खोल कर होश में आओ ॥१॥

फ़र्क़ हैवां[१] ओ इन्सां[२] में, इसी ही अक़्ल का भाई ।
बिला सोचे करोगे काम, तो हैवान कहलाओ ॥ २ ॥
फ़रायज़[३] जो तुम्हारे हैं, उन्हें तुम ग़ौर से समझो ।
अदा करते हुये उनको, हर इक से निवटते जाओ ॥ ३ ॥
बड़ा क्या फ़र्ज़ है सब से, अक़ल से सोच कर देखो ।
तो पाओगे यही जान अपनी को जानां से मिलवाओ ॥ ४ ॥
ग़रज़ थी यही जानां[४] की अक़ल के अता करने में ।
करो जो यह नहीं पूरी, मुस्तहक़[५] सज़ा हो जाओ ॥ ५ ॥
तुम्हारे ख़्याल में क्या गुनह करने को अक़ल दी है ।
कि तुम बन्दों पै करके ज़ुल्म खुद अय्याश बन जाओ ॥ ६ ॥
वह मल्कुल[६] मौत फाड़े मुंह खड़ा उसकी तरफ़ देखो ।
चबा वह रहा जीवों को लगा अब तुम पै भी दाओ ॥ ७ ॥
शरण में 'धारा सिन्धु प्रताप' के, आओ जो बचना है ।
करो करनी हिदायत उनकी से, नहिं बहुत पछिताओ ॥ ८ ॥

शब्द ४१.

मानुष जन्म कठिन अति जानो ॥ टेक ॥
कोड़ा पशूयोनि में यह जिव भरमत भयो दिवानो ।
कीड़न को जहँ नित अहार कर खाय खाय मस्तानो ॥ १ ॥
दीर्घ कीट[७] और पशु पक्षी से आपहु गयो चबानो ।
ऐसेहि बदला देत लेत नित फिर फिर मर जनमानो ॥ २ ॥
मुश्किल से नर तन यह पायो तोऊ रह्यो बौरानो ।
भोगे जगत भोग विष्ठा सम काग समान सयानो ॥ ३ ॥
धोखे दे दे लूट जोड़ धन फूलो नाहिं समानो ।

१ जानवर, २ मनुष्य, ३ कर्तव्य, ४ प्रीतम, ५ अधिकारी, ६ यमदूत, ७ बड़ा कोड़ा,

खाय खिलावै सुत स्त्री को जिन सँग मोह फँसानो ॥ ४ ॥
हित की सीख सींग पर मारै सब से रहै अकड़ानो।
इक दिन हैज़ा प्लेग आदि बस देखत जाय बिलानो ॥ ५ ॥
सन्मुख विपति भयंकर तुम्हरे यह निश्चय कर मानो।
भोग भोग दुख जहँ से आयो वांही होय ठिकानो ॥ ६ ॥
पल घंटा दिन मास वर्ष कर जीवन जात सिरानो।
स्वांस पै स्वांस कढ़त छिन छिन में डंका कूच बजानो ॥ ७ ॥
साध महात्मा सिख दे हारे मूढ़ नहीं चेतानो।
'धारा सिन्धु प्रताप' शरण बिन भाग हीन भटकानो ॥ ८ ॥

शब्द ४२.

मानुष योनि अमोलक है री ॥ टेक ॥
स्वर्ग से ले पाताल लोक तक जितने जीव रहेरी।
वेद शास्त्र सारे ब्रह्माण्ड लौं मानुष श्रेष्ठ कहेरी ॥ १ ॥
कारन यह केवल नर योनी कर्म की योनी हैरी।
भला बुरा जानन को नर ही बुद्धि विचार लहैरी ॥ २ ॥
नीचे को योनिन में यह जिव नर तन कर्म दहैरी।
ऊपर की कुल देवयोनि में नीके फल भोगैरी ॥ ३ ॥
जो जिव जहँ नर तन प्रताप से जैसे देव भयेरी।
उन्नति वहँ से ऊंच चढ़न की कोई कर न सकैरी ॥ ४ ॥
हर इक देव ईर्षा वश वहँ ऊपर चढ़न चहैरी।
या कारण उत्कंठित रहैं सब कब नर योनि मिलैरी ॥ ५ ॥
पर बिन भोगे शुभ फल पूरे मनुष न होय सकैरी।
सुखहू में यह मान ईर्षा देवन हृदय दहैरी ॥ ६ ॥

नर योनी ही कर्म स्थान या सकल सृष्टि में है री।
या को पाय रहै जो ग़ाफ़िल दुःख अपार सहैरी ॥ ७ ॥
लापरवाह मूढ़ बहु नीचे चले जांय उतरेरी।
कोइ कोइ शुभ करनी से देवा छोटे बड़े भयेरी ॥ ८ ॥
भागवान सब से जो इनमें सन्तन चरण गहैरी।
होय निःकर्म फन्द सब काटै निज पद अमर लहैरी ॥ ९ ॥
अजहूं प्राणी मूढ़ चेत सुन गुरु जो बचन कहेरी।
स्वांसा पूंजी निघटत जावे फिर तू पछितै है री ॥१०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चिताये बड़ भागी चेतेरी।
अभिमानी अनगढ़ उदण्ड जो नरकन आग दहेरी ॥११॥

शब्द ४३.

कृत देखो या पिंडी मन की। यह करै कुगति कैसी जन की ॥१॥
अन्तःकरण को प्रेरित करके। चाह उठावै भोगन की ॥२॥
भोग आस दे यत्न करावै। बतलावै हाजत धन की ॥३॥
शुभ और अशुभ काम करवावै। पोट बँधावै कर्मन की ॥४॥
धन कमवा सामां मँगवावै। सुन्दर सर्व प्रकारन की ॥५॥
फिर यह जीव भोग रस लेवै। कर आसक्ती इन्द्रिन की ॥६॥
पथ और अपथ भोग नहिं सोचै। करै न परवा रोगन की ॥७॥
भोग भोग रोगन में गिरसे। बिगड़ै आकिरती तन की ॥८॥
आँख मूंद मस्तावै कुछ दिन। हवा उड़ै फिर जोबन की ॥९॥
दर्पण में मुंह देख रंज कर। याद करै बालापन की ॥१०॥
थोड़े दिन सुख अभिमानी हो। खान खुलै फिर दुक्खन की ॥११॥

तन तो क्षीन होत नित जावे। रहै न शक्ती भोगन की ॥१२॥
धन सामां देखै और रोवै। आस रही नहिं बिलसन की॥१३॥
देखत देखत यही लोक में। होय दुर्दशा दुर्जन की ॥१४॥
मन में बास कुबास भराई। जो है राह कुकर्मन की ॥१५॥
थोड़ी बहुत तसल्ली धन की। सोहू बसुधा चोरन की ॥१६॥
अस आपत्ती माँहि फँसे जिव। बरनौं कथा कहा उनकी ॥१७॥
तन मन धन तीनों ही बिगड़े। रह जाय पूंजी पापन की ॥१८॥
फिर आवै जब वृद्ध अवस्था। वृद्धि होय घट दूतन की ॥१९॥
लोक गया परलोक गँवाया। राह लई अब नर्कन की ॥२०॥
गाई मैं सँक्षिप्त रूप में। यह कृत माया नन्दन की ॥२१॥
मन ठग से जो बचना चाहो। शरण लेउ तुम संतन की ॥२२॥
सेवा सतसँग करके उनका। करो कमाई शब्दन की ॥२३॥
करो सुकर्म जिव काज बनाओ। यही रीति है सज्जन की ॥२४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' परम गुरु। बलिहारी उन चरनन की ॥२५॥

शब्द ४४.

धरो भाई फूंक फूंक यहाँ पाँय ॥ टेक ॥

भूल भुलइयां बहुत जगत में पग पग पै उरझांय ॥ १ ॥
मन इन्द्री भीतर से लपकें भोगन मांहि फँसांय ॥ २ ॥
तमोगुणी धारें अन्तर और बाहर रहीं भरांय ॥ ३ ॥
याही ते अज्ञान दशा में सब जिव सदा रहांय ॥ ४ ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह अन्तर से ज़ोर चलांय ॥ ५ ॥
रूप रंग रस गंध शब्द बाहर से सब धकियांय ॥ ६ ॥

बात बात पर फंद लगै यहां जग अस नाज़ुक ठांय ॥ ७ ॥
हाथ हिलाओ आंख दिखाओ तुरत करम लग जांय ॥ ८ ॥
स्वांस स्वांस और पल पल जिव पर बैरी कर्म चढ़ांय ॥९॥
यों चौरासी ओर ढकेलन की वे राह बनांय ॥१०॥
चारों ओर बिछे हैं कांटे छिन छिन छिद् छिद् जांय ॥११॥
काल और माया नाग नागिनी जिव को डस डस खांय ॥१२॥
जीव अचेत न चेतै मूरख सतगुरु नित्त चितांय ॥१३॥
तुच्छ सुक्ख कारन रहें भूले अन्त में बहु पछितांय ॥१४॥
अबहूं समझ बूझ तुम पकड़ो जो गुरु राह बतांय ॥१५॥
बैरी थक मारग तजि भागें सर्व कष्ट मिट जांय ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु की जो जिव शरनी आंय ॥१७॥
तिनको शब्द जहाज़ चढ़ाकर अमर धाम पहुंचांय ॥१८॥

शब्द ४५.

सुनो भाई चित दे गुरु उपदेश ॥ टेक ॥
देश तुम्हारा निर्मल चेतन । यह मलीन जड़ माया देश ॥ १ ॥
तुम्हरे देश में सुक्ख अपारा । यहां अपार दुख कष्ट कलेश॥ २ ॥
तुम्हरा देश प्रेम भण्डारा । यहां तो बसें ईर्षा द्वेष ॥ ३ ॥
वहां तुम्हारे पिता दयाला । यहां जम काल महेश गणेश ॥ ४ ॥
सत गुरु रूप पिता धर आये । निज घर का लाये सन्देश ॥ ५ ॥
किरपा कर चेतावें तुमको । क्यों घर छोड़ पड़े परदेश ॥ ६ ॥
चार खान की योनि योनि में । भटको धर धर भिन भिन भेष॥ ७ ॥
बचना चाहो जो इस दुख से । तो गुरु का मानो आदेश[1] ॥ ८ ॥

[1] आज्ञा ।

सत सँग करो ध्यान गुरु धारो । सुरत शब्द में करो प्रवेश ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धाम वह । निर्मल पद सर्वोपरि शेष[1] ॥१०॥

शब्द ४६.

सोच समझ ले सखी सयानी । यहां से इक दिन जाना है री ॥१॥
थोड़े दिन के जीवन कारन । क्यों यह मान गुमाना है री ॥२॥
सब सखियन से प्यार से बरतो । जावत जन्म सिराना[2] है री ॥३॥
अन्त समय नगिचावे दिन दिन । सांस इक दिन रुक जाना है री॥४॥
गिनी सांस हैं या आयू में । कितनी कौन ठिकाना है री ॥५॥
निश दिन भर्र भर्र निकसत वे । जल्द खतम हो जाना है री ॥६॥
या से अब आगे की सोचो । जहां देह तज जाना है री ॥७॥
जीवत अपना जन्म सुधारो । सोई काम सयाना है री ॥८॥
स्वांस स्वांस पर सुमिरो प्रीतम । जो सतहिती[3] सुजाना है री ॥९॥
नेह लगा उन चरनन में जो । सत सुहाग बख़शाना है री ॥१०॥
बिना भक्ति जो मरो तो विधवा । रह कर खान समाना है री ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू के । बार बार गुन गाना है री ॥१२॥
जिन नवीन यह भक्ति चलाई । तिनके बल बल जाना है री ॥१३॥

शब्द ४७.

ज़रा तो सोचो हे प्यारे, कहां बैठे हो तन धर कर ।
इसी दुनियाँ में क्या हैगा, हमेशा का तुम्हारा घर ॥ १ ॥
जो नातेदार यां पर हैं, तुम्हारे कब के संगी हैं ।
हमेशा रहोगे क्या संग, उनके याँ अमर होकर ॥ २ ॥
समझलो खूब यह दिल में, तुम्हारा रूप चेतन है ।
मगर इस देश में वह छिप रहा है परदों के अन्दर ॥ ३ ॥

१ सब के अन्त में बाक़ी रहने वाला, २ बीता, ३ सच्चा हित करने वाला ।

है जब तक बीज छिल्के में, ज़मीं में जमता उगता है।
तो इस क़ानून से फिर बीज, जीवों का बचै क्योंकर ॥ ४ ॥
हमेशा रहेगा दुख जन्मने मरने का जीवों को।
हैं जब तक चढ़े छिलके, आवरण के जीव के ऊपर ॥ ५ ॥
विचारो समझो सोचो है, कोई क्या राह बचने की।
जो ढूंढ़ोगे तो पाओगे, बचो सत गुरु सरन लेकर ॥ ६ ॥
उतारें 'धारा सिन्धु प्रताप' अपनी दया से छिल्के।
करा के शब्द गुरु भक्ती, दिलावें अमर पद निज घर ॥ ७ ॥

शब्द ४८.

आयगा एक दम वह दम बजै जब कूच का डण्का।
निकल जावेगा मन रावण, जलै यहाँ देह की लंका ॥ १ ॥
जो तुमने धन और सामाँ कर, इकट्ठे घर में रक्खे हैं।
तुम्हारा अन्त में होगा, न उसमें एक भी किन का ॥ २ ॥
आयगी काम नहीं हरगिज़ मुहब्बत दुनियादारों की।
खड़े ताकेंगे मुंह बेबस, भरोसा है तुम्हें जिनका ॥ ३ ॥
अभी मौक़ा है ढूंढ़ो कोई, हामी[1] वक़्त आख़िर का।
मुहाफ़िज़[2] है नहीं सतगुरु बिना कोई सुरत मन का ॥ ४ ॥
मुहब्बत थोड़ी सी भी उनकी आख़िर पर बचा लेगी।
डूबते वक़्त देता है, सहारा बहुत इक तिनका ॥ ५ ॥
सत गुरू 'धारा सिन्धु प्रताप' ही हैं वक़्त सतगुरु अब।
इसी मण्डल में है चलता अभी कारे निजात[3] उनका ॥ ६ ॥

१ सहाय करने वाला, २ रक्षक, ३ मोक्ष।

शब्द ४९.

श्रुत मन को यों चितावे, कुछ धन अटल कमाओ।
कर कर के नित परिश्रम, क्यों धूल में मिलाओ ॥ १ ॥
तुम जो कमाई करते, देही का भरना भरते।
यह देह चार दिन की, नर योनि क्यों गँवाओ ॥ २ ॥
धन धाम की जो वृद्धी, दुनिया की ऋद्धि सिद्धी।
यह खुद तुम्हें तजेंगी, या तुम ही छोड़ जाओ ॥ ३ ॥
मेहनत है सब अकारथ, तन तज जब जिव सिधारत।
क्यों जन्म ना सुधारत, क्यों जम के धक्के खाओ ॥ ४ ॥
विद्या की जो कमाई, यहां उसकी है बड़ाई।
देने से वह अधिकाई. उसका है यह प्रभाओ ॥ ५ ॥
तन संग वह रहाई, मरने पै छोड़ जाई।
वह भी है क्या कमाई. जो संग न ले जाओ ॥ ६ ॥
सब से बड़ी कमाई. तप दान पुन कहाई।
मरने पै संग जाई, परलोक में फल पाओ ॥ ७ ॥
जब अपना फल चुकावे चौरासी में गिरावे।
जिव ज्यों का त्यों रहावे, फिर क्या बड़ा प्रभाओ ॥ ८ ॥
मन मित्र सुनो तातें, यह सब हैं थोथी बातें।
यही फांसने की घातें धोखे में न तुम आओ ॥ ९ ॥
अब कहना मेरा मानो, इस जग को जाल जानो।
हठ अपनी न तुम ठानो, गुरु भक्ति अब कमाओ ॥१०॥
तुमने भी वतन अपना, तज बहुत सहा तपना।
काहे को अधिक खपना, चल घर का राज पाओ ॥११॥

मैं सँग बहुत तुम्हारे, भरमी जगत मझारे।
सहती रही दुख सारे, अब मुझे भी छुड़ाओ ॥१२॥
मानो अब अर्ज़ मेरी, गुरु शरण लो सबेरी।
इक छिन की न कर देरी, कर गुरु से प्रेम भाओ ॥१३॥
यह है अटल कमाई, यह कभी ना नसाई।
कुछ सोचो प्यारे भाई, अब बन्द से छुड़ाओ ॥१४॥
गुरु 'धारा सिन्धु प्रतापी', तारें हैं जगत पापी।
वह सबके मालिक आपी. कर प्रेम उन्हें रिझाओ ॥१५॥

शब्द ५०.

रहे क्यों जग में मूड़ पचाय ॥ टेक ॥
जा सुख को तुम भ्रमत फिरत हो। सो सुख यहां न नेंक दिखाय ॥१॥
देखो जांच पदारथ सुख के। तो सब भरम तुरत खुल जाय ॥२॥
स्वास्थ[1],नार,सुत,धन और विद्या। पांच बड़े सुख जगत बताय॥३॥
रोग सोग नित स्वास्थ बिगाड़ैं। निज अनुभव से सोचो ताय॥४॥
नार आपनी की गति देखो। कितना सुक्ख रहे तुम पाय॥५॥
पाल पोस सुत बड़ा करो फिर। तुम्हें भूल नारी सँग धाय ॥६॥
तुमसे पहिले जो मरजावे। तो जीवन भर तुम्हें रुलाय ॥७॥
धन कारन बहु पाप कमाओ। सो धन चोर मूस[2] ले जाय ॥८॥
रहै तो बहु अभिमान बढ़ावे। तुमसे और पाप करवाय ॥९॥
विद्या थोड़ी घनी जो पाओ। तन के संग सोऊ मिट जाय ॥१०॥
निज सुख और निज संगिन के सुख। देखो हिय की आंख खुलाय॥११॥
तो पाओगे सब ही धोखा। मूढ़ अज्ञानी रहे फँसाय ॥१२॥
ताते चित्त हटाकर इनसे। अमर परम सुख ढूंढ़ो आय ॥१३॥

१ तन्दुरुस्ती, २ चोरीकर।

वाका मार्ग तुम्हारे घट में। है सो सतगुरु रहे बताय ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' शरण लो। तो सुख खान सहज मिल जाय॥१५॥

शब्द ५१

क्यों भटको बाहर तुम भाई। खोज करो घट अन्तर आई ॥१॥
बाहर है सब झूठ पसारा। अन्तर पाओ सुख सत सारा ॥२॥
यहँ तो छिन भंगुर सुख आवै। आज हँसा कर काल रुलावै ॥३॥
घट में सुक्ख अपार रहावै। बड़ भागी नर गुरु से पावै ॥४॥
यह तो बड़ा उजाड़ देश है। इसमें भारी कलि कलेश है ॥५॥
अन्तर आबादी है भारी। जहां सुक्ख ही सुक्ख अपारी ॥६॥
भांति भांति की लीला न्यारी। अचरज रूप बाग़ फुलवारी ॥७॥
नूरानी रंगों की क्यारी। महा सुगंधित मोहें सारी ॥८॥
नेहरें नदियां सब नूरानी। कोह[1] नूर[2] ऊंचे अस्मानी ॥९॥
सर्व दृश्य में नूर समाना। देख देख मन हो हैराना ॥१०॥
उठैं धुनैं अति मधुर मनोहर। रचे जहां तहँ अमी सरोवर ॥११॥
हंस रूप वरणे नहिं जाई। देख देख हिय प्रेम उमगाई ॥१२॥
प्रेमानन्द रहै घट छाई। दृश्य देख वह अति अधिकाई ॥१३॥
यह तो हाल लोक नीचिन का। अकह अपार हाल ऊंचिन का॥१४॥
यह सब सतगुरु करैं बखाना। मानै नहिं जिव मूढ़ अजाना ॥१५॥
जग के तुच्छ सुक्ख उरझाने। माया ममता रहे भुलाने ॥१६॥
बिना भाग कोई नहिं पावैं। 'धारा सिन्धु प्रताप' बतावैं ॥१७॥

शब्द ५२.

अरे मूरख मन अज्ञानी! हुआ तू थोथा अभिमानी ॥ १ ॥
तुझे जिस बात का है अभिमान। करेगी वही तुझे हैरान ॥ २ ॥

१ पहाड़, २ प्रकाश।

ख़्वाब ग़फ़लत में तू सोता। ज़िन्दगी धोखे में खोता ॥ ३ ॥
बड़े राजा और महाराजा। काल के हो गये सब खाजा ॥ ४ ॥
बाल, हिरनाकुश और रावन। काल ने कर डाले भक्षन ॥ ५ ॥
सिकन्दर दारा और महमूद। हुये इक दम में सब नाबूद[१] ॥ ६ ॥
राम और कृष्ण जो थे अवतार। छोड़ना पड़ा उन्हें संसार ॥ ७ ॥
धनन्तर और लुक़मान हकीम। हुये चौरासी जाय मुक़ीम[२] ॥ ८ ॥
मुहम्मद गौतम बुध मूसा। शंकराचारज और ईसा ॥ ९ ॥
करोड़ों को शिक्षा देकर। गये सब जग मिथ्या कहकर ॥१०॥
रहा नहिं कोई जग माहीं। जगत देखत की परछाहीं ॥११॥
एक इक स्वांस ग़नीमत जान। मनुष तन बहुत अमोलक मान॥१२॥
गुज़ारो काम ज़रूरी में। न खोओ दिन मग़रूरी[३] में ॥१३॥
बहुत पछताओगे पीछे। काल जब गला आन भींचे ॥१४॥
किसी पर ज़ोर न कुछ ठानो। तुच्छता अपनी पहिचानो ॥१५॥
याद मालिक की कर हर दम। बसा मन में गुरु चरन पदम ॥१६॥
वासना जग की सब त्यागो। विषय से नफ़रत कर भागो ॥१७॥
जीव अपने का काज करो। दया गुरु ले भौ पार तरो ॥१८॥
जगत है धोखे की टट्टी। होयगा जल्दी तन मिट्टी ॥१९॥
खोज कर शब्द गुरू को धार। बिना उन नहिं होगा उद्धार ॥२०॥
बिना उन नहीं छुटै जमजाल। रहेगा देता दुख यह काल ॥२१॥
सीख निज हित की यह पहिचान। नहीं फिर गिरो जाय चरखान॥२२॥
सतगुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। करावेंगे सुत शब्द मिलाप ॥२३॥

शब्द ५३.

तुम छिन छिन भक्ति कमाओ। मौत अब आवत है ॥ टेक ॥

१ नाश, २ बासा किया, ३ घमण्ड।

साथी तुम्हरे बहुत चले गये। तुम भी अब सज जाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ १ ॥

जब जम आके कंठ दबावे। कुछ नहिं चलै उपाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ २ ॥

जो निगुरे भक्ती बिन मरि हौ। नर्क द्वार टकराओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ३ ॥

बांधो कमर करौ तय्यारी। तोशा पोट भराओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ४ ॥

भक्ष अभक्ष संग जो धरि हो। रोय रोय पछिताओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ५ ॥

सुमिरन ध्यान भजन का तोशा। जितना बनै लदाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ६ ॥

दया गुरू ले चढ़ नभ पहुँचो। जोत निरंजन पाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ७ ॥

आगे चढ़ गगना में जाओ। ब्रह्म रूप हो जाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ८ ॥

सारँग सुन फिर सुन्न समाओ। हंसा भेष धराओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ९ ॥

आगे मारग सहज है भाई। जो सतगुरु सँग जाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ १० ॥

भँवर गुफा के जब हो पारा। सत् अचिन्त हो जाओ ॥
मौत अब आवत है ॥ ११ ॥

काल बली से खूंट छुड़ा के। सतगुरु के गुन गाओ ॥
मौत अब आवत है ॥१२॥
यह सब यत्न करो जीवत ही। नहिं सिर धुन पछिताओ ॥
मौत अब आवत है ॥१३॥
जागो चेतो समझो सोचो। अब मत दिवस गँवाओ ॥
मौत अब आवत है ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू पर। बार बार बलि जाओ ॥
मौत अब आवत है ॥१५॥

शब्द ५४

गुरु चरनन प्रीति लगाओ। जग से मन दूर हटाओ ॥ १ ॥
जग में तू क्यों नित तपता। गुरु पद में लो शीतलता ॥ २ ॥
जग में भारी अँधियारी। पाओ गुरु पद उजियारी ॥ ३ ॥
है दुःख रू१ जग सारा। गुरु पद सुख का भण्डारा ॥ ४ ॥
जग में है काल भयानक। मारै जिव आय अचानक ॥ ५ ॥
गुरु पद में परम अनन्दा। नहिं काल करम दुख द्वन्दा ॥ ६ ॥
गुरु सत्संग में नित जाओ। सुत मन जग से सिमटाओ ॥ ७ ॥
फिर घट अन्तर उल्टाओ। जहँ रूप शब्द रस पाओ ॥ ८ ॥
देखो तत रँग फुलवारी। लख दीप माल उजियारी ॥ ९ ॥
आगे की देखो लीला। जहँ मिलै चक्र इक नीला ॥१०॥
फिर श्याम घटा मन मोहै। जहँ चमक बीजली सोहै ॥११॥
जोती लख प्यार बढ़ाओ। फिर बंक नाल धस जाओ ॥१२॥
त्रिकुटी में सूरज निरखो। धुन तीन भिन्न जहँ परखो ॥१३॥
जा राम कृष्ण पद पारा। ले पार ब्रह्म दरबारा ॥१४॥

लखि महासुन्न अँधियारी। जहँ उठैं गुप्त धुन चारी ॥१५॥
फिर भँवर गुफा में जाओ। खिड़की धस सत्य समाओ ॥१६॥
कर दर्शन सत्त पुरुष के। जो हैं समराट[1] अरश[2] के ॥१७॥
जा सत्त लोक के पारी। कर अलख पुरुष से यारी ॥१८॥
चढ़ि पहुँचो लोक अगम में। भींजो आनन्द परम में ॥१९॥
फिर सिन्ध में बुन्द समावै। नित गुरु प्रताप गुन गावै ॥२०॥

शब्द ५५.

सुरत तुम जागो अब। यह आयू बीती जाय ॥ टेक ॥
अवसर निकला जाय हाथ से। दिन दिन मौत रही नगिचाय ॥१॥
सोने का अब समय नहीं है। सतगुरु प्यारे रहे जगाय ॥ २ ॥
जल्दी करो देर मत धारो। नहिं तो पीछे रहो पछिताय ॥ ३ ॥
यह मत सोचो अमुक काम से। निबट करेंगे भजन बनाय ॥ ४ ॥
काम जगत के कभी न निबटे। एक जाय दूसर फिर आय ॥ ५ ॥
ना यह सोचो उमर ढलै जब। समय भजन का तबही आय ॥ ६ ॥
मृत्यू का कुछ ठीक नहीं है। सोचत सोचत कब आजाय ॥ ७ ॥
जो मृतु आई परलय हो गई। पता तुम्हार कोइ नहिं पाय ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' पुकारैं। जो बनि सकै सो अभी बनाय ॥ ९ ॥

शब्द ५६.

अरे मन गुरु की अज्ञा मान ॥ टेक ॥
गुरु हैं तुम्हरे पिता मात पति। बन्धू मित्र सुजान ॥ १ ॥
तू तो पड़ा जगत भ्रम कूपा[3]। छाया तम अज्ञान ॥ २ ॥
कोट जन्म के पुण्य भाग से। मिले गुरू अब आन ॥ ३ ॥
यह अवसर तुम पाय हाथ से। देव वृथा मत जान ॥ ४ ॥

१ राजाओं का राजा, २ आकाश, ३ कुंआ।

जब जब पहिले नर तन पाया । गिरे लौट फिर खान ॥ ॥ ५ ॥
तृष्णा बस नर तन में दर दर । भ्रमत रहे ज्यों स्वान ॥ ६ ॥
अन्धे रहे मान में खप खप । भई न गुरु पहिचान ॥ ७ ॥
पुनि पुनि गये नर्क चौरासी । योनी भूत मसान ॥ ८ ॥
भोगे बड़े बड़े भारी दुख । अब तो चेत अजान ॥ ९ ॥
सतगुरु तुमहिं उबारन कारन । प्रगटे आय जहान ॥१०॥
दौड़ो धाओ पकड़ो चरना । तन मन कर क़ुरबान ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दिलावें। अक्षय[1] अटल अमान[2] ॥१२॥

शब्द ५७.

सुरत कुछ यतन करो, कैसे छूटे जम घात ॥ टेक ॥
तू फंसि रही संग मन जग में, करै नित्त उत्पात ॥ १ ॥
कर्म करै चोटें नित खावै, भूल भुलैयां रही भुलात ॥ २ ॥
दुख पर दुःख सहै नहिं चेतै, यह अचरज की बात ॥ ३ ॥
मन माया यह जाल बनाया, जीवन को उरझात ॥ ४ ॥
जिन प्रानिन से नेह लगावै, तजैं तोहि दै लात ॥ ५ ॥
अन्त काल जो धोखा देवैं, सोई तोहि सुहात ॥ ६ ॥
सतगुरु तोहि भली सिख देवैं, उनके ढिंग नहिं जात ॥ ७ ॥
रहै अचेत मगन बैरिन में, जो तोहि मार रुलात ॥ ८ ॥
रहि अचेत अठ खिलियां खेलै, खावै नित प्रति मात ॥ ९ ॥
धन के लोभ फिरै बौरानी, नरतन वृथा गँवात ॥१०॥
सतगुरु भेद बतावैं घर का, घट में राह लखात ॥११॥
तू अजान उनकी नहिं मानै, वे बहु विधि समझात ॥१२॥
कर सत्संग गहो उन शरणा, जग से तोड़ौ नात ॥१३॥

१ जिसका कभी नाश न हो, २ शान्ति ।

'धारा सिन्धु प्रताप' परम गुरु, दिन दिन भाग बढ़ात॥१४॥

शब्द ५८.

अरे मन त्याग जगत के भोग ॥ टेक ॥

सब इन्द्रिन मिलि बांधा तोको, सहत रहै तू सोग ॥ १ ॥

हानि लाभ बिन सोचे समझे, बिष का करै प्रयोग ॥ २ ॥

उलटी सीख दैंय तोहि नितही, सभी कुटुंब के लोग ॥ ३ ॥

उनकी कहन मोह बस मानै. अधिक बढ़ावै रोग ॥ ४ ॥

जानै नहिं निज घर निज पितुसे, कबसे हुआ बियोग ॥ ५ ॥

कैसे हुआ जगत में गाढ़ा, जड़ चैतन्य कुयोग ॥ ६ ॥

सुरत अंश मालिक की फँस कर, किया काल से न्योग[1] ॥ ७ ॥

छूटन की विधि संत बतावें, सुरत शब्द का योग ॥ ८ ॥

उन्हें पीठ दे नित्त बढ़ावै, माया से संयोग ॥ ९ ॥

'धारा सिन्धु प्रताप' दया बिन, छूटैं रोग न सोग ॥१०॥

शब्द ५९.

अरे मन क्यों नहिं ले गुरु ओटा ॥

काहे मरै जगत में पचि पचि, करै कर्म नित खोटा ।

तन छूटै चौरासी धावै, बांधै पाप की पोटा ॥ १ ॥

योनि योनि में काल घसीटै, मारै दम दम सोटा ।

शुभ करनी से नर तन पाया, अब क्यों भुगतो टोटा ॥ २ ॥

कहना मानो गुरु समझावें, नहिं सहिहौ जम झोटा[2] ।

जै है नर्क बड़े दुख सहिहै, जहां बार बहु लोटा ॥ ३ ॥

अग्निखम्भ में बांधि मारिहैं, पकड़ पकड़ जम चोटा ।

गुरु शरणी ले शब्द कमाओ, रहो चित्त से छोटा ॥ ४ ॥

१ अनुचित सम्बन्ध २ झटका ।

नभ चढ़ चलो तजो पिण्डीमन, काल जोत का ढोटा[१] ।
कँवल सहस दल पार सिधारो, पहुंचो त्रिकुटी कोटा[२] ॥ ५ ॥
सुन्न महासुन भँवर गुफा चढ़, पाओ सत पद मोटा[३] ।
'धारा सिन्धु प्रताप' उबारैं, जो उन चरनन लोटा ॥ ६ ॥

शब्द ६०.

लेहु सतगुर की आज पनाह[४] ॥ टेक ॥
जब से मन उत्पन्न भये तुम, बहत रहे भव सिंधु प्रवाह[५] ।
या से निकल सको नहिं कबही, बिना दया सतगुरु मल्लाह ॥ १ ॥
बहुतक कष्ट उठाये तुमने, अब क्यों होते अधिक तबाह ।
विषय विकारन की स्याही में, करत रहे तुम हृदय सियाह ॥ २ ॥
पुनि पुनि नरतन तज नीचे गये, नरकन गिरे कराह कराह ।
गुरु बहु हित उपदेश सुनाये, उनकी मानी नाहिं सलाह ॥ ३ ॥
अवसर पाया बहु समझाया, तो भी तुम रहे लापरवाह ।
भाग से अब अवसर फिर आया, खाली जान देहु नहिं ताहि ॥ ४ ॥
गुरु संगत मिल जन्म सुधारो, पाओ वहां निज घर की राह ।
संसारिन का संग तजे बिन, नहिं सतसंग में होय निबाह ॥ ५ ॥
धीरे धीरे मन से काढ़ो, जग के विषय भोग की चाह ।
जग के तुच्छ सुक्ख के बदले, पाओ परमानन्द अथाह ॥ ६ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बुझावें, अमृत जल से सब कलि दाह ।
वे हैं समर्थ दयाल अपारा, सब रचना के शाहंशाह ॥ ७ ॥

शब्द ६१.

अरे मन सतगुरु से जुग बांध ॥ टेक ॥
जग में जहँ जहँ चित्त फँसाओ । लागे वहीं उपाध ॥ १ ॥

१ पुत्र, २ गढ़, ३ बड़ा, ४ शरण, ५ धार ।

बिना दया गुरु मोह जगत का । जानो रोग असाध ॥ २ ॥
अन्य युक्ति से छूटो नाहीं । ऐसी विषम वियाध ॥ ३ ॥
सतगुरु परम देव देवन में । धारें गती अगाध[1] ॥ ४ ॥
त्यागो करम धर्म सब पूजा । सतगुरु चरण अराध ॥ ५ ॥
सुरत शब्द की करो कमाई । पाओ सहज समाध ॥ ६ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' कँवल पद । नित्त चित्त से साध ॥ ७ ॥

शब्द ६२.

गुरु चरणों में ध्यान लगाओ मना ॥ टेक ॥
सतगुरु सतसँग योग युक्ति सब । दया से अद्भुत साज़ बना ॥ १ ॥
गुरू मौज से हुये इकट्ठे । प्रेमी श्रद्धावान जना ॥ २ ॥
अस औसर में रहो अभागी । तो जानो बुधि काल हना ॥ ३ ॥
अपने जीव का हित जो चाहो । सतगुरु के पकड़ो चरना ॥ ४ ॥
जो यह समय हाथ से खोओ । तो पाओगे दुक्ख घना ॥ ५ ॥
सीख मान गम्भीर हृदय से । त्यागो अब सब छुकड़पना ॥ ६ ॥
इस कारज में पिलो रात दिन । तो छुट जाय जन्म मरना ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू की । कर परतीत गहो शरना ॥ ८ ॥

विरह प्रेम.

शब्द ६३.

बिरह अग्नि दरश की भड़क रही, दिन रात कलेजा जलता है ।
और दिल हे प्रीतम तेरी छबि की, कर कर याद मचलता है ॥ १ ॥
बार बार धीरज धर धर कर, बहुत इसे समझाता हूं ।
कुछ अर्से तक चुप रह कर यह, इक दम बेसब्र उछलता है ॥ २ ॥

[1] अथाह

राह में ख़तरे बहुत बड़े, और मंज़िल दूर दराज़ बहुत ।
धीरज बिन राह न तै होगी, यह पाठ में रोज़ निकलता है ॥३॥
जो धर प्रतीति और प्रीति चरन, गुरु ध्यान भजन सतसंग करे ।
और कभी न छोड़े कुछ भी हो, पिय अंत में उसको मिलता है ॥४॥
यह सुरत शब्द अभ्यास पिया के, घर का एक हि रस्ता है ।
और इस ही की शक्ती से, मन माया का बस नहिं चलता है ॥५॥
पर शर्त यही इस शग़्ल[1] की है, कर धीरज धीरज धीरज धर ।
जो हरगिज़ हरगिज़ हारै नहिं, उसही का काम सफलता है ॥६॥
वर्ष हज़ारों ऋषी मुनी, कर कर समाध थक बैठे सब ।
और अब भी कोई करै तो देखै, कैसा काल कुचलता है ॥७॥
यह बातें हम सब रोज़ सुनें, और रोज़ पढ़ें फिर कारण क्या ।
सतसंग भजन सब छोड़ बैठने को, जी अक्सर चलता है ॥८॥
यह ख़ूब समझ लेना चहिये, धोखे अंतर में मिलैं बहुत ।
वह इक दिन पूरा होगा, जो धोखों से नहीं फिसलता है ॥९॥
जो धोखों विघ्नों ख़तरों में, पीछे हरगिज़ नहिं हटता है ।
गिर गिर कर बारम्बार दुखो, हो हो उठ नित्त सम्हलता है ॥१०॥
जो दर्द जिगर और आग, विरह चाहे जितनी हो सहता है ।
वह काल अरु माया जीत एक, दिन परम पिया से मिलता है ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' कँवल पद जिसने पकड़ लिये दृढ़ कर ।
उसका ही आतम कँवल अगम, परमात्म कँवल में खिलता है ॥१२॥

शब्द ६४.

जुदाई सतगुरू में जब कोई बीमार होता है ।
हक़ीक़ी[2] इश्क़ में फँस करके ख़स्ता[3] ख़्वार[4] होता है ॥ १ ॥

१ अभ्यास, २ सच्चा और परमात्मा का, ३ चकना चूर, ४ बे इज्जत ।

मुसीबत गिरिया[1] ओ ज़ारी[1] भी उसको सहनी पड़ती है ।
व दर्दे जिगर भी बिसियार[2] हमला आर[3] होता है ॥२॥
कलेजा चैंकता है खून का पानी बनाता है ।
किनाराकश[4] सभी से, जहां से बेज़ार[5] होता है ॥३॥
है यह मशहूर पूरे सतगुरू तो बहरे[6] रहमत[7] हैं ।
तो फिर बन्दे पै क्यों दुख दर्द का अम्बार[8] होता है ॥४॥
जो हैं गुरु इस क़दर पाबन्द[9] भी क़ानून[10] क़ुदरत[11] के ।
तो फिर बन्दे का गुरु पूरे से इस्तफ़सार[12] होता है ॥५॥
दया के सिन्धु के और सर्व समरथता के क्या मानी ।
जो मालिक जीव के कर्मों से भी लाचार होता है ॥६॥
यों तो सब जीव भी लाचार अपने अपने कर्मों से ।
तो मानी यह हैं रहमत मांगना बेकार होता है ॥७॥
रवा[13] रक्खा[14] मगर है मांगना रहमत फ़क़ीरों ने ।
कहा है मांगना मंज़ूर अज़[15] दरबार होता है ॥८॥
ग़रीबी आजिज़ी[16] और इन्कसारी[16] से ख़ुदा राज़ी ।
तो फिर इस मुअम्मे[17] का समझना दुश्वार होता है ॥९॥
नतीजा यह कि भक्ती मरते दम तक करते ही जाओ ।
यह मरना और मौतों से पसन्देयार[18] होता है ॥१०॥
रहम इन्सान करता है जो क़तरा[19] बहरे[20] बेहद का ।
तो क़तरा बेख़तर है बहर जब दिल्दार[21] होता है ॥११॥

१ रोना, २ बहुत, ३ सताने वाला, ४ एकान्त वासी, ५ उकताया हुआ, ६ समुद्र ७ दया, करुणा, ८ ढेर, ६ बँधुआ, १० नियम, ११ माया, १२ प्रश्न, १३ उचित, १४ समझा, १५ से, १६ दीनता, १७ पहेली, १८ प्रीतम का प्यारा, १६ बूंद, २० सिन्धु, २१ प्रीतम ।

मखज़नेरहम[१] 'धारा सिन्धु प्रताप' हैं यह सुनता हूं।
यह सच ही है कि आबिद[२] एक दिन सरशार[३] होता है ॥१२॥

शब्द ६५.

होरही बिरह की बिथा भारी ॥टेक॥
सोवत चोंक पड़त हूं दम दम। करूं कहा गई मति मारी ॥१॥
ठंडी सांस उठत है छिन छिन। आँखन से आँसू जारी ॥२॥
करकत याद पिया की हिय में। सब ही भोग लगें खारी ॥३॥
टेर पुकार करूं मैं पल पल। डोलत इत उत मतवारी ॥४॥
सुनन हार नहिं तनक पसीजै। करि उपाय पचि पचि हारी ॥५॥
मेरी बेर दयानिधि तुमने। सुन समाध क्या फिर धारी ॥६॥
दुख ही दुख में बैस बितानी। बिना दया सब लाचारी ॥७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सुनो अब। तुम्हरे चरन पर बलिहारी ॥८॥

शब्द ६६.

मेरे दर्द कलेजे मांहि पिया बिन भारी।
बिन दर्शन प्रीतम प्यारे घट अँधिआरी ॥ १ ॥
जब से सतगुरु मुख महिमा छवि की जानी।
तब से दर्शन की बिरह में रहूं दिवानी ॥ २ ॥
मेरे हिये बसा वह भान अनन्त स्वरूपा।
रोम इक इक पिय का प्रेम अमी का कूपा ॥ ३ ॥
वह वशीकरण मुख कँवल नैन रतनारे[४]।
डारत दृष्टी कर दें सब वारे न्यारे ॥ ४ ॥
वह मधुर शब्द धुन रूप श्रवन जिन धारी।
वह मतवाली अल्मस्त हुई पिया प्यारी ॥ ५ ॥

१ दया के भण्डार, २ उपासक, ३ मस्त, ४ लाल

वह ज्ञान रूप प्रीतम जिन भक्तन पाया।
वह मोहित होकर ज्ञान की खान समाया ॥ ६ ॥

जिस प्रेमी ने पिया सब समरथ पहिचाना।
और देखा सर्ववियापक विश्व समाना ॥ ७ ॥

उन कीन्हा निज तन मन उन पर न्योछावर।
सारूप मुक्ति पाई तज भव दुख सागर ॥ ८ ॥

हाय कैसे वह मन मोहन मुखड़ा निरखूं।
पिया रूप में अपना रूप मिला हिय हरषूं ॥ ९ ॥

उठती वेदन हिय मांहि रैन दिन भारी।
कर कर उपाय जो बने रही थक हारी ॥१०॥

अब करूं कौन तदबीर पिया मिलने की।
कासे पूछूं मैं बिधी उन्हें छलने की ॥११॥

सोचत रहुं यही उपाय दिवस और राती।
धड़कत रहै हिरदय मोर जलत रहै छाती ॥१२॥

गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' जो किरपा धारैं।
तो छिन में हम सब दास वह रूप निहारैं ॥१३॥

यह निश्चय हिय धर बिनती करूं पुकारी।
मोहि दीन दुखी लख अब सुध लेउ हमारी ॥१४॥

शब्द ६७.

तुम्हारे मिलने की चिन्ता पिया डस डस के खाये है।
मनोहर छबि तुम्हारी फ़िक्र को नागिन बनाये है ॥ १ ॥

हुई जब से वह पैदा घट में पलती खून पी पी कर।
बना कर जिगर को बामी वह बैठी फन उठाये है ॥ २ ॥

कभी फुनके कभी फन पटक कर मारै कभी काटे ।
ज़हर लोहू में मिलकर खाय चक्कर मैर लाये है ॥ ३ ॥
लगै जब भूख तो सँग .खून के वह ज़हर भी खींचे ।
न जीने दे न मरने दे रही बिस्मिल[१] बनाये हैं ॥ ४ ॥
सपेरे सतगुरू यह दीन बिनवै तुम्हरे चरनन में ।
पकड़ कर मारो यह नागिन बड़ी आफ़त मचाये है ॥ ५ ॥
तुम आये नाथने को काल नाग और माया नागिन को ।
तुम्हें क्यों छोटीसी नागिन रही चक्कर खिलाये है ॥ ६ ॥
हज़ारों फन के नागों को गुरू तुम नाथने वाले ।
तुम्हारे मन्त्र के फिर असर को यह क्यों मिटाये है ॥ ७ ॥
निकालो तेग़ दर्शन की मरेगी उससे यह .फौरन ।
हमारे दुख में क्या सुख दिल तुम्हारे में समाये है ॥ ८ ॥
सपेरे 'धारा सिन्धु प्रताप' अपना पढ़ो अब मंतर ।
छुड़ाओ दुख से बन्दा जो तुन्हारे ज़ेरसाये[२] है ॥ ९ ॥

शब्द ६८.

लगी अर्से से गुरु दर्शन की दिल में इन्तज़ारी है ।
बिना उस मोहनी मूरत के देखे बेक़रारी है ॥ १ ॥
कटैं हैं दिन सिसक कर और तड़प कर घड़ियां गिन गिन कर ।
नहीं दिल कोई ढंग से बहलता बेदन करारी है । ॥ २ ॥
रात काटूं बदल कर करवटें और तारे गिन गिन कर ।
चलाती याद नश्तर जिगर पर हरदम तुम्हारी है ॥ ३ ॥
जो चाहो आन कर .खुद जिगर मेरा खोल कर देखो ।
तो पाओगे वहां बढ़ता हुआ इक ज़ख़्म[३] कारी[४] है ॥ ४ ॥

१ घायल, २ शरणागत ३ घाव, ४, गहरा ।

मगर तुम आओगे क्यों आते तो क्यों हाल यह होता।
तुम्हें तो सतगुरू दाता पसन्द दासों की ख़्वारी है ॥ ५ ॥
बुरा मत मानना प्यारे क्या मेरी बात झूठी है ।
न जानूं दास का क्यों दिल सताने की बिचारी है ॥ ६ ॥
असर होता नहीं कुछ भी अर्ज़[1] मारूज़[1] का तुम पर ।
तुम्हारा दोष नहिँ साहब बुरी क़िस्मत हमारी है ॥ ७ ॥
मगर तुम ही तो हो क़िस्मत के दाता पलटने वाले।
करो उल्टा का सीधा जग में जो मर्ज़ी तुम्हारी है ॥ ८ ॥
वजह मैं क्या बताऊँ ख़्याल में कुछ भी नहीं आती ।
परेशां हूं व हैराँ हूं बहुत गुम अक़्ल सारी है ॥ ९ ॥
सबर दो दर्श दो या मौत दो तीनों में कुछ भी दो ।
बड़ा अचरज है ग़म है क्यों ख़मोशी ऐसी धारी है ॥१०॥
सुना है 'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु हैं .फ़ैज़[2] के चश्मे ।
यह कैसी .फ़ैज़ की धार आप के चश्मे से जारी है ॥११॥

शब्द ६९.

बिरहन दुक्ख भरी घबराकर । कहै कुटुम्ब से यों समझाकर ॥१॥
मुझे हुआ है रोग असाधा । धीरज धर मैं मन बहु साधा ॥२॥
अब नहिं सधै उपाय न सूझै । पिय बेदर्दी बात न बूझै ॥३॥
नहीं दवा या रोग की कोई । मिलै न जब तक प्रीतम मोई ॥४॥
बिरह तपन से तन नित छीजै । पिया बिना जिया अन्तर खीजै॥५॥
हृदय कलेजा छन भये चलनी । रोग लगा ऐसा तन गलनी ॥६॥
जल्द जायगा जीव हमारा । मिलै नहीं जो प्रीतम प्यारा ॥७॥
प्रान अचानक निकल जो जावें । तुम में जो कोई सुध नहिं पावें॥८॥

१ विनती, प्रार्थना, २ परोपकार ।

तो इक दम कोई फूँक न देवे । शायद पिय मृतु पर सुध लेवे ॥ ९ ॥
रहम शायद मरने पर आवै । करै सजीवन प्रान उलटावै ॥१०॥
फिर जिलाय के दर्श दिखावे । दर्श दिखाय संग ले जावे ॥११॥
मृतक शरीर रहै कुछ काला । शायद पिघलें दीन दयाला ॥१२॥
तुम कुछ समय लाश रख लीजो । इतनी दया मृतक पर कीजो ॥१३॥
जो तन मृतक भस्म हो जावै । तो फिर आस दरस मिट जावै॥१४॥
क्या जानूं जिव कहां जायगा । होश हवास फिर सब नसायगा॥१५॥
बिनती की भी सुध न रहैगी । सुत मन सँग तम धार बहैगी ॥१६॥
बिरहिन अस हो रही हिरासा । सतगुरु अब कुछ देउ दिलासा॥१७॥
नैनन से जारी जल धारा । प्रीतम अब कुछ देउ सहारा ॥१८॥
ऐसे जब बिलखाय पुकारी । आये दयाल एक डग धारी ॥१९॥
गोद बिठाय लीन्ह पुचकारी । खुद आंसू पोंछे कर प्यारी ॥२०॥
ठोड़ी चूम बँधाई ढाढ़स । बखशा कर सिर धार चरन रस ॥२१॥
बार बार विश्वास दिलाया । तुम पर रहै चरन की छाया ॥२२॥
भक्ती नित प्रति होय सवाई । तन तज सुरत धाम निज पाई ॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाल । निज दासन की करें सम्हाल ॥२४॥

शब्द ७०.

कौन से बिरहिन खेलै होरी । जाके बिरह दुख हिये भरोरी ॥ १ ॥
बहुत दिनन से आस लगाई । दुःख महान सहोरी ॥ २ ॥
जब जब आयो फागुन महिना । रोय रोय निकरोरी ॥ ३ ॥
चारों ओर धूम अति दीखे । होली शोर मचोरी ॥ ४ ॥
बिरहन जलै खड़ी हिय अन्तर । परम पिया बिछुड़ो री ॥ ५ ॥
संग की सब सखियां नित खेलैं । निज निज पति संग होरी ॥ ६ ॥

बिरहन फिरै दिवानी इत उत। तन श्रृंगार तजोरी ॥ ७ ॥
बिरहिन हृदय जलै होली सम। बाहर ईंधन होरी ॥ ८ ॥
प्रीतम तनक तरस नहिं खावै। बहुत कठोर भयोरी ॥ ९ ॥
लोग कहैं पिया अन्तर्यामी। समरथ द्याल बड़ोरी ॥१०॥
बिरहन के मत जग पिया नीके। जहँ दयालुता थोरी ॥११॥
सतगुरु से बिनवै सुत बिरहन। हा हा कर कर जोरी ॥१२॥
'धारा सिन्धु प्रताप' मिलाओ। काल कर्म जो तोरी ॥१३॥

शब्द ७१.

आई ऋतु बरसात, जेठ तपन के दुख गये।
फूले नहीं समात, जलचर थलचर जीव सब ॥ १ ॥
पर जिन प्रीतम दूर, उनको वर्षा जेठ सम।
जब हिय दुख भर पूर, बाहर का सुख धूल है ॥ २ ॥
मोर मचावें शोर, देख देख काली घटा।
बिरह बिथा का ज़ोर, प्रीतम रहित सुनारि हिय ॥ ३ ॥
जस जाड़े ऋतु मांहि, गर्म होय सब कूप जल।
तस हिय में सुलगाहिं, बिरह मेघ बाहर बरस ॥ ४ ॥
हरी भूमि बिच ताल लगें मनोहर जल भरे।
प्रीतम बिन बेहाल, भक्त तड़प घबरांय अति ॥ ५ ॥
गरजत मेघ सुहांय, याद आवै धुन गगन की।
ताते मन अति भांय बिरह जगावें सजन की ॥ ६ ॥
वर्षा बहु तरसाय, प्रेमी जिय पिय दरस को।
रहि रहि जिय घबराय, बिन गुरु किरपा क्या करै ॥ ७ ॥

विधि विधि विनय सुनाय, हे पूरन समरथ धनी ।
क्यों नहिं करो सहाय, हिय वेधक बरसात में ॥ ८ ॥
बिरहिन अति दुख पाय, सुलगै अग्नी जिगर में ।
जलती लेउ बुझाय 'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु ॥ ९ ॥

शब्द ७२.

रिम झिम बरसै मेह, हूक उठै बिरहिन हिये ।
पिय से लगा सनेह, बिन पिय दया कुछ बस नहीं ॥ १ ॥
बिरह अग्नि धुंधकाय, ठाड़े बैठे कल नहीं ।
जहँ की तहाँ समाय, उठ उठ हाय कलेज से ॥ २ ॥
बिजली तीर चलाय, चमकि चमकि आकाश में ।
पिय की याद दिलाय, कौंधा मारै हिये बिच ॥ ३ ॥
बिरहिन पटकै हाथ, ठौंकै माथ अभागिनी ।
कस रहै पिय के साथ, पिया बात पूछैं नहीं ॥ ४ ॥
कैसे मेल मिलाय, एक अभागी इक निठुर ।
दूरी अधिक रहाय, गुरू तुम्हारी दया बिन ॥ ५ ॥
ताते टेर सुनाय, बार बार सतगुरू को ।
कूक कूक रहि जाय, निठुर पिया औतार गुरु ॥ ६ ॥
मेरी कहा बसाय, तुम्हें पक्ष निज रूप की ।
चहे जितना दुखियाय, दास की क्या पर्वाह है ॥ ७ ॥
अस असंख हैं दास, स्वामी तो तुम एक हो ।
सब ही दरस उदास, किस किस की पर्वा करो ॥ ८ ॥
दर्शन तो हैं एक, ग्राहक अनगिनती भरे ।
ताते सब देउ छेक, रहो अकेले सुक्ख में ॥ ९ ॥

चहें न हम महाराज, दुक्ख सहो हम हेत तुम।
निज पुर रहो बिराज, हम राज़ी निज दुःख में ॥१०॥
'धारा सिन्धु प्रताप', परम पुरुष पूरन धनी।
हमें मुबारिक श्राप, दीन्हा जो प्रभु कृपा कर ॥११॥

शब्द ७३.

स्वामी प्यारे की छबि मन बस गई रे ॥ टेक ॥
महा प्रकाशवान अति सुन्दर। सो नयनन में धस गई रे ॥ १ ॥
रैन दिवस चित से नहिं उतरै। जादू करके छिप गई रे ॥ २ ॥
जैसे मोर विकल बादल बिन। नींद नयन से उड़ गई रे ॥ ३ ॥
भोग विलास कछू नहीं भावै। याद पिया हिय खल रही रे॥ ४ ॥
कोई काम में दिल नहिँ ठहरै। ऐसी दशा बिगड़ रही रे ॥ ५ ॥
चित्त उचाट रहै मम हर दम। कोई बिधि बहले नहिं रे ॥ ६ ॥
सूखै रक्त तपन से दिन दिन। बिरह की आग भड़क रही रे॥ ७ ॥
हाड़ मास खावै वह चुन चुन। मुखड़ा आब उतर गई रे ॥ ८ ॥
पल पल नयनन से जल बरसै। तन मन की सब सुध गई रे ॥ ९ ॥
धीरे धीरे पान पात सम। देही पीली पड़ रही रे ॥१०॥
काग और गिद्ध बाट अब ताकैं। मौत शीश मड़रा रही रे ॥११॥
अबहू स्वामी दया विचारो। दासी विकल सिसक रही रे ॥१२॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया की। राह विरहनी तक रही रे ॥१३॥

शब्द ७४.

दरश बिन आवे नहिँ चैना। सुनूं कस प्रीतम के बैना ॥ १ ॥
रात दिन चिन्ता यह रहती। जुदाई का दुख नित सहती ॥ २ ॥
भाग में ओछा सँग लाई। शरण गुरु की नहिँ ले पाई ॥ ३ ॥

नचावत मनुआ नाच रहा। जगत की ओर बहाय रहा ॥ ४ ॥
न होवे थिर घट के भीतर। पिया से बिनवूं कस जी भर ॥ ५ ॥
पिया की याद उधर खींचै। इधर मन धर धर के भींचै ॥ ६ ॥
बिचारी सुरत अधर लटकै। शीस भुइँ पर पुनि पुनि पटकै॥ ७ ॥
सुना है सत्गुरु हैं समरत्थ। शक्ति वे धारैं अगम अकत्थ ॥ ८ ॥
करम की रेख पै मारें मेख। दया की धार बहायें अलेख ॥ ९ ॥
अगर यह कहना नहिँ झूठा। रहा क्यों भाग मेरा फूटा ॥१०॥
सुरत जब ऐसी करी पुकार। दया कर बोले गुरु दातार ॥११॥
वचन सतगुरु के सब सच्चे। जीव के बुधि विचार कच्चे ॥१२॥
करम काटैं धीरे धीरे। काल मारैं सीरे सीरे ॥१३॥
करैं जो जल्दी तन छूटै। कुटुम्ब से तुरत नात टूटै ॥१४॥
काम दोनों ही का बिगड़ै। खेल सब बना हुआ उजड़ै ॥१५॥
करौ मत जल्दी धारो धीर। गुरू हरिहैं इक दिन सब पीर ॥१६॥
आगया दामन पिय का हाथ। गुरू हैं हरदम तुम्हरे साथ ॥१७॥
पिया से रिश्ता अब लागा। काल से टूट गया धागा ॥१८॥
जल्द दिन आता है हरषो। पिया का मुखड़ा जब निरखो॥१९॥
रटो अब 'धारा सिन्धु प्रताप'। जो चाहो उनसे जल्द मिलाप॥२०॥

उपदेश

शब्द ७५.

सतगुरु से लेकर दिक्षा। दृढ़ राखो उनकी पक्षा ॥ १ ॥
यह करो नेम तुम अपना। दिल से मानो गुरु शिक्षा ॥ २ ॥

नित करो दीन हो बिनती । मांगो निज दर्शन भिक्षा ॥ ३ ॥
है चिन्ता उन्हें तुम्हारी । निज नाम जबहि से बख़्शा ॥ ४ ॥
निर्बलता देख तुम्हारी । करते नहिँ कभी परिक्षा ॥ ५ ॥
संसारी कामों में भी । करते वे सब विधि रक्षा ॥ ६ ॥
काटें वे पूरा जड़ से । फल तक करमों का वृक्षा ॥ ७ ॥
निश्चय इक रोज़ बिठावें । तुम्हें निज हंसों की कक्षा[1] ॥ ८ ॥
पूरन अनुभव करवावें । बे हद्द अगम का नक़्शा ॥ ९ ॥
गुरु 'धारा सिन्धु प्रतापी' । उन काल कर्म सब भक्षा ॥१०॥

शब्द ७६.

अर्जुन को श्रीकृष्ण ने भाषा गीता माहिँ ।
कर्म करो निष्काम जो कर्म लगै तो नाहिँ ॥ १ ॥
फल इच्छा नहिँ मन धरै तो कर्ता नहिँ होय ।
कर्म ऐसे निष्काम के फल नहिँ भोगै कोय ॥ २ ॥
जस अफ़सर के हुक्म से रण में लड़ै सिपाह ।
हुक्म बजाना फर्ज़ है फल की नहिँ परवाह ॥ ३ ॥
बुरे भले परिणाम का वह नहिँ ज़िम्मेदार ।
जीत होय चहै हार हो वा सिर नहिँ कोय भार ॥ ४ ॥
भली भांति निर्णय किया कृष्ण ने यह मत सार ।
अर्जुन तोउ मानै नहीं करै तर्क तकरार ॥ ५ ॥
कृष्ण ने तब निज कला से दिखलाया मुंह फाड़ ।
रण में सब जूझे पड़े कौरव मिरतक झाड़ ॥ ६ ॥
अर्जुन को निश्चय हुआ लड़े अभय रण माहिँ ।
मार गिराये कौरवा जान हम करता नाहिँ ॥ ७ ॥

[1] पंक्ति, समाज ।

तब अर्जुन से कृष्ण ने, खोल कही समझाय।
पाप से तुम नहिँ बच सके, ताको करो उपाय ॥ ८ ॥

बतलाई असुमेधयग, आप कराई ताहि।
फिर कहा अब भी नहिँ छुटे, गलो हिमालय जाय ॥९॥

अर्जुन आज्ञा मान कर, गले हिमालय जाय।
तो भी मर के नर्क गये, व्यास यह कही सुनाय ॥१०॥

महाभारत में है लिखा, यह सब गीता ज्ञान।
कारण इस परिणाम का, सोचो सब विद्वान ॥११॥

सतगुरु मोहि बताइया, सो मैं करूँ बखान।
कर्मों में निष्कामता, लाना नहिँ आसान ॥१२॥

याकी युक्ती और है, ताका कर अभ्यास।
तब करने में कर्म के, छूटै फल की आस ॥१३॥

मुंह से कह नहिँ कर सको, कृष्ण आर्पण कर्म।
निध्यासन की बात है, सुन अब या का मर्म ॥१४॥

पिछले जन्म असंख के, कर्म जो संचित आहिँ।
चित्र गुप्त उनके रहें, मनाकाश के माहिँ ॥१५॥

वे प्रेरित मन को करें, इच्छा देत फुराय।
सोइ फल इच्छा कर्म की, खुद प्रेरक हो जाय ॥१६॥

नाशन संचित कर्म विधि, सन्त कहें समझाय।
सुरत शब्द अभ्यास से, कर्म चित्र मिट जाँय ॥१७॥

मनाकाश में सुरत जब, शब्द पकड़ चढ़ि जाय।
सूक्षम फल भोगै जहाँ, संचित जाँय नसाय ॥१८॥

कर्म होय निष्काम तब, फल आशा छुट जाय।
पिरारब्ध बाक़ी रहै, सो तन सँग कटि जाय ॥१९॥
सब प्रकार के कर्म जो, जीवन जन्म धराहिँ।
इस बिधि से मिट जाँय सब, आवागमन नसाहिँ ॥२०॥
जिज्ञासू जो मोक्ष के, तिनको यह सन्देश।
होन जो चाहो निःकरम, मानो गुरु उपदेश ॥२१॥
सन्त पन्थ की रीति यह, सोई सत मत सार।
यही मार्ग है मोक्ष का, समझो कर निरधार ॥२२॥
काहू दूसर विधी से, होय नहीं निरबार।
चाहै जितने पच मरो, होय नहीं छुटकार ॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप गुरु', कही सुनाय सुनाय।
जो नहिं मानो बचन उन, मरो जियो दुख पाय ॥२४॥

शब्द ७७.

सोरठा

वादा तोड़न पाप, दशरथ को समझाइया।
मुनि वसिष्ठ ने आप, देखो योग वसिष्ठ में ॥ १ ॥
विश्वामित्र बिचार, यज्ञ करें इक बड़ी हम।
लखनराम औतार, दोउ मिल जो रक्षा करैं ॥ २ ॥

दोहा.

दैत करें विध्वन्स यग, रुधिर मांस उटकाय।
उनसे क्रोध जो हम करें, यग खण्डित हो जाय ॥ ३ ॥
दोउ भाइन के याचन काजा। आये मुनि ढिंग दशरथ राजा॥ ४ ॥
देखत मुनि दशरथ यों बोले। आप पधार भाग मम खोले ॥ ५ ॥

जो कारज मन में तुम ठानो । सो मम ओर से पूरा जानो ॥ ६ ॥
तब मुनि ने सब कथा सुनाई । यज्ञ काज मांगे दोउ भाई ॥ ७ ॥
राजा भये मूर्छित यह सुनि । अचरज शोक करें बैठे मुनि ॥ ८ ॥
घड़ि इक बाद नेत्र जब खोले । हाथ जोड़ तब मुनि से बोले ॥ ९ ॥
काज तुम्हार न हुइ है हमसे । साफ़ साफ़ कह दूं मुनि तुमसे ॥१०॥
मुनि राजा का वादा पकड़ा । क्रोधित होय किया बहु झगड़ा॥११॥
गुरु वशिष्ठ को बीच में डाला । न्याय चुकाओ तुमहिँ दयाला॥१२॥
तब वशिष्ठ राजा से बोले । दिया चिताय कान उन खोले॥१३॥
बिन सोचे वादा क्यों कीन्हा । मुनि हिय आस बांध दृढ़ लीन्हा॥१४॥
वादा तोड़न कर्म मलीना । करि है तुम्हें दण्ड आधीना ॥१५॥
दान पुन्य जो कुछ तुम कीना । वादा तोड़ करो सब छीना ॥१६॥
कुए बावड़ी ताल खुदाये । तिनके फल सब जाँय नसाये ॥१७॥
करो हानि यह अंगीकारा । तो मुनि से कर दो इनकारा ॥१८॥
गुरू वचन राजा जब तोले । तब यों विश्वामित्र से बोले ॥१९॥
राम लछमन को ले जाओ । अपनी यज्ञ सुफल करवाओ ॥२०॥
इक वादा तोड़न का यह फल । पुन्न धर्म होवें सब निष्फल ॥२१॥
यह हम योग वशिष्ठ में देखा । वादा तोड़न का यह लेखा ॥२२॥
जो अनेक वादे तोड़ें नित । सोचो उनकी क्या होगी गति ॥२३॥
पुण्य हू उनके इतने नाहीं । एकहु का बदला चुक जाहीं ॥२४॥
नर्क को सीधा करें पयाना । और कहीं नहीं उन्हें ठिकाना॥२५॥
बदला नहिँ तो दण्ड सहें बहु । इसमें शक हो तो मोसे कहु ॥२६॥
ऐसहि सोचत रहे लबारा । ईश्वर का हम कहा बिगारा ॥२७॥
ऐसी क्या हमरी गुनहगारी । जो हम होंय नर्क अधिकारी ॥२८॥

चेतो अब तुम मूढ़ अजाना । शास्त्र अरु मुनि का लेउ प्रमाना॥२९॥
काल अस कड़ी नीत बैठाई । जाल से जिव किस विधि कढ़ पाई॥३०॥
पाप से जो तुम चाहो मुक्ती । ग्रहण करो सन्तन की युक्ती ॥३१॥
यह सब कर्म चित्र जो आहीं । मनाकाश के बीच रहाहीं ॥३२॥
शब्द धार से वे मिट जावें । दुक्ख स्वप्नवत् दे कट जावें ॥३३॥
या से सोचो समझो चेतो । मनाकाश धुनि नाम से रेतो ॥३४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, युक्ती दीन्ह बताय ।
कर करनी सँग दया ले, पाप मोक्ष हो जाय ॥३५॥
काल देश से निकल कर, द्याल देश में जाय ।
कष्ट दुक्ख जहँ कुछ नहीं, सुक्ख हि सुक्ख समाँय ॥३६॥

शब्द ७८.

अरे मन कर सतगुरु से प्रीति । करो गुरु बचनन की परतीति ॥१॥
जीवन को अति दुख में देखा । परखी काल अनीत ॥ २ ॥
अपनी आतम अंश के कारण । दया समाई चीत ॥ ३ ॥
चैतन सिन्धु से धार बहाई । सर्व समर्थ अतीत ॥ ४ ॥
आय जगत नरतन धर बैठे । धारो कला अजीत ॥ ५ ॥
सबको टेर पुकार सुनाई । पूरण मुक्ती नीत ॥ ६ ॥
काल कष्ट से हड़े थे जो जन । माने गुरु सत मीत ॥ ७ ॥
सुन सुन महिमा दौड़त आये । पकड़े चरन पुनीत ॥ ८ ॥
बचन सुना गुरु ने सिखलाई । सच्ची भक्ती रीत ॥ ९ ॥
दया करी निज बल से मारा । बैरी कुमन पलीत ॥१०॥
सुरत खींच घट में सुनवाया । सत्त शब्द का गीत ॥११॥
माया के सब जाल तोड़ कर । सुरत चली भव जीत ॥१२॥

'धारा सिन्धु प्रताप' पिलाया। दासन अमृत सीत ॥ १३ ॥

शब्द ७९.

पकड़ गुरु पद मन से छिन छिन। छोड़ औगुन अपने गिन गिन ॥ १ ॥
धार इक आई सिन्धू से। प्रतापी धारा सिंधु गुरु बन ॥ २ ॥
ध्यान कर बार बार उनका। अर्प उन चरनन तन मन धन ॥ ३ ॥
सनी माया की कीचड़ में। तुम्हारी आतम बुंद चेतन ॥ ४ ॥
वही है कारण दुक्खों की। छुटै नहिँ सतगुर किरपा बिन ॥ ५ ॥
आय नहिँ अन्त काल कुछ काम। धूल है सब रुपया संखन ॥ ६ ॥
राजहू उदय अस्तलों होय। सभी है वृथा जो अन्त मरन ॥ ७ ॥
हुकूमत शाहन्शाही होय। जायगी इकदम में सब छिन ॥ ८ ॥
नाम का झंडा जग फहराय। गिरेगा धरनि टूट इक दिन ॥ ९ ॥
महल पन्नों के खँडहर हों। बसें फिर उनमें भूत और जिन ॥ १० ॥
भरी हों जवाहरात घर में। सुक्ख के सामाँ हों भिन भिन ॥ ११ ॥
खड़े हाथी घोड़े मोटर। अचानक हो सब से बिछुड़न ॥ १२ ॥
बिछैं अतलस मख़मल कमख़्वाब। चमक मारें ज़रीं आसन ॥ १३ ॥
संग नहिँ जावे उनके कुछ। पड़ै ऊपर गज़ तीन कफ़न ॥ १४ ॥
खड़ी मुजरे में उनके नित्त। हज़ारों लाखों की पल्टन ॥ १५ ॥
तमाशा देखें सबके सब। काल जब दाबै उन गरदन ॥ १६ ॥
कटोरे थाल हैं सोने के। करैं वे तिन में नित भोजन ॥ १७ ॥
जड़ाऊ ग्लास में दूध पियें। होंय फिर भूत मरैं प्यासन ॥ १८ ॥
यह तो है बड़ों बड़ों का हाल। कौन गिनती में हैं लघु जन ॥ १९ ॥
जगत का यह है हाल सही। देख कर चेतो मूरख जन ॥ २० ॥
फ़रेबी मन मानै जग सत्य। असल में लम्बा एक सुपन ॥ २१ ॥

गुज़रती नित प्रति यह हालत। देखलो खुद तुम निज नैनन ॥२२॥
समझ कर निर्णय कर जाँचो। ढोल की पोल खुले फ़ौरन ॥२३॥
रहो ग़ाफ़िल जो कुछ दिन और। अंत पछताओगे सिर धुन ॥२४॥
कहें सतगुरु समझाय तुम्हें। तुम्हारे हित के कहें बचन ॥२५॥
पढ़ो उनकी बानी कर प्रीति। करो फिर बैठ इकान्त मनन ॥२६॥
छाँट कर गहो पाओ जो सार। करो आहार लगा निज मन ॥२७॥
लगै जो बात सत्य उनकी। करो मत देर गिरो चरनन ॥२८॥
सतगुरू जैसे बतलावें। करो अभ्यास लगा तन मन ॥२९॥
दया के देदे परचे नित्त। बढ़ावेंगे गुरु प्रेम लगन ॥३०॥
चढ़ाकर शब्द शब्द पौढ़ी। दिलावें सत्त धाम इक दिन ॥३१॥
छुटै सब माया की कीचड़। हमेशा को हो सुरत मगन ॥३२॥
समझ में आवै तो लो मान। नहीं रहो पड़े दुःख कूपन ॥३३॥
सत गुरू 'धारा सिन्धु प्रताप'। काज यह होय नहीं उन बिन ॥३४॥

शब्द ८०.

बिकट जाल यह मोह का, माया दीन्ह बिछाय।
जिव या में गिर गिर फँसैं, फन्द पै फन्द लगाय ॥ १ ॥
याते निकसन अति कठिन, बिन सतगुरू सहाय।
वे दयाल किरपा करें, तो सहजहिँ छुट जाय ॥ २ ॥
मोह कई कारण से पैदा। इक सुन्दर छबि करती शैदा[१] ॥ १ ॥
दूसर कोमल बोली गाँसी। तीसर काम लगावै फाँसी ॥ २ ॥
चौथो चाल ढाल उलझावै। पंचम सेवा हिय फुसलावै ॥ ३ ॥
षष्टम् खून की रिश्तेदारी। बहुतक ब्याह से पैदावारी ॥ ४ ॥
कहीं प्रशंसा से उतपत्ती। स्वारथ से यह सब आपत्ती ॥ ५ ॥

१ मोहित.

अपना-पन मेरा-पन ख़्याल । महा विकट है यह जंजाल ॥ ६ ॥
माता पिता त्रिया सुत मेरे । भाई बहिन इत्यादि घनेरे ॥ ७ ॥
कोइ ननसाली कोइ ससुराली । मेरे-पन के सभी खयाली ॥ ८ ॥
हम खयाल जितने संगत में । मोह मंडली बने जगत में ॥ ९ ॥
कोइ विद्या से कोइ पेशे से । कोइ जुआ से कोइ नशे से ॥१०॥
अपना-पन मेरा-पन सब में । स्वारथ घुसा हर एक सबब में ॥११॥
गुरू मिलैं पलटैं गति मन की । लगन बढ़ा कर निज चरनन की॥१२॥
कर उत्पन्न विवेक बिचारा । मोह की जड़हिँ बजायें कुल्हारा ॥१३॥
जिनके मोह की जड़ जो पावें । ताहि स्वार्थी झूँठ लखावें ॥१४॥
जोबन छबि है सब चमड़े की । शोभा भूषण और कपड़े की ॥१५॥
रक्त माँस हड्डी और विष्टा । यह सब इक चमड़े में लिपटा ॥१६॥
ता में नौ सूराख बनाए । वे ही नौ द्वारे कहलाए ॥१७॥
अंतर उन्हें करोदि के देखो । मल दुर्गन्ध भरे सब पेखो ॥१८॥
धर अस मलिन रूप मटकावै । देख मूढ़ जिव गला फँसावै ॥१९॥
बोली पर जिव होय दिवाना । क्या वह बीन सितार समाना ॥२०॥
हम हमार पिछले ऋण सट्टे । भये चुकावन काज इकट्ठे ॥२१॥
सेवा धन लेवैं और देवैं । ऋण चुकाय रस्ता निज लेवैं ॥२२॥
मूरख उनसे नेह लगावैं । वे मतलब कर सींग बतावैं ॥२३॥
सतगुरु मिलैं तो भेद लखावैं । पर्चे दे परतीति करावैं ॥२४॥
मोह जाल से लेंय निकारी । मुक्ती की करवाँय तयारी ॥२५॥
बल अपना दे काज करावैं । परम धाम में ले पहुँचावैं ॥२६॥
नर नारी सुन चेतो प्यारे । सतगुरु तुम को लेंइ उबारे ॥२७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बतावैं । जिनके भाग होंय सो पावैं ॥२८॥

शब्द ८१.

दुख नाशन हित गुरु जग आये। हंस रूप जिव खींच बुलाये ॥ १ ॥
चरन लगाय दिया उपदेशा। जासे छूटें काल कलेशा ॥ २ ॥
काल से उनकी डोर कटाई। अपने चरनन माँहि लगाई ॥ ३ ॥
उनके करम आप कटवावें। मौज अनुसार तिन्हें भुगतावें ॥ ४ ॥
भूल चूक सब छिमा करैं नित। राखैं दासन का निज हिय हित ॥ ५ ॥
धो धो कर सतसँग साबुन से। करैं साफ़ सेवक पापन से ॥ ६ ॥
जन्म जन्म का मैल छुटावें। वृत्ती चित्त की घट उलटावें ॥ ७ ॥
मन चंचलता दूर करावें। सूरत मन सँग गगन चढ़ावें ॥ ८ ॥
माया के पर्दे सब फाड़ैं। जगत बासना मन से काढ़ैं ॥ ९ ॥
दास को राखि कुटुम्ब के माहीं। सब कुटुम्ब के भाग बढ़ाहीं ॥१०॥
जगत भोग जो हैं निष्पापा। सो सब दें तुड़वावैं आपा ॥११॥
जोग भोग सँग सँग करवावें। दोउ वैरिन को जोड़ मिलावें ॥१२॥
उद्यम पेशा कुछ न छुड़ावें। राखि जगत में भक्ति बढ़ावें ॥१३॥
राग बीच बैराग करावें। परमारथ अनुराग बढ़ावें ॥१४॥
जा पद को जोगेश्वर तरसैं। हारे कर समाध बहु बरसैं ॥१५॥
सो बख़्शें सहजहिँ निज दासन। आवागवन रहित सुख आसन ॥१६॥
ऐसे गुरु के क्या गुन गाऊं। धन्यवाद के शब्द न पाऊं ॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयानिधि। गाऊं सुयश तुम्हारा किस विधि ॥१८॥

शब्द ८२.

गुरु संतसँग कीन्हा जारी। जो करै जीव भौ पारी ॥ १ ॥
प्रेमी मिल गुरु गुन गावें। भक्ती अनुराग बढ़ावें ॥ २ ॥
जो संगत उनकी धारैं। सतगुरु की शरण सम्हारैं ॥ ३ ॥

सोये मन उनके जागैं । वह काल हुकूमत त्यागैं ॥ ४ ॥
रूखे हों भोग बिलासा । मुरझाय जगत अभिलाषा ॥ ५ ॥
माया के बन्धन टूटैं । जमदूत उन्हें नहिँ लूटैं ॥ ६ ॥
दीखै सब जगत अँधेरा । छूटै चौरासी फेरा ॥ ७ ॥
मन इन्द्री नहिँ भरमावैं । दुर्जन संगत छुड़वावैं ॥ ८ ॥
लागै संसार उदासा । घट से निकसै दुर्बासा ॥ ९ ॥
अति घृणा जगत से आवै । गुरु चरन ओर चित धावै ॥१०॥
प्रेमिन का संग सुहावै । गुरु की महिमा मन भावै ॥११॥
सत सँगत नित प्रति धारै । सतसँग के बल मन मारै ॥१२॥
कृत जग की जब उलझावै । सतसँग बल से सुलझावै ॥१३॥
फैली वृत्ती जग में जो । सिमटै सतसँग में नित सो ॥१४॥
सतसँग झरना अमृत का । जो मेटै दाह सुरत का ॥१५॥
सतसँग शाला भक्ती का । सतसँग द्वारा मुक्ती का ॥१६॥
गुरु 'धारा सिन्धु प्रतापी' । वहीं धोवैं वे मन पापी ॥१७॥

शब्द ८३.

सतगुरु या भव सिन्धु में, टापू सतसग कीन्ह ।
शब्द जहाज़ लगाय तहँ, केवट बने प्रवीन ॥

टापू बन्दर गाह बनाये । जहँ से शब्द जहाज़ चलाये ॥ १ ॥
यात्री जो सतलोक के पावैं । सतसँग टापू माहिँ बुलावैं ॥ २ ॥
भव को दुख सागर पहिचानो । भव के पार सुक्ख घर जानो ॥ ३ ॥
मृत्यु लोक भव सागर परखो । भव के पार अमर पद निरखो ॥ ४ ॥
भव सागर यह काल स्थाना । अमर लोक में द्याल समाना ॥ ५ ॥
जो यात्री सतपुर के आवैं । सतगुरु उनकी जाँच करावैं ॥ ६ ॥

कितना बोझ संग ले आये। गठरी में क्या माल भराये ॥ ७ ॥
पावैं करम बोझ जो भारी। या दुष्कर्म अधिक सिर धारी॥ ८ ॥
समझ ताहि को अनअधिकारी। फेर फार मन देंहि बिड़ारी ॥ ९ ॥
जिनके कर्म वे हलके पावैं। जो जल्दी सहजहिँ चुक जावैं ॥१०॥
तिनको सतसँग में ठहरावैं। क्रम क्रम उनका बोझ घटावैं ॥११॥
काल देश का कर्ज़ा जिन पर। सो गुरु चुकवावैं किरपा कर ॥१२॥
यात्रा को शुभ गुण का तोशा। शील छिमा धीरज संतोषा ॥१३॥
दया दीनता प्रेम विवेका। घट में भरवावैं प्रति ऐका ॥१४॥
फिर जहाज़ में धर कर खेवैं। कौड़ी उतराई नहिँ लेवैं ॥१५॥
को अस जग में दीन दयाला। जो बिन स्वारथ करै निहाला॥१६॥
किस मुँह से गाऊँ गुन उनका। कर नहिँ सकूँ शुक्र इक किनका॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' भजो नित। सतसँग कर पाओ मुक्ती गति॥१८॥

शब्द ८४.

जो मिलना है कुल मालिक से। प्रीत करो दृढ़ गुरु सालिक[1] से ॥१॥
मन को अपना बैरी जानो। वाकी सीख ज़रा मत मानो ॥ २ ॥
जग में होय न कोई कृतारथ। नाशमान यहँ सबहि पदारथ॥ ३ ॥
नरतन छोड़ नरक चौरासी। प्रेत लोक कोइ होंय निवासी ॥ ४ ॥
जब तक रहैं मनुष तन धारी। त्रय तापन में रहैं दुखारी ॥ ५ ॥
पीछे अन्ध कूप में जावैं। जहँ दुख कष्ट महान सतावैं ॥ ६ ॥
यहाँ तो भूले रहैं कुटुम्ब सँग। अहंकार सँग बुध होवे भँग ॥ ७ ॥
नरतन समय अनमोल गँवावैं। कोटि योनि पुन चक्कर खावैं ॥ ८ ॥
निद्रा मैथुन और अहारा। इनमें भूले रहैं लबारा ॥ ९ ॥
नई रोशनी के ढँग धर धर। टीम टाम कर चलैं अकड़कर ॥१०॥

१ हितैषी

मन में आपा मान समाना । उग्र दुःख से रहैं अजाना ॥११॥
चेतैं नहिँ धक्के भी खावैं । कभी मौत का ख़्याल न लावैं ॥१२॥
सतगुरु सन्त बहुत चेतावैं । वे अभाग वश ढिंग नहिँ आवैं ॥१३॥
और दूर से करैं बुराई । मूर्ख अधिक सिर पाप चढ़ाई ॥१४॥
याते बार बार समझाऊँ । तुम्हरे हित की बात सुनाऊँ ॥१५॥
सतगुरु ढूँढ़ करो उन संगा । त्यागो जग का संग कुसंगा ॥१६॥
गुरु जो मारग देहिँ बताई । सो श्रद्धा धर करो कमाई ॥१७॥
जग से दिन दिन बिरती मोड़ो । सतगुरु अरु सतसँग में जोड़ो॥१८॥
तो इक दिन मालिक मिल जावै । आत्म बुन्द सतसिन्ध समावै॥१९॥
दुख मय आवागवन नसावै । अटल परम सुख सूरत पावै ॥२०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू जब । करैं दया तब काम बनै सब ॥२१॥

शब्द ८५.

जो सतगुरु के गुन गावै । सो अटल परम पद पावै ॥ १ ॥
जो करै प्रीति सतगुरु से । सो उबरै या मर पुर से ॥ २ ॥
गुरु देव परम सुख देवा । कर निशि दिन उनकी सेवा ॥ ३ ॥
गुरु चेतन सिन्धु अपारा । सब सृष्टि उन्हीं की धारा ॥ ४ ॥
धार अगम पुरुष बन बैठी । फिर अलख लोक में पैठी ॥ ५ ॥
रूप अलख पुरुष भी धारा । भई सत्तपुरुष करतारा ॥ ६ ॥
वहाँ से लघु धारा फूटी । सत पुर के नीचे छूटी ॥ ७ ॥
इक भँवर गुफा में आई । जो सोहं पुरुष कहाई ॥ ८ ॥
फिर महा सुन्न मैदाना । हुआ पंच धार स्थाना ॥ ९ ॥
इक मान सरोवर आई । अक्षर का रूप धराई ॥१०॥
फिर एक धार हुई काला । माया मिल रचिया जाला ॥११॥

धारैं अनगिनती आइं। जो आतम बुन्द कहाइं ॥१२॥
इन सब मिल रचना धारी। जो विश्व हुआ अति भारी ॥१३॥
यों 'धारा सिन्धु प्रतापी'। फैले सब जग में आपी ॥१४॥
यों आतम बुन्द फँसानी। चैतन जड़ माँहि समानी ॥१५॥
फिर धार उठी इक पावन। गुरु रूप धरा मन भावन ॥१६॥
आई निज अंश उबारन। दुखियों को भव से तारन ॥१७॥
सब धारा सिन्धु ज़हूरा। ताते यह नाम है पूरा ॥१८॥
यह गुरु प्रताप बतलाया। अपना यों नाम धराया ॥१९॥
वा की घट धुन समझाई। महिमा परताप जनाई ॥२०॥
निज शक्ति अन्तर दिखलाई। सब समरथता बतलाई ॥२१॥
उनको कुल मालिक जाना। अनुभव कर निश्चय ठाना ॥२२॥
वे सतगुरु दीन दयाला। निर्माया अगम अकाला ॥२३॥
'गुरु धारा सिन्धु प्रतापी'। सत-चित-आनन्द अनापी ॥२४॥

शब्द ८६.

सुरत नित खोज करो, सुषमन में धुन की धार ॥ टेक ॥
अगुआ कर सतगुर स्वरूप को। सतगुरु नाम का कर आधार॥१॥
झीनी झीनी श्रवन पड़े जब। ध्यान लगाकर सुन कर प्यार ॥२॥
तीसर तिल पर चित्त जमाकर। तारे का कर ध्यान सम्हार ॥३॥
जो गुरु परचे देंय दया के। फूलो मत मन में बिसियार[१] ॥४॥
नशा हज़्म कर घट में दाबो। सतगुरु के रहो शुक्र गुज़ार ॥५॥
बिरह विशेष दया की धारो। करत रहो गुरु चरन पुकार ॥६॥
मन इंद्री के विषय भोग सब। जान रोग क्रम क्रम तज डार ॥७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम धुन। मन से करत रहो हर बार ॥८॥

१ बहुत

शब्द ८७.

भजोरे मन 'धारा सिन्धु प्रताप' ॥ टेक ॥

स्वांस में यह निज नाम समावै, होवै अजपा जाप ॥ १ ॥
नाम संग निज नामी रहकर, करते रक्षा आप ॥ २ ॥
नामी नाम मैल मन धोवें, जस तन धोवै बाप ॥ ३ ॥
अन्तर कर सों देंहि सहारा, बाहर दें संताप ॥ ४ ॥
जस कुम्हार घट में कर राखै, बाहर मारै थाप ॥ ५ ॥
करि निर्मल सुत घट में खींचैं, बाहर राखैं ढाँप ॥ ६ ॥
ढाँप[1] चढ़ाई आपा तोड़ैं, लगै नहीं कलि श्राप ॥ ७ ॥
जैसे रवि नित गुप्त रीति से, खींचै जल से भाप ॥ ८ ॥
तैसे गुर नित क्रम क्रम खींचैं, घट से सूरत चाप ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम से, गाढ़ा करो मिलाप ॥१०॥

शब्द ८८.

सुरत तू हो जा गुरु प्यारी ॥ टेक ॥

कर गुरु चरण सेव तू नित प्रति, सींच भक्ति क्यारी ॥ १ ॥
तोड़ चित्त से बँधन जग के, हो सब से न्यारी ॥ २ ॥
समझी गाढ़े मित्र ठगन को, गई सब मति मारी ॥ ३ ॥
गुरु को समझी ग़ैर बिगाना, जो सत हितकारी ॥ ४ ॥
समझाओ तो समझै नाहीं, अन्धी हत्यारी ॥ ५ ॥
सत्सँग वचन कान नहिँ मानै, भोगै दुख भारी ॥ ६ ॥
विष सँग सान सुधारस लेवै, करै नर्क त्यारी ॥ ७ ॥
अबहूँ मान बहुत नहिँ बिगड़ो, गुरु रक्षा धारी ॥ ८ ॥
काल जाल से बेग छुड़ाकर, कर दें भव पारी ॥ ९ ॥

1 गुप्त करके

'धारा सिन्धु प्रताप' चरण अब पकड़ो जग जारी ॥१०॥

शब्द ८९.

सुरत लाओ गुरु चरनन में भाव ॥ टेक ॥

जो तुम चहो गुरू अपनावैं । पहिले तुम उनको अपनाव ॥ १ ॥
गुरु से दृढ़ नाता जोड़न का । है नहिँ दूसर कोइ उपाव ॥ २ ॥
हरदम लगन लगी रहे उनसे । छिन छिन चरनन प्रीति बढ़ाव॥ ३ ॥
जो अपना सब उनका मानो । सब में निज आपा विसराव ॥ ४ ॥
वे चाहैं नहिँ वस्तु तुम्हारी । तुम अपनापन दूर हटाव ॥ ५ ॥
खाते पीते सोते जगते । गुरु मूरत हिय में तुम ध्याव ॥ ६ ॥
चलते फिरते जग कृत करते । गुरु स्वरूप से ध्यान लगाव ॥ ७ ॥
कसकत रहै याद गुरु दम दम । ज्यों मारै टीसन तन घाव ॥ ८ ॥
दुख में रहो चहै तुम सुख में । मौज समझ शुकराना गाव ॥ ९ ॥
जैसे राखें रहो रज़ा में । हिये अन्तर से नेह निभाव ॥१०॥
गुरु की मर्ज़ी परख परख कर । जग में करौ नित्त बरताव ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरण में । निज आपा तुम नित्त समाव॥१२॥

शब्द ९०.

सखी अब आया फागुन मास ॥ टेक ॥

प्रेम रंग भरवा कर घट में । चल सतगुरु के पास ॥ १ ॥
इन्द्री उलट करौ पिचकारी । लौटो वायू स्वाँस ॥ २ ॥
वायू बल से धुन में छोड़ो । पावै काल तिरास ॥ ३ ॥
शब्द गुरू से होली खेलत । पाओ सुन्न निवास ॥ ४ ॥
महा सुन्न और भँवर गुफा चढ़ । सतपुर करौ बिलास ॥ ५ ॥
सत्त पुरुष सँग होली खेलौ । पूरन हो हिय आस ॥ ६ ॥

ऐसी होली खेलौ भाई । जग से होय उदास ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरण में धर पूरन विश्वास ॥ ८ ॥

शब्द ९१.

सुरत खेलै रल गुरु चरनन फाग ॥ टेक ॥
सम दम घट धर सतसँग मेली । कर जग से बैराग ॥ १ ॥
सुष्मन धुन गह चली गगन को । धर गुरु पद अनुराग॥ २ ॥
रैन दिवस अन्तर लौ लाई । इत सोई उत जाग ॥ ३ ॥
घट गंगा तिरबैनी न्हाई । परसे काशी प्राग ॥ ४ ॥
सुन में जाय हंस गति धारी । छूटी संगति काग ॥ ५ ॥
मानसरोवर न्हाई मल मल । धोये कलि मल दाग ॥ ६ ॥
प्रेम अंग ले आगे चाली । जागा धुर का भाग ॥ ७ ॥
ऊपर चढ़ी महासुन धुन गहि । ज्यों मकड़ी निज ताग॥ ८ ॥
सतगुरु बल से ज़ेर किया अब । बड़ा ब्रह्मण्डी नाग ॥ ९ ॥
सत्त पुरुष सँग होली खेली । सतगुरु के पद लाग ॥१०॥
कर सेवा दुर्बीन लई अब । सत्त पुरुष से माँग ॥११॥
अलख अगम सँग धूम मचाई । माया शुद्ध तियाग ॥१२॥
केन्द्र पदम में जाय समानी । अगम लोक से भाग ॥१३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दिलाया । निज घर अटल सुहाग॥१४॥

शब्द ९२.

गगन में मच रही अद्भुत होली ॥ टेक ॥
चढ़ी सुरत तन छोड़ अधर में । बैठ शब्द की डोली ॥ १ ॥
मधुर धुनन की उठैं तरँगें । शब्द अनाहद बोली ॥ २ ॥
पाँच तत्व रँग धारें छूटीं । भींजे मन की चोली ॥ ३ ॥

सखियाँ सब घिर आईं खेलन। न्यारी न्यारी टोली ॥ ४ ॥
नाचैं गावैं धूम मचावैं। कर कर बहुत ठठोली ॥ ५ ॥
भरैं अबीर सतोगुन का सब। अपनी अपनी झोली ॥ ६ ॥
रज तम धूल बनाय उड़ावैं। होवै माया पोली ॥ ७ ॥
काल रहै मुरझाय देख कर। यह गुरु शिष की होली ॥ ८ ॥
होली खेल गुरू से माँगैं। फगुआ भक्ति अतोली ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। तरी नार सुत भोली ॥१०॥

शब्द ९३.

सुरत धुलवाओ अघ, अब चल सतगुरु के घाट ॥ १ ॥
देर न करो आज कल गुरु का, गर्म हो रहा माँट ॥ २ ॥
बिरह में मैल फुला गुरु पटकैं, मन को धुन के पाट ॥ ३ ॥
सहज सहज में बड़ी युक्ति से, दैं सब अघमल काट ॥ ४ ॥
निर्मल कर फिर गगन चढ़ावैं, खुलै सुन्न की बाट ॥ ५ ॥
हलगे हलगे ऊपर धावै, जाय दशम दर फाट ॥ ६ ॥
अन्तर धस पावै अद्भुत रस, शब्द अमी की चाट ॥ ७ ॥
मानसरोवर न्हाय मगन हो, लख हंसन की हाट ॥ ८ ॥
आगे सतगुरु संग करै तय, महासुन्न का फाट ॥ ९ ॥
भँवर गुफा को जल्द छोड़ गई, सत्त लोक में त्राट ॥१०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दिखाया, धाल देश का ठाट ॥११॥

शब्द ९४.

सुरत क्यों भरम रहा परमातम सिन्धू भूल ॥ टेक ॥
सतगुरु सीख चित्त नहिँ धारै, सहै जगत के सूल ॥ १ ॥
निज प्रीतम को तज मतवाली, छान जग की धूल ॥ २ ॥

नीच देवतन की पूजा में, उलझी तज पद मूल ॥ ३ ॥
अछ्य वृक्ष के अमृत फल तज, गहै करील बबूल ॥ ४ ॥
काल क़साई जन्म जन्म में, मारै भाला हूल ॥ ५ ॥
जम के दंड सहै तू पुनि पुनि, नर्क फाँस में झूल॥ ६ ॥
बिन गुरु दया न छूटैं कबही, जग काँटे तिरसूल ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' जपो तो, सब काँटे हों फूल॥ ८ ॥

शब्द ९५.

सुरत मन माँजौ सत्गुरु संग ॥ टेक ॥
जन्म जन्म जो कर्म किये तुम । तिनकी लागी ज़ंग[१] ॥ १ ॥
विषय बासना दुराचार का । गाढ़ा चढ़ा कुरंग ॥ २ ॥
सत्संगत गम्भीर सिंधु में । उठती प्रेम तरंग ॥ ३ ॥
तामें बैठ नहाओ नित प्रति । उज्वल होउ अरंग ॥ ४ ॥
काई मैल धोय निर्मल हो । बाढ़ै भक्ति सुरंग ॥ ५ ॥
देख चाल प्रेमी सुरतन की । लेउ दासता ढंग ॥ ६ ॥
दिन दिन प्रीति पकै गुरु पद में । नई नई उठैं उमंग ॥ ७ ॥
गहि धुनि डोर होउ अंतर मुख । काल कला हो भंग ॥ ८ ॥
सहस कँवल हो त्रिकुटी जावै । लेवै धाम ओअंग ॥ ९ ॥
फोड़ दशम दर सुन्न शिखर में । पावे धुनि ररंग ॥१०॥
महा सुन्न चढ़ भँवर गुफा में । सुनै शब्द सोहंग ॥११॥
घाल देश अमरापुर जावै । होवै परम निहंग ॥१२॥
परम पिया के रूप समावै । निज पद अटल अभंग ॥१३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से । हुई फ़तह सब जंग ॥१४॥

१ काई

शब्द ९६.

जीव असंखन गिनती नाहीं । जन्मैं मरैं नित्त जग माहीं ॥ १ ॥
प्रतिपल रहैं लगाये मेला । आवत जावत ठेलम ठेला ॥ २ ॥
प्रति इक दिशा भीड़ रहै भारी । इक तन तज दूसर तन धारी॥ ३ ॥
दृष्टि खुलै तब दिखै तमाशा । नर लूकन को तिमिर प्रकाशा॥ ४ ॥
नर तन इन्द्री अल्प शक्ति बस । राखैं मूढ़ फँसाये जक्त रस ॥ ५ ॥
ऊपर नीचे कुछ नहिँ सूझै । तन स्वारथ बिन बात न बूझै ॥ ६ ॥
जन्मैं पलैं करैं सन्ताना । मर मर होवैं भूत मसाना ॥ ७ ॥
रोय पीट सब कुटुम्ब बिसारैं । पुनि आपहु अस इस्थिति धारैं ॥ ८ ॥
ऐसे हि सब भू आवैं जावैं । भुवर चौरासी जाय बसावैं ॥ ९ ॥
शहर पुराने भये उजाड़ी । नये भये आबाद पिछाड़ी ॥१०॥
महल हवेली खँडहर हो गये । बस बस सब मर मर रो रो गये॥११॥
अस हालत देखहु नर नारी । रहना यहाँ समझ दिन चारी ॥१२॥
चित्त उठाये रहो रैन दिन । काटो आयू के दिन गिन गिन॥१३॥
भोग विलासन में रहो ऐसे । माता से सुत बिछुड़े जैसे ॥१४॥
सुत बिन मातहिँ कुछ नहिँ भावै । अस पिया बिरहिन पिया रिझावै॥१५॥
घट में मालिक निश्चय जानो । उसका थान शीश में मानो ॥१६॥
आरत हो विनवहु घट माहीं । निज भेदी बतलाओ गुसाईं ॥१७॥
जो बताय निज धाम जीव का । पूरा भेद सुनाय पीव का ॥१८॥
जहाँ जीव पूरन सुख पावै । आवा गवन दुःख छुट जावै ॥१९॥
नित्त नियम विनती का धारो । विषय भोग पर धूरा डारो ॥२०॥
ऐसा यत्न करो कछु काला । तो फिर पिघलैं दीन दयाला॥२१॥
सन्त सतगुरू देहिँ मिलाई । जो मालिक का भेद बताई ॥२२॥

घट में मग धुर का बतलावैं । राह चलन की युक्ति लखावैं ॥२३॥
सो युक्ती ले करौ कमाई । थोड़े दिन में मग खुल जाई॥२४॥
मुक्ति द्वार निज घट में देखौ । दिन दिन चिन्ह मुक्ति के पेखौ॥२५॥
प्रीत प्रतीति गुरू की धारो । तन मन धन गुरु चरनन वारो॥२६॥
संसारिन का संग तियागो । नित सत संग भजन में लागो॥२७॥
निज घर की हिय धारो चिन्ता । लोक लाज तज रहो अचिन्ता॥२८॥
इक दिन पाओ परमानन्दा । छूटै जन्म मरन दुख द्वन्दा ॥२९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया । मुक्ती मग सहजहिँ लखवाया ॥३०॥

शब्द १७.

सुरत तू हो जा गुरु पद धूर ॥ टेक ॥
काहे दुखदाई दुनियाँ में, हो रही चकना चूर ॥ १ ॥
पड़ी यहाँ क्यों करो गुलामी, होकर किंकर क्रूर ॥ २ ॥
माया सीमा तज उठ भागो, काल करम से दूर ॥ ३ ॥
तन मन के सब बन्धन काटो, चित्त धरो पद मूर॥ ४ ॥
हो गुरु पद रज उड़ ऊपर को, बनजा प्रेम मयूर ॥ ५ ॥
पहिले सहस कँवल दल पहुँचो, लखो निरंजन नूर॥ ६ ॥
आगे त्रिकुटी ब्रह्म दरश कर, सुनो ओम् का तूर ॥ ७ ॥
सुन में जाय सुनो सारंगी, बनो हंस गति हूर ॥ ८ ॥
यहाँ से चलो प्रेम बल लेकर, सत पुर हो सत सूर ॥ ९ ॥
परसो सत पद कँवल सिंहासन, लख सत नाम ज़हूर॥१०॥
अलख पुरुष के दर्शन करके, परसो अगम हुज़ूर ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धाम में पाओ सुख भर पूर ॥१२॥

शब्द ९८.

सुमिर मन सत्त अनामी नाम ॥ टेक ॥

किरतम नाम काज नहिँ सारै, सुमिर मरौ बे काम ॥ १ ॥
बहुतक नर जप जप निशिवासर, जीवन किये तमाम ॥ २ ॥
माला ले हज़ार गुरिया की, चिपटैं आठों जाम ॥ ३ ॥
कामादिक मन से नहिँ निकसैं, भक्ती रही सकाम ॥ ४ ॥
जप ने शुभ करनी के फल में, दीन्हा कुछ आराम ॥ ५ ॥
भोग भोग फल गिरे खान में, यह जप का अंजाम ॥ ६ ॥
संत सतगुरू बिना मिले सब, भक्ति भई बदनाम ॥ ७ ॥
समझ विचार बिना सब ही श्रम, होवे सदा निकाम ॥ ८ ॥
ताते समझ बूझ कर भक्ती, सतगुरु से ले नाम ॥ ९ ॥
ताकी धुन अन्तर में पकड़ो, पाओ अटल निज धाम॥१०॥
यह धुन सब जग चाह मिटावै, करै भक्त निष्काम ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से, देंय शान्ति विश्राम ॥१२॥

शब्द ९९.

तुम गुरु से मिल भव तरो जगत डूबत जावे ॥ टेक ॥

इन्द्री विषय जगत की जड़ हैं। सो सब मन से हरो॥जगत०॥ १ ॥
जोगी सन्यासी वैरागी। इन का सँग मत करो ॥जगत०॥ २ ॥
काल दूत इनको पहिचानो। इन सँग नीचे गिरो ॥जगत०॥ ३ ॥
पंडित सब विद्या अभिमानी। इन केउ सँग से डरो ॥जगत०॥ ४ ॥
माया जन से प्रीत घटाओ। यह सब जरैं तो जरो॥जगत०॥ ५ ॥
हानि तुम्हार सकें क्या कर यह। कुछ परवाह न करो॥जगत०॥ ६ ॥
गुरु भक्ती में चित्त लगाओ। आतम हित चित धरो॥जगत०॥ ७ ॥

गुरू कृपा और साधु संग से। मन माया सब दरो ॥जगत०॥ ८ ॥
इक अंगी इक रंगी भक्ती। कर जीवत ही मरो ॥जगत०॥ ९ ॥
जग डूबेगा तुम उबरोगे। दृढ़ निश्चय हिय धरो ॥जगत०॥१०॥
परमानन्द पाय हरखोगे। निन्दक मरै तो मरो ॥जगत०॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। शब्द स्वरूपी बरो ॥जगत०॥१२॥

शब्द १००.

मन मारौ रैन धुनि सँग जग जग॥ टेक॥

जहँ चितवो तहँ काल और माया। गुरु पद गह उनसे भग भग॥१॥
माया ठगे ऋषी मुनि सुर सब। तू वाको गुरु बल से ठग ॥ २ ॥
गुरु स्वरूप को अगुआ करके। अन्तर घुसो सुष्मना मग ॥ ३ ॥
दो दल कँवल बसौ तुम पहिले। लख बिच सेत श्याम रँग नग॥ ४ ॥
घंटा धुनि सुन प्रेम बढ़ाओ। बंक नाल में पुनि धर डग ॥ ५ ॥
पुनि त्रिकुटी चढ़ गर्ज श्रवण कर। उमँग समाओ निज रग रग॥ ६ ॥
सुन में जाय सुनौ सारंगी। धरो हंस गति तजि गति खग ॥ ७ ॥
चढ़ सत लोक अमर पद पाओ। लख सत नाम नूर जग मग॥ ८ ॥
अलख दर्श कर अगम समाओ। पूरण प्रेम पदमपद पग ॥ ९ ॥
उमँग नवीन भरो हिरदय में। धारो पुनि पिया पथ पर पग ॥१०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धाम में। मिल पिया से सर्वांग अलग ॥११॥

शब्द १०१.

हटो द्वारे से नहिँ तब तक। काम पूरा नहिँ हो जब तक ॥ १ ॥
विघ्न चाहे जितने आवें। कर्म कितने ही भर्मावें ॥ २ ॥
उलट कहाँ जाओगे अब यार। जगत का वही भाड़ तैयार ॥ ३ ॥
जहाँ से जल जल के छूटे। फफोले अब तक नहिँ फूटे ॥ ४ ॥

भुनोगे जाय भाड़ में फिर। रहोगे एक पलक नहिँ थिर ॥ ५ ॥
जाँच कर देखा सब जग भ्रांत। भरे हैं कष्ट और दुःख अशान्त ॥ ६ ॥
मुड़ो मत आगे पग धारो। कोई कितने धक्के मारो ॥ ७ ॥
आस जीवन की अब छोड़ो। लगन गुरु चरनन में जोड़ो ॥ ८ ॥
सूरता मन से मत त्यागो। पीठ दे रन से मत भागो ॥ ९ ॥
सहो सन्मुख गोली तलवार। बहादुर बनो भक्ति में यार ॥१०॥
बड़ा नहिँ रन या सम कोई। काल सम बैरी नहिँ होई ॥११॥
गुरू का बल हिरदे धारो। घात से काल करम मारो ॥१२॥
पपीहा का पन हिरदे धर। रटो पिय को तुम जीवन भर ॥१३॥
प्राण जो निकस जाँय तो जाउ। पिया बिन शान्ति न मन में लाउ ॥१४॥
सती हो पिय सँग फूँको तन। उलट कर होओ मत भंगिन ॥१५॥
हथेली पर रक्खो अब जान। पिया के हेत अरप दो प्रान ॥१६॥
भक्ति है नहिँ खाला का घर। नचौ सिर काटि पाँय तर धर ॥१७॥
तोड़ कर आपा भक्ति करौ। पिया की ब्रह की आग जरौ ॥१८॥
बिरह से सब घट दूत जरैं। आस तृष्णा जग सकल मरैं ॥१९॥
भस्म हों काल अरु माया दल। छुटै मन से सब ही कलमल ॥२०॥
उदय हो प्रेम स्वरूपी भान। चढ़ै फिर सुरत अधर अस्मान ॥२१॥
शब्द गुरु सँग सतपुर धावै। परम पति का दर्शन पावै ॥२२॥
परम गुरु 'धारा सिंधु प्रताप'। करावेंगे सब करनी आप ॥२३॥

शब्द १०२.

गुरु प्यारे से दिन २ बढ़ाओ लगन। दुनियाँ के कामों में खोओ न दिन ॥१
गुरु अरु मालिक एकहि जानो। तन धर आये अरूपी सजन ॥ २ ॥
मूरत उनकी हृदय बसाओ। मन से उनके पकड़ चरन ॥ ३ ॥

घट में उनका करो चिन्तवन । सूरत मन ठहराओ गगन ॥ ४ ॥
झीना ख़्याल परम प्रीतम का । बसा रहै मन में निशि दिन ॥ ५ ॥
किंचित मात्र सुरत ऊपर को । तनी रहै अंतर प्रति छिन ॥ ६ ॥
आशा बनी रहे चरनन की । कब प्रीतम से होय मिलन ॥ ७ ॥
याद जो बहुत काल तक बिसरे । तो मन में हो पछतावन ॥ ८ ॥
बनै नित्य जो अस अभ्यासा । तो फिर रहो अचिंत मगन ॥ ९ ॥
इसी जन्म में निश्चय करके । पहुँचोगे तुम सत्त भवन ॥१०॥
सत्त धारना ध्यान यही है । इसको पूरा जानो भजन ॥११॥
फिर २ भूलो फिर २ चेतो । इक दिन काम होवै पूरन ॥१२॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से । बेग बुझावें तुम्हारी तपन ॥१३॥

शब्द १०३.

जितने धर्म कार्य जग माहीं । संत पन्थ सत सँग सम नाहीं ॥ १ ॥
संत साध की सत संगत बिन । पूरण मोक्ष असम्भव ही गिन ॥२॥
ब्रत तीरथ अरु पूजा दाना । जप तप योग अष्टांग अरु ध्याना ॥३॥
कथा कीर्तन वेद पुराना । सबहि करें उत्पन्न अभिमाना ॥ ४ ॥
इस करनी से मन हो मगनी । फूलै अधिक अहं में पगनी ॥ ५ ॥
अहंकार का दीर्घ आवरण । अंशी अंश द्वैत का कारण ॥ ६ ॥
जीवातम परमातम माँही । अंतर अधिक बढ़ावत जाही ॥ ७ ॥
पुरुषारथ को पुष्ट करावै । जीव भिन्नता अधिक बढ़ावै ॥ ८ ॥
जगत वासना वृद्धि करावै । कर्मों का लेखा अधिकावै ॥ ९ ॥
सत संगति की महिमा भारी । यहाँ संत निज किरपा धारी ॥१०॥
मन की गढ़त जहाँ नित होवै । साबुन बचन मैल मन धोवै ॥११॥
निरख परख निज अवगुण केरी । होय पड़ै जहाँ मार घनेरी ॥१२॥

घटि घटि अहं दीनता बाढ़ै । जो सुत क्रम २ तम से काढ़ै ॥१३॥
मन भिच २ जहँ होय निमाना । मल तज होय महीन निदाना॥१४॥
संचित कर्म विकार वासना । दिन दिन मन को तजैं ग्रासना॥१५॥
मन महीन हो सुत को उगलै । छिपा प्रेम परगट हो निकलै ॥१६॥
प्रेमी सुरत पिया पद परसै । मुक्तानन्द अमर में सरसै ॥१७॥
नहीं और जग धर्म काम से । छूटै आतम काल ग्राम से ॥१८॥
संचित कर्म न होवें दूरा । जगत बासना होय न चूरा ॥१९॥
अहंकार छोड़ै नहीं आतम । ताते दूर रहै परमातम ॥२०॥
सतसँग तम संसार हटावै । विषय भोग की चाह मिटावै॥२१॥
कभी न सत सँग से मन मोड़ो । दृढ़ प्रण करो कभी मत छोड़ो ॥२२॥
सत संगत ही भजन करावै । सत संगत ही प्रेम बढ़ावै ॥२३॥
सत संगत गुरु सेव करावै । सत सँग ही परतीति पकावै ॥२४॥
वही उमँग उत्साह बढ़ावै । वह संशय भ्रम दूर करावै ॥२५॥
सत गुरु वही प्रसन्न करावै । भक्ति वही पूरण करवावै ॥२६॥
वही परम सुख दात दिलावै । वही एक दिन पिया मिलावै ॥२७॥
कहूँ कहा सत सँग की महिमा । या सम और न कोई धर्मा॥२८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताई । सो उनके सेवक ने गाई ॥२९॥

शब्द १०४.

सजन तुम सोच समझ संग करो सत्गुरु का ।
रास्ता उनकी दया से खुलैगा धुर घर का ॥ १ ॥
सुरत का तीर नित चलाते रहो बारम्बार ।
बाँधकर घट में निशाना अमर अगमपुर का ॥ २ ॥

उठाये चित्त रहो नित्त दुनियादारों से ।
रहो निज विरती को देते ठिकाना अंतर का ॥ ३ ॥
दिल से करते रहो उपाय गुरु उपदेश अनुसार ।
छोड़ते पीछा जाव धीरे धीरे भरपुर का ॥ ४ ॥
गौन दुनिया रहै और मुख्य रहै परमारथ ।
नशा सा चित्त में हरदम रहै गुर और धुर का ॥ ५ ॥
सिवा गुरू के तजो चित्त से सभी का बल ।
भरोसा पूरा हर इक काम में रहै गुरु का ॥ ६ ॥
हटाये मन से अपने रहो जगत की चिन्ता ।
गुरू के चरन पर पटक दो भार सब सिर का ॥ ७ ॥
जो हो सो मौज से हो करो मत परवा उसकी ।
साधते रहो मन ऊपर से काम बाहर का ॥ ८ ॥
रहो जो रहनी तुम ऐसी तो फिर दया देखो ।
दिखायें 'धारा सिन्धु प्रताप' खेल अन्तर का ॥ ९ ॥

शब्द १०५.

सुरत तुम धीर धरो सतगुरु कर रहे सम्हार ॥ टेक ॥
किये जाव अभ्यास निरन्तर । वचन गुरु के निश्चय धार ॥ १ ॥
रूखापन फीकापन होवे । और जो धक्के लगें हज़ार ॥ २ ॥
तरह तरह के भ्रम मन माहीं । उठैं नित्त प्रति बारम्बार ॥ ३ ॥
चाहे जितनी हो कठिनाई । गिर गिर उठो सम्हार सम्हार ॥ ४ ॥
चाहे जितनी होय उदासी । कोई तरह हिम्मत मत हार ॥ ५ ॥
बनै न सुमिरन ध्यान भजन कुछ । लटके रहो गुरू की लार ॥ ६ ॥
अपनी सी सब कर कर हारो । रोय पीट गुरु पद सिर धार ॥ ७ ॥

कितना बड़ा काम है सोचो । कितना है तुम्हरा ईसार[१] ॥ ८ ॥
किस बिरते पर करते नख़रे । गुरु की क़दर करी क्या यार॥ ९ ॥
कितना मन तुम गुरु को दीन्हा । करो तनक तो सोच विचार ॥१०॥
इस थोड़े पर जो तुम करते । करें दया सतगुरु दातार ॥११॥
इसी चाल से भी गुरु इक दिन । करि हैं पूरा काम तुम्हार ॥१२॥
शर्त यही है लगे रहो नित । चाहे जीत होय या हार ॥१३॥
मुड़ चालो तो दूर पड़ोगे । बहुत होयगी हानि तुम्हार ॥१४॥
चाहे जैसे मन समझाओ । भक्ती तज मत बैठो हार ॥१५॥
हुए जो पूरे हैं या मग में । ऐसेहि चले राह दुश्वार[२] ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू के । रहो हमेशा शुक्र गुज़ार ॥१७॥

शब्द १०६.

सुरत मन सोवत लेउ जगाय ॥ टेक ॥
मन सुत जागे तब ही जानो । निज घर याद रहै हिये छाय ॥ १ ॥
जग कृत में मन लागै नाहीं । बार बार पिया याद सताय ॥ २ ॥
ऐसी सुरत सखी बड़ भागिन । रहै पिया को हृदय बसाय ॥ ३ ॥
अस जागन की युक्ति गुरू बिन । कोई सुत जग में नहिँ पाय॥ ४ ॥
जप तप तीरथ व्रत मूरत सब । यह करनी अभिमान बढ़ाय ॥ ५ ॥
अन्तर असर होय नहिँ इनका । बाहर से मन .खुश हो जाय ॥ ६ ॥
शब्द सतगुरू की जब किरपा । हृदय कँवल को बेधै आय ॥ ७ ॥
तब ही हूक उठै हिरदय से । लगै तीर सी पिय के जाय ॥ ८ ॥
धार प्रेम की दोऊ ओर से । उठके जब इक तार बनाय ॥ ९ ॥
खिंचन लगे सिंध को बुँद क्रम क्रम । खिंचत खिंचत इक दिन मिल जाय१०
'धारा सिन्धु प्रताप बतावैं । यों सुत अमर परम पद पाय ॥११॥

१ Sacrifice; त्याग, २ कठिन ।

शब्द १०७.

सुरत अब खींचो ध्यान कमान ॥ टेक ॥

तीर बनाओ बिरह प्रेम के। पिया बनाव निशान ॥ १ ॥
ले युक्ती गुरु से निशिवासर। भर भर मारो तान ॥ २ ॥
तब वे अपना धनुष उठावैं। तुम्हें बनाय निशान ॥ ३ ॥
दोनो लँग प्रेमी प्रीतम के। छुटैं प्रेम के बान ॥ ४ ॥
काल देश से द्याल देश तक। होय युद्ध घमसान ॥ ५ ॥
उधर तो चेतन सिंधु अपारा। अगम शक्ति की खान ॥ ६ ॥
इधर रहै सतगुरु की किरपा। सोऊ कम मत जान ॥ ७ ॥
जो जीतै सोई हारे के। अंग में होय प्रधान ॥ ८ ॥
दोऊ विधि निज दास जितावैं। सतगुरु सन्त सुजान ॥ ९ ॥
सतगुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' पर। बार बार .कुरबान ॥१०॥

शब्द महिमा

शब्द १०८.

शब्द की महिमा अपरम्पार। शब्द ही असली कुल करतार ॥ १ ॥
परम तत यही परम चैतन। परम सिंधू का परम रतन ॥ २ ॥
अनामी में यह रहता गुप्त। केन्द्र अंतर के अंतर लुप्त[1] ॥ ३ ॥
हुआ जब प्रगट हुए तब नाम। अगम और अलख पुरुष सतनाम॥४॥
रचाया निर्मल चेतन देश। यही है रचना का सर्वेश[2] ॥ ५ ॥
शब्द सब जानों की है जान। यही है सर्व गुणों की खान ॥ ६ ॥
शब्द से प्रगटी आतम धार। शब्द से हुआ सभी विस्तार ॥ ७ ॥

१. छिपा हुआ, २. कुल मालिक

शब्द ही परम शान्ती रूप । शब्द ही परमानन्द स्वरूप ॥ ८ ॥
शब्द है सृष्टि की कारन धार । इसी का पिरथम हुआ उतार ॥ ९ ॥
शब्द है अक्षर निः अक्षर । शब्द है पारब्रह्म और क्षर ॥१०॥
शब्द है ब्रह्म शब्द माया । शब्द ने त्रयगुन प्रगटाया ॥११॥
शब्द ने रचे त्रिलोक अनंत । शब्द प्रत्येक में हुआ महन्त ॥१२॥
शब्द ही ब्रह्मा विष्णु महेश । शब्द ही लक्ष्मी गौर गनेश ॥१३॥
शब्द से नर सुर असुर हुए । योनि चौरासी लाख मुए ॥१४॥
शब्द सब जग में व्याप रहा । राज निज सब में थाप रहा ॥१५॥
शब्द है कुल क़ुदरत की जान । शक्तियों में यह शक्ती मान ॥१६॥
चाँद सूरज और तारा गन । सभी में भरा शब्द चेतन ॥१७॥
अनेकन मन में उठैं विचार । शब्द से सब का हो इज़हार ॥१८॥
शब्द बिन कोई काम न कोय । शब्द बिन रहै सृष्टि सब सोय ॥१९॥
शब्द ही फाँसै जग में जीव । शब्द ही जीव मिलावै पीव ॥२०॥
शब्द, सतगुरु, का करै उबार । और सब फँसैं जगत मँझार ॥२१॥
शब्द सतगुरु का सुषमन में । जो है नाड़ी सुक्षम तन में ॥२२॥
शब्द का भेद गुरू से लो । वार तन मन गुरु चरनन दो ॥२३॥
शब्द का करो नित्य अभ्यास । एक दिन पाओ अमर हुलास ॥२४॥
सतगुरू 'धारा सिन्धु प्रताप' । शब्द मुक्ती स्वरूप हैं आप ॥२५॥

शब्द १०९.

जितने भये संत अवतारा । शब्द श्रेष्ठ मग सबहि पुकारा ॥ १ ॥
साध गुरुन ने शब्दहि गाया । सब योगेश्वर शब्द कमाया ॥ २ ॥
गुरु नानक ने शब्द पुकारा । सत कबीर ने शब्द प्रचारा[1] ॥ ३ ॥
पल्टू साहब शब्दहि गाया । जग जीवन ने शब्द बताया ॥ ४ ॥

१. जारी किया

तुलसी साहिब शब्दहि माना । राधा स्वामी शब्द बखाना ॥ ५ ॥
सूरदास मीरा और दादू । माना शब्द शक्ति बड़ जादू ॥ ६ ॥
चरणदास ने शब्दहि माना । सर्वोपरि मग शब्दहि जाना ॥ ७ ॥
महिमा शब्द वसिष्ठहु गाई । रामचन्द्र को भाष सुनाई ॥ ८ ॥
शब्द अर्जुन को कृष्ण बताया । उत्तर गीता में समझाया ॥ ९ ॥
शिव ने शब्द श्रेष्ठता मानी । लख हठयोग प्रदिपिका बानी ॥१०॥
शंकराचार्य ग्रंथ निज भाषा । मुक्ती पंथ शब्द को राखा ॥११॥
वेद अथर्व उपनिषद बानी । हंस नाद में शब्द प्रमानी ॥१२॥
और अनेक साध और ग्रंथा । माना सबनि शब्द निज पंथा ॥१३॥
काल देश के हू पंथनि में । शब्द श्रेष्ठ माना ग्रंथनि में ॥१४॥
सन्त शब्द सुषुमनहिँ रहाना । काल शब्द के अन्य अस्थाना ॥१५॥
सुषुमन शब्द रतन इक भारी । जिन नहिँ पाया रहे दुखारी ॥१६॥
राज पाट और शाहंशाही । तख़्त ताज और .फौज सिपाही ॥१७॥
धन सन्तान सुघड़ बहु नारीं । क़िले गढ़ी और महल अटारीं ॥१८॥
पूरन विद्या नाम और इज़्ज़त । मुल्क हुकूमत हशमत[१] शुहरत[२] ॥१९॥
जिनहिँ मिले ये सर्व पदारथ । देखन में यह करैं कृतारथ ॥२०॥
शब्द बिना हैं फूटे भागा । यह सब विष्टा सम वे कागा ॥२१॥
जग में दीखैं महा दरिद्री । फूटे कान आँख सब इंद्री ॥२२॥
सुषुमन शब्द रहै आसक्ती । सतगुरु की हो प्रेमाभक्ती ॥२३॥
सब राजों का है महराजा । महराजों का है सरताजा ॥२४॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विराटा । ब्रह्म ररंग का है सम्राटा ॥२५॥
सन्त शब्द की यह है महिमा । बिन अनुभव नहिँ पावै मर्मा ॥२६॥
हे अभागियो सुनो सँदेशा । खोज सन्त लो शब्द उपदेशा ॥२७॥

१. गौरव, २. नामवरी.

सतगुरु संग करो नित जाई । सन्त शब्द की करो कमाई ॥२८॥
जो कुछ मैंने भाष सुनाई । पाओगे उसकी सच्चाई ॥२९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया । सो मैं हाथ जोड़ के गाया ॥३०॥

शब्द ११०.

शब्द शक्ति अब करूँ बखानी । जो तुम हूँ नित कृत में जानी॥ १ ॥
परा पसन्ती अन्तर बानी । सोच विचार जीव मन आनी ॥ २ ॥
जो मन में जिव करै विचारा । अन्तर बानी जानो सारा ॥ ३ ॥
वरन माल के जितने अक्षर । सब शाखा हैं जड़ धुन अंतर ॥ ४ ॥
यह सब वरन वैखरी बानी । सृष्टी कृत संचालक जानी ॥ ५ ॥
जब निकसै बच्चा घट बाहर । अंतर धुन को करै उजागर ॥ ६ ॥
जो अंतर की धुन नहिँ खोलै । जो रोने का शब्द न बोलै ॥ ७ ॥
जानो धुन अंतर नहिँ होई । जान नदारद मुर्दा सोई ॥ ८ ॥
यासे धुन को जानहिँ मानो । धुन और जान एकही जानो ॥ ९ ॥
प्रगटै बाहर जो अंतर धुन । आतम धार बसै वाके तन ॥१०॥
वृत्ती निज धुन माहिँ समानी । रहै गर्भ में ऊँच खिचानी ॥११॥
रहै जोत का दर्शन करता । पूरव जनमन दुःख सुमिरता ॥१२॥
ठानै प्रण अब जाऊँ जग में । रहूँ निरन्तर भक्ती मग में ॥१३॥
जब अंतर धुन तज आवे जग । शब्द बाहरी खींचैं रग रग ॥१४॥
शब्द प्यार के सुन माता से । दादा पिता बहिन भ्राता से ॥१५॥
प्रण भूलै बाहर हो वृत्ती । क्रम क्रम कढ़ि कढ़ि दुरमत भरती ॥१६॥
बाहर धुन में रचता जावै । शब्द भिन्न भिन कर्म सिखावै ॥१७॥
जैसे कर्म करै फल पावै । शब्द द्वार नाना गति आवै ॥१८॥
शब्द ईर्षा क्रोध जगावै । लड़ा भिड़ा के मार कटावै ॥१९॥

शब्द शत्रु को दास बनावै। कर .गुलाम सेवा करवावै ॥२०॥
शब्दहि सब विचार करवावै। बँधे विचार तुरत पल्टावै ॥२१॥
शब्दहि हिय कठोर पिघलावै। अष्ट धातु को मोम करावै ॥२२॥
शब्दहि सब से वैर बँधावै। शब्दहि सब से मेल करावै ॥२३॥
अनपढ़ को शब्दहि पढ़वावै। मूरख को बुधिमान बनावै ॥२४॥
शब्दहि विद्यावान बनावै। तरह तरह के हुनर सिखावै ॥२५॥
शब्दहि सब उपदेश करावै। शब्दहि व्याख्यान दिलवावै ॥२६॥
नफ़रत रग़बत शब्द करावै। धोखे दे मोहै फ़ुसलावै ॥२७॥
शब्दहि मत प्रचार करवावै। भक्तनि को अभक्त बनवावै ॥२८॥
शब्द राग और गीत गवावै। भिन्न भिन्न बाजे बजवावै ॥२९॥
नर और पशु मोहित करवावै। हुक्म दिला तामील करावै ॥३०॥
शब्दहि टौना मंत्र करावै। मारन उच्चाटन करवावै ॥३१॥
रन में शब्द सिपाह जुझावै। तिमिर खंड में राह बतावै ॥३२॥
सोचौ तनक बुद्धि से अब तुम। कौन शक्ति है जग में या सम॥३३॥
यह बाहर का शब्द मटीला। इतनी भारी ताकी लीला ॥३४॥
सर्व सृष्टि का यह संचालक। नाशक घातक और प्रति पालक॥३५॥
अन्तर ध्वनि की महिमा भारी। वे जानें जिन सतगुर धारी॥३६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' शब्द धुन। ध्याय अमर होवौ तज तन मन॥३७॥

सद्गुरु महिमा

मालिक सत्गुर एक हि जानो। सागर लहर भेद पहिचानो ॥ १ ॥
अगम अलख सत नाम स्वरूपा। सोहं रारंग ओअंग भूपा ॥ २ ॥

जोत निरंजन और त्रयदेवा। इन्हैं सुपुर्द सृष्टि की सेवा ॥ ३ ॥
तीन ऊपर के निर्मल चेतन। परम बिलास करैं सँग हंसन ॥ ४ ॥
बाक़ी कुल सृष्टी अधिकारी। पिण्ड अण्ड ब्रह्मण्ड विहारी ॥ ५ ॥
इनका काम सृष्टि फैलाना। कर्म जाल में जीव फँसाना ॥ ६ ॥
संत सत्गुरू आतम धारा। काम उबारन इनहि सम्हारा ॥ ७ ॥
सृष्टि करन्ता बहुत स्वरूपा। जीव उबारन एकही रूपा ॥ ८ ॥
देखो शक्ती एक रूप की। भींचै कला अनेक भूप की ॥ ९ ॥
सिन्धु से इतनी शक्ती लावै। काल कलाऐं भींच दबावै ॥१०॥
भूप अनेकन काल राज में। विघ्न करैं बहु संत काज में ॥११॥
सब को मार हटावैं संता। जीव उबार मिलावैं कंता ॥१२॥
जो जिव पकड़ैं सत्गुरु ओटा। उबरैं मार काल सिर सोटा ॥१३॥
चैतन सिंधु अपार हमेशा। लखत रहै जिव जाल प्रवेशा ॥१४॥
जब लगि संत धार नर तन में। खींचा हमें नहीं चरनन में ॥१५॥
सब समर्थता सिन्धु धाम की। भई हमारे कौन काम की ॥१६॥
ताते महिमा सत्गुरु केरी। हम निज मत सर्वोपरि हेरी ॥१७॥
निर्मल चेतन सिन्धु अपारी। ताहू से सत्गुरु भये भारी ॥१८॥
सत्गुरु लहर उबारन गत में। सिन्धु से बड़ी हमारे मत में ॥१९॥
जौन धार ने जीव उबारी। वही जीव को सब से प्यारी ॥२०॥
कोटिन धन्यवाद अस गुरु को। कोट प्रनाम संत सत्गुरु को ॥२१॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बखानी। गुरु महिमा तब हम सब जानी ॥२२॥

शब्द ११२.

सत्गुरु हैं देवन के देवा। जानैं निज सेवक यह भेवा ॥ १ ॥
जिन नर सतगुरु भक्ति न धारी। जानै नहिँ यह भेद अनारी ॥ २ ॥

मिलैं न सतगुरु संस्कार बिन । भटकत फिर सदा निगुरे जन ॥ ३ ॥
यों तो भरा गुरुन से सब जग । लम्पट लोभी रुज़गारी ठग ॥ ४ ॥
गुरु पदवी सच्ची सतगुरु की । और गुरुन की घात असुर की॥ ५ ॥
जो पद पार ब्रह्म नहिँ पावैं । सो सतगुरु निज दास दिलावैं॥ ६ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश गनेशा । जन्म मरण में रहैं हमेशा ॥ ७ ॥
सतगुरु बिन नहिँ लगै ठिकाना । ऊँच नीच यौनी भटकाना ॥ ८ ॥
तुच्छ तुच्छ सेवक सतगुरु के । हैं अधिकारी लोक अमर के ॥ ९ ॥
अटल राज रचना का पावैं । तिरलोकिन पर हुक्म चलावैं ॥१०॥
रचना भरी अनन्त जीव से । निकल सकैं नहिँ काल सीव से॥११॥
बिन सतगुरु भक्ती भव पारा । मालिक हू नहिँ सकैं उबारा ॥१२॥
देखो सतगुरु का उपकारा । दात उनकी का वार न पारा ॥१३॥
एक दान रोटी का किनका । एक दान भोजन इक दिन का ॥१४॥
एक दान कुछ कपड़ा तन का । एक दान कुछ हिस्सा धन का॥१५॥
एक दान पशु बाग़ वृक्ष का । एक दान है सहस्र लक्ष का ॥१६॥
एक दान है विद्या नाना । एक दान है कथा पुराना ॥१७॥
यह सब दान तुच्छ सुख दाता । कुछ सुख दे फिर दुःख बढ़ाता॥१८॥
या को भिक्षुक पाय सराहीं । पीछे दुख में अधिक कराहीं ॥१९॥
सत गुरु की है दात अनन्ता । अघट अटल नहिँ आदि रु अन्ता॥२०॥
कौन सकै शुकराना गाई । रसना कोइ शब्द नहिँ पाई ॥२१॥
धन्यवाद में थकै बिचारा । मन और सुरत चरन दो वारा ॥२२॥
जिन बुँद कीन्हा सिन्धु अपारा । तिमिर में भान अनन्त उजारा॥२३॥
जिन गुरु ज्ञान अपार प्रकाशी । जिन गुरु बख़्शा सुख अविनाशी॥२४॥
कौन सकै तिन महिमा गाई । 'धारा सिन्धु प्रताप' बताई ॥२५॥

शब्द ११३.

सतगुरु मेरे प्राण अधारा। जिन कृपया मम जन्म सुधारा ॥ १ ॥
सत् गुरु रक्षा करैं सबन की। जिन्हैं लाग उनके चरनन की॥ २ ॥
काटैं कर्म गुरू दासन के। बन्धन तोड़ैं सब तन मन के ॥ ३ ॥
सतगुरु काम क्रोध को मारैं। जगत वासना क्रम क्रम जारैं॥ ४ ॥
सतगुरु लोभ मोह को टारैं। द्वेश ईर्षा के अँग गारैं ॥ ५ ॥
पहिले अहंकार जड़ काटैं। पुनि माया के परदे फाटैं ॥ ६ ॥
जहाँ विकारन की जड़ घट में। तहँ धारैं उल्टावैं पट में ॥ ७ ॥
शील क्षमा सन्तोष बढ़ावैं। श्रद्धा प्रेम प्रतीति दृढ़ावैं ॥ ८ ॥
दया दीनता अंग अधिकावैं। मनन विचार विवेक पकावैं ॥ ९ ॥
काढ़ैं मन से स्वारथ का मल। करैं उदार शुद्ध अरु निर्मल ॥१०॥
सतगुरु इन्द्री दमन करावैं। जग से मोड़ अन्तर उल्टावैं ॥११॥
मन और सुरत शब्द पकड़ावैं। शब्द शब्द पौढ़ी चढ़वावैं ॥१२॥
कँवल सहसदल पाट खुलावैं। जोत निरञ्जन दर्श करावैं ॥१३॥
बंक नाल में शंख सुनावैं। त्रिकुटी में धुन ओम् जगावैं॥१४॥
सुन में चन्द्र रूप दर्सावैं। हंसन संग मिलाप करावैं ॥१५॥
महा सुन्न में बाट लखावैं। भँवर गुफा मुरली बजवावैं ॥१६॥
सत्त लोक में फिर पहुँचावैं। सत्त पुरुष दीदार करावैं ॥१७॥
अलख रूप का दर्श दिखावैं। अगम पुरुष सँग केलि करावैं॥१८॥
पुनि ताके आगे निज पद में। गुरु विश्राम देंहि बेहद में ॥१९॥
पूरन पद पूरन गति पावै। काल देश में फेर न आवै ॥२०॥
केवल सतगुरु ही का है बल। करै जो महा काल गति निर्बल॥२१॥
प्रबल धार जो वाकी जारी। तासे गुरु जिव खैंचि निकारी ॥२२॥

धन धन धन धन क्या कहुं महिमा। कटैं न गुरु बिन कर्मा भर्मा॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बखाना। सो उनके दासन ने जाना॥२४॥

शब्द ११४.

संत सद्गुरू आतम धारा। झांकी जग में नरतन द्वारा॥ १॥
अंतर फैली सिंधु केन्द्र तक। फोड़ आवरन बहती दृग तक॥ २॥
एक सिरे पर केन्द्र स्थाना। दूसर पर निज दास बँधाना॥ ३॥
ध्यान करै जो दास गुरू का। जानो ध्यानी मालिक रू[१] का॥४॥
सिंधू का है रूप अपारा। नहीं ध्यान में आवै सारा॥ ५॥
ताते निज धारा का ध्याना। सिंधू ने अपना ही माना॥ ६॥
सत्गुरु आतम धार आकर्षन। दास सुरत को खींचैं छिन छिन॥ ७॥
बँधी सुरत जग के बहु रूपा। खिंचै न बिन गुरु शब्द स्वरूपा॥ ८॥
जगत पदारथ का आकर्षण। इन्द्री द्वार करै मन भक्षण॥ ९॥
मन के सँग रहै सुरत बँधानी। जग के जाल सदा अटकानी॥१०॥
सत्गुरु बिना कौन है शक्ती। जो तोड़ै सुत जग आसक्ती॥११॥
सुत सत्गुरु दृग से लटकानी। सिंधु केन्द्र से रहै बँधानी॥१२॥
बार बार गुरु ध्यान द्वार से। प्रीति बढ़ै गुरु सिंधु धार से॥१३॥
जो गुण हैं सिंधू चेतन में। सो सिंधू की लहर रतन में॥१४॥
ध्यानी माँहि लहर से आवैं। क्रम क्रम कलिमल धोय बहावैं॥१५॥
निज सम बुन्द को लहर बनावैं। पुनि निज सँग सिंधू ले जावैं॥१६॥
ताते सत्गुरु रूप धियानी। सहज सिंधु में जाय समानी॥१७॥
गुरु स्वरूप के प्रेमी जो जन। गुरू नाम का करैं जो सुमिरन॥१८॥
गुरु से अन्तर प्रेम बढ़ावैं। गुरू सुरत से सुरत बँधावैं॥१९॥
सहजहिँ खोलैं मुक्ति दुआरा। बिन श्रम हो जावैं भव पारा॥२०॥

१. स्वरूप.

ज्ञानी चतुर युक्ति कर हारैं। होय न कुछ सिर धर धर मारैं ॥२१॥
ताते पूरन श्रद्धा गुरु में। लाय बसाउ प्रेम निज उर में ॥२२॥
नित प्रति प्रेम बढ़ाते जाओ। रहो अचिंत मुक्ति गति पाओ ॥२३॥
यह मुक्ती की कुंजी जानो। अपन भलाई चहो तो मानो ॥२४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दृढ़ाया। बार बार सो भाष सुनाया ॥२५॥

बिनती, प्रार्थना, .फरियाद व पुकार.

शब्द ११५.

'धारा सिन्धु प्रताप' दाता, दया हम पर कीजिये।
हम अधम निज सेवकों को, गोद अपनी लीजिये ॥ १ ॥
काल जाल कराल के, अत्यन्त दुख सहते रहे।
बहु समय अज्ञान मय, भव धार में बहते रहे ॥ २ ॥
अब तो दीनानाथ दयाल, कृपाल दृष्टी फेरिये।
दुख भरी हालत पे हमरी, तनक तो अब हेरिये ॥ ३ ॥
मोह मद अरु लोभ क्रोध, विरोध काम अरु कपट छल।
काल ने फाँसे हैं इनमें, तुम्हरे सब बालक अबल ॥ ४ ॥
हा हा कर कर जोरि कर, सब भांति बिनवैं हम तुम्हें।
सर्व समरथ क्या हुये, जो नहिँ छुड़ाओ अब हमें ॥ ५ ॥
आये हो तुम जीव बँधन काटने के वास्ते।
काल माया देखते तुम्हरे हमें हैं ग्रासते ॥ ६ ॥
मार कर सब दूत वैरी, धोय कर कलि मल अभी।
साफ़ कर हम सेवकों को, बख़शिये शुभ गुण सभी ॥ ७ ॥

शब्द नाव चढ़ाय कर, भव जल से पार उतारिये।
पिण्ड अण्ड ब्रह्मण्ड के, प्रभु पार बेग उबारिये ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' पद का, परम तत्व लखाइये।
पुनि हमें निज बालकों को, सदा गोद खिलाइये ॥ ९ ॥
बार संख असंख हम सब, शुक्रिया तुम्हरा करैं।
'धारा सिन्धु प्रताप' के गुण, सब सदा गावत रहैं ॥१०॥

शब्द ११६.

सतगुरु धारा सिन्धु प्रताप। दर्शन देउ हरौ त्रय ताप ॥ १ ॥
तुम समरत्थ दया के सागर। ज्ञान स्वरूप सर्व गुण आगर ॥ २ ॥
दीन दुखी के रक्षक स्वामी। सर्व वियापक अंतरयामी ॥ ३ ॥
मैं अपराधी पतित नीच अति। काल कर्म कीन्ही मम दुर्गति॥ ४ ॥
बुन्द मलीन सिंधु अति निर्मल। बुन्द चञ्चला सिंधू निश्चल ॥ ५ ॥
मेरी क्या ताक़त थी दाता। तुम दर्शन की चाह उठाता ॥ ६ ॥
पर तुम दया करी करुणाकर। मुझ दुखिया को पकड़ा आकर॥ ७ ॥
बहता था भव सिन्धु मँझारा। शब्द नाव में लाकर डारा ॥ ८ ॥
पर किमि कारण नाव तुम्हारी। रुक रुक जाती राह मँझारी ॥ ९ ॥
अब दाता काहे मुख मोड़ा। अधर धार में क्यों मोहि छोड़ा ॥१०॥
चरण शीस धर करूं पुकारा। हे केवट समरत्थ अपारा ॥११॥
जल्दी करो देर मत धारो। भव सागर के पार उतारो ॥१२॥
मुझे नाव में काल देखकर। कुढ़ कुढ़ त्रास दिखावै अतिकर ॥१३॥
मन जो काल अंश सूरत सँग। पाँच दूत अरु सब माया अँग ॥१४॥
धर धर नाव से खेंचैं आकर। चहैं गिरावन फिर भव सागर ॥१५॥
तुम्हरी ओर दृष्टि टक लाऊं। तुम नहिँ सुनो कहाँ अब जाऊं॥१६॥

दीन दयाल है नाम तुम्हारा। दुखियों के समरत्थ सहारा ॥१७॥
फिर फिर विनय करूं कर जोरी। दाँतन तिनका दाब निहोरी॥१८॥
काल विघ्न सब दूर हटाओ। नाव हमारी पार लगाओ ॥१९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला। दर्शन देकर करो निहाला ॥२०॥

शब्द ११७.

मेरे सतगुरु मेरे स्वामी, मेरे माता पिता दाता।
मेरे रक्षक हितैषी तुमही हो, मैं तुम ही को ध्याता ॥ १ ॥
लगाकर चरन में अपने, गये क्या भूल मुझ को अब।
रात और दिन तुम्हें सेऊं, तुम्हारे ही तो गुन गाता ॥ २ ॥
अधम हूं नीच हूं निरबल, सरापा भरा औगुन से।
कुटिल कामी हूं क्रोधी हूं, छली कपटी हूं मद माता ॥ ३ ॥
दया का सिन्धु भारी है, कि सेवक अवगुणी भारी।
दोऊ में कौन है बढ़ कर, यह तो फ़रमाइये दाता ॥ ४ ॥
तुम्हारी बूंद इक इक में, भरी समरत्थता इतनी।
अगर तुम मौज फ़रमाते, पाप सब दम में धुल जाता ॥ ५ ॥
मुझे चरनों में जब पहले, दया से पकड़ कर खींचा।
किया ताज़ा जो बिसरा था, पिता और पुत्र का नाता॥ ६ ॥
लगा कर नेह अब प्यारे, मुझे क्या छोड़ बैठे हो।
पुकारूं रात दिन तुमको, रहूं नित चरन में राता ॥ ७ ॥
दीन अरु हीन आधीन हूं, निपट बल हीन हूं स्वामी।
तुम्हारी दया बिन समरथ, करम और काल भरमाता ॥ ८ ॥
बुरी हालत है अब मेरी, इधर का ना उधर का हूं।
करूं क्या हाय अब दाता, लगा कर प्रीति पछताता ॥ ९ ॥

दया के सिन्धु में इतनी, निठुरता कहाँ से आई।
मेहर की दृष्टि में कुछ क्या तुम्हारी गाँठ का जाता ॥१०॥
दयालू 'धारा सिन्धु प्रताप', अब क्यों छिप के बैठे हो।
तुम्हारे दरश बिन दाता, मुझे अब कुछ नहीं भाता ॥११॥

शब्द ११८.

विनय सुन लीजिये स्वामी महाराज ॥ टेक ॥
बिनती करनी मैं नहिँ जानूं। जीभ चलाइ सरै कहा काज ॥ १ ॥
जब लग हिरदा उमड़ै नाहीं। अन्तर से निकसै न अवाज़ ॥ २ ॥
सच्ची बिनती निज हिरदय से। करने का देउ आपहि दाज ॥ ३ ॥
जस तुम चाहो सोइ हमसे होइ। घट घट तुमहीं रहे बिराज॥ ४ ॥
मम अवगुण मत देखो दाता। नहिँ मम होइ है बहुत अकाज॥ ५ ॥
आप तो अपनी ओर निहारो। रचना के महाराज धिराज ॥ ६ ॥
हम किंकर बिनवैं तुम चरनन। दासन की अब राखो लाज ॥ ७ ॥
उमर घटत है मौत तकत है। काल करो सो करो प्रभु आज॥ ८ ॥
किन के काज दया धर राखी। तव दासन का यही समाज ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सुआमी। सब स्वामिन के तुम सिरताज॥१०॥

शब्द ११९.

बे कल रहूं घबरात रैन दिन रहूं पुकारत।
कोई न पूछै बात विनय सब जात अकारथ ॥ १ ॥
करूं पाठ सतसंग आरती नित्त उतारत।
भजन भी जो कुछ बनत ताहि में तन मन गारत ॥ २ ॥
जो कुछ बनत उपाय नित्त में करि करि हारत।
निज निर्बलता देख दया की बाट निहारत ॥ ३ ॥

सन्त वेद और शास्त्र आदि से यही पुकारत ।
जीव न कुछ करि सकत गुरू सब काज सुधारत ॥ ४॥
ऐसी स्थिति माहिँ रहूं मैं यही बिचारत ।
गुरु तो बड़े दयाल हिये मम क्यों न पधारत ॥ ५ ॥
गुप्त देख गुरु देव काल नित करै शरारत ।
काल कलायें बसैं घट्ट मम तिनहिँ हुँकारत ॥ ६ ॥
सांकिन डाकिन जोगिन माया की किलकारत ।
गुरु तुम सर्वसमर्थ इन्हें तुम क्यों नहिँ टारत ॥ ७ ॥
विघ्नरहित हो ध्यान भजन धुन पाठ और आरत ।
वैरी दूर हटाव परिश्रम होय सुकारथ ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम नित रहूं उचारत ।
तुमहीं मोर अधार तुमहिँ पर तन मन वारत ॥ ९ ॥

शब्द १२०.

करूं मैं विनती गुरु दरबार । दया से लीजै मोहि उबार ॥ १ ॥
बिछुड़ गई जब से चरनन से । लगे बहु धक्के कर्मन से ॥ २ ॥
असंखन जनमन में भटकी । भ्रमत रही कर्मन में लटकी ॥ ३ ॥
नर्क में भोगे दुख अत्यन्त । योनि चौरासी लख पर्यन्त ॥ ४ ॥
लगाये चक्कर चारों खान । चैन में रही कहीं नहिँ जान ॥ ५ ॥
योनि पशु पच्छी कीट पतंग । भरमती रही सदा बे ढंग ॥ ६ ॥
भई अस्थावर अज्ञानी । कभी जंगम में अल्पज्ञानी ॥ ७ ॥
दुखों पर दुःख मार पर मार । सही सब भाँति रही लाचार ॥ ८ ॥
बहुत विधि रो रो करी पुकार । कहीं नहिँ दिखा बचावनहार ॥ ९ ॥
बार कई नरतन में आई । काल ने यहाँ भी भरमाई ॥१०॥

भूत और प्रेत भई कई बार । वहाँ भी भोगे दुःख अपार ॥११॥
सदा रही परेशान हैरान । कहाँ लग कहुँ निज दुःख बखान॥१२॥
शान्ति नहिँ एक पलक पाई । दया की झलक नहीं आई ॥१३॥
सराहूं नरतन यह अपना । मिले अब आय गुरू सजना ॥१४॥
दुखों पिछले की ओर निहार । विनय कर डर डर बारम्बार ॥१५॥
जोर कर शीस धरूं भुइँ माँय । पड़ूँ साष्टांग तुम्हारे पाँय ॥१६॥
छोड़ियो दाता अब मत बांहि । उलट नहिँ गिरूँ चौरासी मांहि॥१७॥
जकड़ कर पकड़ो हाथ दयाल । रखौ मम सूरत सुषमन नाल॥१८॥
मेरे तुम संग रहो हर बार । काल मम घात लगाये ठाड़ ॥१९॥
पिरण जो आये हो तुम धार । करो वह पूरा दीन दयार ॥२०॥
सतगुरू 'धारा सिन्धु प्रताप' । दिखाओ दर्श हरो त्रय ताप ॥२१॥

शब्द १२१.

निज रूप की हे स्वामी, कुछ तो झलक दिखाओ ।
मुरझाये दिल में आकर, नई नई उमँग जगाओ ॥ १ ॥
जो यहाँ सरूप धारा, वह तो लगै है प्यारा ।
जिस रूप में वह बदला, सो भी मुझे बताओ ॥ २ ॥
यह रूप तो था ज़रिया, जिस अस्ल दायमी[1] का ।
उस दायमी असल का, दरशन ज़रा कराओ ॥ ३ ॥
महिमा सुनी असल की, जब से तुम्हारे मुख से ।
तब से लगी है दिल में, दिल की लगी बुझाओ ॥ ४ ॥
बेचैनी बेक़रारी, निज रूप की तुम्हारे ।
दरदे जिगर उठाती, इस दर्द को मिटाओ ॥ ५ ॥

१. आदि रूप सदा रहने वाला.

भोगों से दिल उचाटा, दुनिया से नाता काटा।
है प्रेम का भी घाटा, दिल कहीं तो जमाओ ॥ ६ ॥
निज रूप की झलक बिन, मुश्किल है प्रेम सच्चा।
थोड़ी झलक दिखाकर, कुछ प्रेम तो बढ़ाओ ॥ ७ ॥
जो भक्ति पौद तुमने, यहँ आन कर लगाई।
वह सूखने न पावै. प्रेम अम्बु से सिंचाओ ॥ ८ ॥
'परताप धारा सिन्धू', समरत्थ दया सागर।
धारा बड़ी दया की, अब सिन्धु से बहाओ ॥ ९ ॥

शब्द १२२.

काल अँजनिया में सुरत सजनिया। फँस फँस भई बेहाल रे ॥ १ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' से लाया। माँग के काल कराल रे ॥ २ ॥
परदे पर परदे चढ़वाकर। फाँसा अपने जाल रे ॥ ३ ॥
माया ने भव में भरमाई। मोह का फंदा डाल रे ॥ ४ ॥
सुरतें सारी बेबस भरमीं। भोगन के जंजाल रे ॥ ५ ॥
तमोगुणी चक्कर में भूलीं। अपना रूप विशाल रे ॥ ६ ॥
भूलीं परमपिता निज बन्धू। अरु निज घर खुशहाल रे ॥ ७ ॥
अब कृपया गुरु आन सुनाया। सारा असली हाल रे ॥ ८ ॥
आरत हो बिनवत अब गुरु से। सुनियो दीन दयाल रे ॥ ९ ॥
राह बताओ फिर कस पावैं। सत्त नाम निज माल रे ॥१०॥
कैसे यह जम फन्दा टूटे। कैसे होंय निहाल रे ॥११॥
तब गुरु हाथ धरा सिर उनके। सब विधि करी सम्हाल रे ॥१२॥
दिया दिलासा राह लखाई। जो सुषमन की नाल रे ॥१३॥
धारा सिन्धु प्रताप' बताई। सुरत शब्द की चाल रे ॥१४॥

दया करी निज संग लगाया। धन धन गुरू कृपाल रे ॥१५॥

शब्द १२३.

शीस नवाये दोऊ कर बाँधे। पग इक उठाये खड़ीं सुरतियाँ॥
दाँतन तिनका गले रसरियाँ। गऊ बनीं सब विनय करतियाँ ॥१॥
हे दीन बन्धू, हे प्राण अधारे। हे करुणा सिन्धू हे प्रीतम प्यारे॥
हे नाथ दाता नैनों के तारे। सुन लीजिये दुख भरी दो दो बतियाँ॥२॥
किया हमें निज धाम के बाहर। घेर लिया सबको काल नाहर॥
लगाया पीछे कुमन लहागर[1]। कहें कहा जो सहें विपतियाँ ॥३॥
काल निरंजन ने ऐसी ठानी। आप हुआ राजा अरु माया रानी॥
ब्रह्मा विष्णु महेश उत्पानी। प्रजा किये सब जीव पतितियाँ ॥४॥
धन संतान मोह में फाँसे। इन्द्री भोगन माँहि गिरासे॥
करैं जाय फ़र्याद हम कासे। दुःख रहत जो जीव सहतियाँ ॥५॥
आख़िर काग जहाज़ देखकर। उठी दया की धार बेग कर॥
आये भव निज नाम टेक कर। 'धारा सिन्धु प्रताप' कहतियाँ॥६॥

शब्द १२४.

मैं अति घबराय करूं नित विनय घनेरी।
सुध लीजे प्रीतम बेगि शरण में तेरी ॥ १ ॥
तुम दीनानाथ दयाल दीन हितकारी।
अब काहे मेरी बेर लगाई देरी ॥ २ ॥
तुम मेरे सिन्धु अपार लहर मैं तेरी।
मैं फँसा हूं कीचड़ माँहि विनय सुन मेरी ॥ ३ ॥
तुम अन्तर्यामी पुरुष मैं दीन दुखारी।
तुम जानत सब गत मोरि कहौं का टेरी ॥ ४ ॥

१. पीछा न छोड़ने वाला,

तुम दया सिन्धु दातार पुरुष अविनाशी।
तुम सब विधि समरथ अहो तुम्हैं का देरी ॥ ५ ॥
अब दुखिया मोको देख दया उमगाओ।
फिर समरथता से लेउ उबार सबेरी ॥ ६ ॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दास के स्वामी।
याचत है गोद पसार तुम्हारी चेरी ॥ ७ ॥

शब्द १२५.

पिया वह मोहनी सूरत हमें तुम कब दिखाओगे।
मिटाकर दुई का अन्तर एकता कब कराओगे ॥ १ ॥
बिरह की आग में प्यारे पिघलते रहते हैं निस दिन।
लगा के छाती से स्वामी तपन को कब बुझाओगे ॥ २ ॥
न लियाक़त अर्ज़ करने की न ताक़त भजन करने की।
दया के बल पै बैठे हैं आस मम कब पुराओगे ॥ ३ ॥
तड़पते रहते हैं प्यारे ज़रा तुम सुध नहीं लेते।
वह अपने प्रेम के बैना हमें तुम कब सुनाओगे ॥ ४ ॥
हमें सूझै न अब कोई शरण में हैं पड़े तुम्हरे।
लाज अब तुम्हीं को मेरी प्रण अपना कब निबाहोगे ॥ ५ ॥
गुरू 'परताप धारा सिन्धु' क्यों अब मौन धारे हो।
धार में खींच के सिन्धू से, मेला कब कराओगे ॥ ६ ॥

शब्द १२६.

हे प्राण प्यारे सुरतिया दिखाय जाव।
सुरतिया, मोहनिया, मुरतिया दिखाय जाव ॥ १ ॥
बहुत दिनों से तड़पूं दरस को। दरस दिखाय मोहि अंग लगाय जाव॥२॥

मैं मरी जाउँ तुम बोलौ न चालौ।
प्रेम भरी दो बतियाँ सुनाय जाव ॥ ३ ॥
रैन दिवस मैं तड़पूं तुम बिन ।
प्रेम की नज़रिया से तपन बुझाय जाव ॥ ४ ॥
हा हा कर मैं बिनवौं बहु विधि ।
चरन की शीतल ओट बिठाय जाव ॥ ५ ॥
अगम प्रेम की धार बढ़ा कर ।
सेवक के निज अंग समाय जाव ॥ ६ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयानिधि ।
अंग समाय मोहि संग लिवाय जाव ॥ ७ ॥

शब्द १२७.

कर जोरे दयानिधि दासी खड़ी ॥ टेक ॥
माँगत गोद पसार दरश निज । चरनों में हठ करत अड़ी ॥ १ ॥
तुम से बिछुड़ कर बहु दुख पाये । करी काल दुर्दशा बड़ी ॥ २ ॥
चौरासी के चक्कर काटे । नरकन में बहु भाँति सड़ी ॥ ३ ॥
पाँच दूत अरु मन माया ने । दई त्रास मोहि कड़ी कड़ी ॥ ४ ॥
इस मृत लोक दुःख सागर से । तबियत मेरी बहुत हड़ी ॥ ५ ॥
अब तो व्याकुल अति घबड़ाऊँ । भई भारी मोहि घड़ी घड़ी ॥ ६ ॥
द्याल सुरत अब घट उलटाओ । शब्दन की जहँ लगी झड़ी ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला । दासी तुम्हरे शरण पड़ी ॥ ८ ॥

शब्द १२८.

गुरू मैं औगुण हारा जी । तुम्हीं मोहि देहु सहारा जी ॥ १ ॥
बनै नहिँ मुझसे कुछ करतूत । तुम्हारा ही हूं पूत कपूत ॥ २ ॥

तुम्हारे दर्शन बिन नहिँ चैन । तड़पता रहता हूं दिन रैन ॥ ३ ॥
बहुत तारे तुम दासन दास । मैं ही इक रहा उदास निरास॥ ४ ॥
आप तो करुणा सिन्धु अपार । मैं हूं अति दीन दुखो लाचार॥ ५ ॥
आप हैं सर्व गुणों की खान । मैं हूं पापी निर्बल अनजान ॥ ६ ॥
तुम्हारी शरण में आया हूं । तुम्हारे चरन में धाया हूं ॥ ७ ॥
तुम्हारे हाथ हमारी लाज । सुधारो तुम्हीं हमारा काज ॥ ८ ॥
तुम हो सब विधि समरत्थ दयार । तुम्हारे चरण मोर आधार ॥९॥
शब्द परताप हितैषी नाथ । जकड़ कर पकड़ो अब मम हाथ॥१०॥

शब्द १२९.

लाज रख लीजिये गुरु दातार ॥ टेक ॥
औघट घाटी आन फँसे हम, दाता लेहु निकार ॥ १ ॥
काल अरु माया सिंह सिंहनी, घात लगाये ठार ॥ २ ॥
एकहु अंग उपाय न सूझै, तुम्हीं बचावन हार ॥ ३ ॥
भव सागर अति अगम अपारा, नाव पड़ी मँझ धार॥ ४ ॥
तुम बिन और कौन प्रभु हमरो, खेय उतारो पार ॥ ५ ॥
गोद पसारे तुम दर ठाड़ो, माँगत बारम्बार ॥ ६ ॥
दरश दान बिन या कंटक से, होय नहीं निरबार॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाकर, लीजै बेगि उबार ॥ ८ ॥

शब्द १३०.

दर्श की निस दिन करूं पुकार, वारि गुरु पर तन मन सारा ॥१॥
बहुत काल मोहि बिनवत बीते, सब विधि लाचारा ॥ २ ॥
दास ओर प्रभु नेंक न हेरो, टेर टेर हारा ॥ ३ ॥
जतन अनेक करे दर्शन को, निज बल अनुसारा ॥ ४ ॥

अब तो सतगुरु दया विचारो, कर दो निरबारा ॥ ५ ॥
नाव झाँझरी पड़ी हमारी, बीच सिन्धु धारा ॥ ६ ॥
ताहि खेय के हे खेवटिया, बेगि करो पारा ॥ ७ ॥
या जग में सब अन्धकार है, तुम से उजियारा ॥ ८ ॥
दर्श आपना बेगि दिखाओ, सब से करि न्यारा ॥ ९ ॥
कर जोड़त हूं पाँव परत हूं, पुनि हाहा कारा ॥१०॥
दास जान मोहि दरस दिखाओ, जाऊं बलिहारा ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' रटूं मैं, नित बारम्बारा ॥१२॥
सकल विश्व के करतारों के, तुम हीं करतारा ॥१३॥

शब्द १३१.

गुरु दीना नाथ दयाला। दासन को लेउ सम्हाला ॥ १ ॥
तुम को तज मैं कहँ जाऊं। तुम हीं को नित्य धियाऊं ॥ २ ॥
है अन्धकार मम घट में। सूझत है नहिँ कुछ बट में ॥ ३ ॥
हे शब्दस्वरूपी स्वामी। हे पूरण अन्तर्यामी ॥ ४ ॥
घट शब्द करहु उजियारी। सुत खींच लगाओ तारी ॥ ५ ॥
तुम बिन अब नहिँ कोई मेरा। तुम्हरे चेरों का चेरा ॥ ६ ॥
निज धाम छोड़ तुम आये। मम कारण दुःख उठाये ॥ ७ ॥
अब क्यों मुझको तरसाते। भटके को क्यों भटकाते ॥ ८ ॥
करो जल्दी मोर उबारा। मैं तक रहा मौत दुआरा ॥ ९ ॥
मोहि चरनन नाथ लगाओ। फिर चल निज धाम समाओ॥१०॥
वहँ दोनों सेवक स्वामी। करैं अचरज केलि अकामी ॥११॥
जो कसर भाग मम होई। करि दया मिटाओ सोई ॥१२॥
तुम सर्व समर्थ सुजाना। तुम्हें नहिँ कुछ कहिँ से लाना ॥१३॥

तुम पूरन धनी अपारा। तुम्हें करत लगै नहिँ बारा ॥१४॥
जो नियम बद्ध तुम आओ। सब समरथ क्यों कहलाओ ॥१५॥
जब नियम बद्धता ऐसी। फिर सब समरथता कैसी ॥१६॥
दोउ में अन्तर अस भारी। जस धरनि अकास मँझारी ॥१७॥
कैसे फिर करुणा सागर। जो पिघलो नहीं दयाकर ॥१८॥
अब लखो दीन गति मेरी। सुन लेउ पुकार सवेरी ॥१९॥
हे 'धारा सिन्धु प्रतापी'। बखशो निज सेवक पापी ॥२०॥

शब्द १३२.

हे पूरन पुरुषोत्तम प्रीतम। पतितन पावन परम पुनीतम ॥ १ ॥
सर्वोपरि सत रूप सुआमी। सर्व सिद्ध सर्वज्ञ सुधामी ॥ २ ॥
सत्य सिन्धु सत शब्द स्वरूपा। सब समरथ सब सृष्टि सुभूपा॥ ३ ॥
सर्व श्रेष्ठ सूरज सतनामी। सर्व सूक्ष्म सर्वान्तर्यामी ॥ ४ ॥
सर्व वियापक सर्व प्रकाशक। सर्व स्वतंत्र सर्व तम नाशक ॥ ५ ॥
सीमा रहित दया के सागर। गुप्त रूप सब भाँति उजागर ॥ ६ ॥
संतन मुख तुम आपहि भाखा। पूरन प्रेम रूप निज राखा ॥ ७ ॥
प्रेम प्रेम प्रेम ही समाई। दूसर बात न तुमहिँ सुहाई ॥ ८ ॥
तुम से संत लाय संदेशा। प्रेम हि प्रेम करैं उपदेशा ॥ ९ ॥
"जहाँ प्रेम तहँ नेम न होई। तथा बुद्धि व्योहार न कोई ॥१०॥
प्रेम मगन जब मन तुम होई। तब तिथि वार गिनो मत कोई" ॥११॥
अस उपदेश जीव को कीन्हा। सन्त उपदेश मान जिव लीन्हा॥१२॥
छोड़े तीरथ व्रत कुल धर्मा। दिन तिथि ग्रह माने सब भर्मा ॥१३॥
जीवन यह विश्वास दृढ़ाया। जिनमें अल्प प्रेम की छाया ॥१४॥
आप जो पूरन प्रेम स्वरूपा। जीव काज भये ज्योतिष रूपा ॥१५॥

तुम मम परारब्ध मुख कीन्हा । जो तिथि वार गिरह आधीना॥१६॥
प्रेम बुन्द को जो षट कर्मा । प्रेम सिन्धु को सोई सुधर्मा ॥१७॥
ऐसा न्याय बखानैं सन्ता । सुन लो मम अपील गुरु कन्ता ॥१८॥
ना हम सन्तन को अब जानैं । ना हम मालिक को पहिचानैं॥१९॥
हमने लीन्ही तुम्हरी शरणा । हमने पकड़े तुम्हरे चरणा ॥२०॥
तुमहीं से फ़रियाद हमारी । तुमहिँ नाथ अब करौ सम्हारी ॥२१॥
तुम्हीं करौ इन्साफ़ हमारा । तुम्हीं दया का देउ सहारा ॥२२॥
मालिक को तुमहीं समझाओ । दिन तिथि प्रेम का न्याय चुकाओ॥२३॥
जो जानौ सो करौ उपाओ । जस तस हमरा काज बनाओ ॥२४॥
जो तुम न्याय करौ नहिँ दाता । तौ मरि हौं ऐसेहि चिल्लाता ॥२५॥
न्याय कहौ चाहे कहौ भीक । जो तुम मानो सोई ठीक ॥२६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाल । कुल मालिक की नीति सम्हाल ॥२७॥

शब्द १३३.

गुरु दीनानाथ दयाल तुम्हारे पद शीस धरूं ॥ टेक ॥
यह संसार महा दुखदाई । अब मेरी करौ सम्हाल ॥तुम्हारे पद०॥१॥
काल अरु माया घेरा डाला । यासे लेउ निकाल ॥तुम्हारे पद०॥२॥
कोई जतन से मोहि बचाओ । करौ प्रभु प्रतिपाल ॥तुम्हारे पद०॥३॥
तुम्हरी एक दृष्टि से स्वामी । कागा होत मराल ॥ तुम्हारे पद०॥४॥
क्या क्या निज दुख बरन सुनाऊं । तुम जानत सब हाल ॥
तुम्हारे पद० ॥५॥
शरणागत तुम द्वार शीस बल । ठाड़ो करै सवाल॥तुम्हारे पद०॥६॥
हे दाता मैं कुछ नहिँ माँगूं । माँगूं दरश दयाल ॥तुम्हारे पद०॥७॥
दाता किस विधि तुम्हैं मनाऊँ । यहि रहै नित्त मलाल॥तुम्हारे पद०॥८

'धारा सिन्धु प्रताप' दास को। अब तो करो निहाल॥तुम्हारे पद०॥९॥

शब्द १३४.

हे सतगुरु सम्पूरन रूपा। अगम अगाध अपार अरूपा ॥ १ ॥
सकल विश्व के तुम संचालक। सब रचना के तुम प्रतिपालक॥ २ ॥
वितल सुतल तल अतल तलातल। मृत्यु लोक पाताल रसातल॥३॥
भुवर स्वर्ग त्रय देव के लोका। ब्रह्म लोक वैकुंठ अशोका ॥ ४ ॥
अंड पिंड पूरन ब्रह्मंडा। द्याल देश पर्यन्त अखंडा ॥ ५ ॥
रूप तुम्हार अनूप अनन्ता। निरअन्तर सब ठौर बसन्ता ॥ ६ ॥
सब जीवन के तुमहिँ अधारा। तुमहीं सब को देउ सहारा ॥ ७ ॥
नर सुर असुर अरु सकल चरन्दे[1]। निश्चर बनचर सकल दरन्दे[2] ॥८॥
पक्षी छोटे बड़े परन्दे[3]। महा नीच कीड़े अति गन्दे ॥ ९ ॥
सबको तुम पहुँचाउ अहारा। बिन माँगे तुम देउ सहारा ॥१०॥
जल गरमी वायू सबहिन को। जो वे चहैं देउ सो तिनको ॥११॥
इक कीड़ा पत्थर के मांहीं। एक अग्नि के माँहि रहाहीं ॥१२॥
तिन्हें अहार तहीं पहुँचाओ। काहू की नहिँ सुध बिसराओ॥१३॥
अजगर को चलना नहिँ फिरना। तिनको आय सतावैं हिरना ॥१४॥
भक्षण तिन्हें तुरत कर जावैं। यों अहार अपना वे पावैं ॥१५॥
तुम हो सबकी आस पुरन्ता। सकल मनोरथ सिद्ध करन्ता॥१६॥
हम ही भये बड़े अस पापी। अद्वितीय सब सृष्टि में श्रापी ॥१७॥
जो तुम नहिँ सुनो विनय हमारी। रो चिल्ला पुकार कर हारी ॥१८॥
अब क्या करूं कहाँ अब जाऊँ। चुप्प रहूं फिर फिर उठ धाऊँ॥१९॥
चारों ओर धुंध अँधियारा। सूझै भव में वार न पारा ॥२०॥
हो निरास मैं इत उत झांकूं। चारों ओर दृष्टि भर ताकूं ॥२१॥

१. चरन वाले, २. फाड़ खाने वाले, ३. पक्षी।

दीखै नहिँ कहिँ मोहि सहारा। उलट गहूं फिर चरण तुम्हारा॥२२॥
पुनि पुनि सब विधि करूं निहोरा। करौ दया अब बन्दी छोरा॥२३॥
पुनि पुनि सब विधि तुमहिँ मनाऊं। दरश सिवा मैं कुछ नहिँ चाहूं॥२४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' पराक्रम। बिन देखे नहिँ मिटै मोर भ्रम॥२५॥

शब्द १३५.

विनती एक गुरू चरनन में। दोउ कर जोर करूं वरनन में॥ १॥
एक आपका नियम ध्यान में। आया सो अब करूं ब्यान में॥ २॥
किसी किसी जिव हिरदे माहीं। खास चाह तुम धरी गुसाईं॥ ३॥
जिस हिय में जस चाह समाई। योग्य पदारथ तुम पहुँचाई॥ ४॥
प्रीति चन्द्र की हिय चकोर में। आप बसाई ऐसे ज़ोर में॥ ५॥
चन्द्र बिना वह चैन न पावै। चन्द्र के धोखे अग्नी खावै॥ ६॥
रात उसे तुम चन्द्र दिखाओ। बेदन उसकी दूर कराओ॥ ७॥
तुम तरसाओ मोर मेघ बिन। वाहू के कई बार फिरैं दिन॥ ८॥
बिरह प्रेम दोनों करवाओ। दोनों का तुम स्वाद चखाओ॥ ९॥
स्वाँति बिना पपिहा तरसाओ। वाके मुख फिर स्वाँति चुआओ॥१०॥
मछ्ली को किया नीर अधारा। फिर मछ्ली को नीर में डारा॥११॥
भँवरहिँ प्रीती फूल कँवल की। कँवलहिँ दीन्ह प्रीति तुम जल की॥१२॥
भँवरहिँ कमल कमल जल दीन्हा। अस उद्धार दोउ का कीन्हा॥१३॥
कमल फूल कर भान मिताई। भान दिखाकर फूल खिलाई॥१४॥
चकई चकवा गति अब देखो। घनी प्रीति की हालत पेखो॥१५॥
बिछुड़ैं दोनों होय रात जब। मिलैं मग्न हुइ हो प्रभात जब॥१६॥
सर्प को प्रीति मणी की आई। सो वाही के कंठ धराई॥१७॥
सीपी को है स्वांति अधारा। सो वाको तुम देउ अहारा॥१८॥

सारस की कीन्हीं तुम जोड़ी । कभी न उनहूं की तुम तोड़ी ॥१९॥
जिनको जौन वस्तु है प्यारी । सो उनको पहुँचाई सारी ॥२०॥
तुमने रच राखी अस रीती । पूरो करी सबन की प्रीती ॥२१॥
हमी अकेले रहे अभागी । जिनकी प्रीति आप से लागी ॥२२॥
रैन दिवस रहैं तुम्हें परसते । तऊ दर्श बिन रहे तरसते ॥२३॥
कुछ तो रहम करो अब दाता । बार बार कर जोर मनाता ॥२४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सवेरा । निज दासन का करो निवेरा ॥२५॥

शब्द १३६.

बिनती और सुनो प्रभु मेरी । सतगुरु दयाल मैं शरणा तेरी ॥ १ ॥
दया पुञ्ज तुम सत्त प्रकाशी । निर्विकार चैतन अविनाशी ॥ २ ॥
मैं अति निरबुध दीर्घ विकारी । खान अवगुन की निज घट धारी॥३॥
पर हे नाथ तुम दया विचारी । जो मेरी सुध आन सम्हारी ॥ ४ ॥
लेकिन ढील देख कर दाता । मन अनेक सन्देह उठाता ॥ ५ ॥
इक कारण मम चित्त समाना । मैं अवगुण तुम गुण की खाना॥ ६ ॥
किस विधि दोउ इक संग मिलाई । इक नीचे इक ऊंच रहाई ॥ ७ ॥
पर दाता इक बात विचारो । चहो तो झगड़ा छिन में टारो॥ ८ ॥
जो भुजंग मलियागिर चिपटैं । लेंइ सुगन्धन की बहु लपटैं ॥ ९ ॥
विष उनका सब जाय नसाई । देह सुगन्ध रूप हुइ जाई ॥१०॥
साँभर झील मध्य जो कोई । कुछ डाले साँभर सो होई ॥११॥
जो भुजंग रहते जल माहीं । चाहे जस ज़हरीले आहीं ॥१२॥
जल में ऐसी शक्ति रहाई । साँप ज़हर सब जाय नसाई ॥१३॥
सूरज किरन शक्ति अस धारै । सब वस्तुन की दुरता जारै ॥१४॥
रोग दूर हों सूर कला से । शुद्ध करै वह बहुत बला से ॥१५॥

चन्द्र किरण में अमी रहाई । चहै जो वा से लाभ उठाई ॥१६॥
वस्तु जो चन्द्र के सन्मुख आई । तामें निज रस देइ समाई ॥१७॥
जल अग्नी वायू अस पावन । शुद्ध करैं सब वस्तु अपावन ॥१८॥
भृंग कीट को शब्द सुनावै । वाहि आपने रूप करावै ॥१९॥
अल्प शक्ति यह सबहि पदारथ । देखो इनका यह परस्वारथ॥२०॥
आप तो सर्व शक्ति के सोता । जो सब मल इक छिन में धोता॥२१॥
शायद हम हैं सेवक झूठे । नहीं तो तुम रहते नहिँ रूठे ॥२२॥
तुम्हीं निकालो झूठ हमारी । तुम समरथ सब करौ सम्हारी ॥२३॥
हम तो सब विधि हैं नाकारा । तुम समरथ का लीन्ह सहारा॥२४॥
यत्न शक्तिशाली जो जानौ । करो बेगि यह विनती मानौ॥२५॥
हम सब हैं तुम चरण अधारा । दया मेहर से लेउ सुधारा ॥२६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला । या आफ़त से लेउ निकाला ॥२७॥

शब्द १३७.

हे शब्द प्रतापी शब्द प्रकाशी स्वामी ।
तुम शब्द के निज भंडार अथाह अनामी ॥ १ ॥
तुम शब्द रूप आकर्षण गति चुम्बक सम ।
मैं बुन्द लोह सम रली संग सत रज तम ॥ २ ॥
और पाँच दूत तत पाँच प्रकृति पचीसा ।
इन सब जुड़ मिल के पकड़ लीन्ह मम शीसा ॥ ३ ॥
चुम्बक और लोह के बीच में परदा डाला ।
मोहि तुम से लेकर फाँस दिया अस काला ॥ ४ ॥
अब खिंचै कौन विधि बुन्द लोह चुम्बक से ।
जब तक नहिँ स्वामी प्रीत करैं सेवक से ॥ ५ ॥

सेवक की तो लघु प्रीति है वित अनुसारा ।
बिन दीर्घ प्रीति स्वामी के सब बेकारा ॥ ६ ॥
या से सेवक की स्वामी से हा हा कर ।
विनती है बारम्बार सुनो करुणा कर ॥ ७ ॥
अपनी शक्ती से सब आवर्ण उतारौ ।
फिर चुम्बक सन्मुख कर आकर्षण धारौ ॥ ८ ॥
तब बुँद निर्मल हो खिंचै सिन्धु की ओरा ।
और उमँग उमँग सुत गहै शब्द घन घोरा ॥ ९ ॥
जब तक दाता तुम दया करौ नहिँ ऐसी ।
तब तक यह पुत्र तुम्हार रहै परदेसी ॥१०॥
अब करौ अनुग्रह बेगि अभी हूं जीता ।
नहिँ आसहि आस में जात है जीवन बीता ॥११॥
फिर मिरतक मोको देख पिता पछतै हो ।
जब जान निकल गई रहम कौन पै खैहो ॥१२॥
फिर हम चरनन से दूर पड़े रोवेंगे ।
पर आप पुत्र बिन सुक्ख नींद सोवेंगे ॥१३॥
अब ही है समय तुम्हार रहम का दाता ।
नहिँ अब अब करते हाथ से औसर जाता ॥१४॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' का महिमा भारी ।
महिमा क़ायम रख लो मोहि बेगि उबारी ॥१५॥

शब्द १३८.

हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । भिक्षुक एक खड़ा तुम द्वार ॥ १ ॥
बहुत काल से करूं पुकार । हूं अति दीन बड़ा लाचार ॥ २ ॥

तुम दाता समरत्थ अपार । मैं हूं अधम नीच नाकार ॥ ३ ॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । मैं फँस रहा काल के जार ॥ ४ ॥
बहुत उठाया कर्मन भार । सही बहुत जमपुर की मार ॥ ५ ॥
सुनो दयाल अब विनय हमार । टेरत तुम्हें .गुलाम तुम्हार ॥ ६ ॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । पूरन स्वामी परम उदार ॥ ७ ॥
तुम अटूट पूरन भंडार । तुमको देत लगै नहिँ बार ॥ ८ ॥
सब रचना के तुम दातार । मैं कंगाल खड़ा तुम द्वार ॥ ९ ॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । मैं दुख सहूं पड़ा भव वार ॥१०॥
तुम दाता मम करो सम्हार । कृपया लीजै बेगि उबार ॥११॥
गहे आन मैं चरन तुम्हार । तुमहिँ करो रक्षक निरवार ॥१२॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । दया प्रेम के सिन्धु अपार ॥१३॥
त्रय देव माया और ओंकार । सोहं पुरुष व ररंकार ॥१४॥
तुम्हरी गति को गावन हार । कोटि तैंतीस रहे सब हार ॥१५॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । सर्ब विश्व के तुम आधार ॥१६॥
महा नीच मैं भरा विकार । महा दीन सब विधि नाकार ॥१७॥
तुम्हरी चौखट पर सिर धार । घायल दुखी पड़ा तुम द्वार ॥१८॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । मुझ मँगता पर दया विचार ॥१९॥
चारों ओर है तम अँधियार । तुम्हरेहि भान चरण उजियार॥२०॥
सो मैं पकड़े आन सम्हार । अन्ध कूप से लेउ निकार ॥२१॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । तुम्हरी गति अति अगम अपार॥२२॥
मैं अति कपटी कुटिल लबार । मोह अरु काम क्रोध अहंकार॥२३॥
ये सब मम सिर रहैं सवार । तुम बिन कोइ सकै नहिँ टार ॥२४॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार । तुमहिँ सको कर अस उपकार॥२५॥

और सब को खाये इन झार। महा काल के ये हथियार ॥२६॥
कोइ इन सन्मुख रहे न ठार। सुर ऋषि मुनि सब मानी हार॥२७॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार। राखो अब तुम लाज हमार॥२८॥
जितने आहिँ .ग़ुलाम तुम्हार। सब की चरण धूरि शिर धार॥२९॥
महा दीन हो करूं पुकार। दया दृष्टि से नेंक निहार॥३०॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' दयार। दासन दास को बेगि उबार॥३१॥
धन धन धन धन बारम्बार। करत रहूं धर प्रेम पियार॥३२॥

शब्द १३९.

दोहावली.

मेरे मन इक बात का, आया आज विचार।
सतगुरु आगे अर्ज़ कर, करवाऊं निरधार॥ १॥
या दुनिया में जीव बहु, महा दुखी चिल्लाहिँ।
कोइ कोइ जानत हैं तिन्हें सब कोइ जानत नाहिँ॥ २॥
जो जितने की जान में, दुखी रहे अधिकाय।
वे सब वाके दुःख को, सकैं न दूर कराय॥ ३॥
जानन हारे नरन में, दयावन्त जो आहिँ।
चाहत करना दूर दुख, पर समरथता नाहिँ॥ ४॥
मन ही मन अकुलात हैं, कैसे करैं सहाय।
धन बल बिन लाचार हैं, बेबस जी घबराय॥ ५॥
उनमें जो समरत्थ हैं, धन पौरुष से पूर।
दया तनक नहिँ हृदय में, तासे वे मजबूर॥ ६॥
बिरले कोई जीव अस, दोउ बातन में सूर।
धन और बल सब भाँति है, दया हृदय भरपूर॥ ७॥

मिलै ख़बर उन नरन जब, अमुक जीव दुख माहिँ ।
पहिले करैं सहायता, पीछे रोटी खाहिँ ॥८॥

सुनिये दीन दयाल अब, तात्पर्य की बात ।
दुखिया के दुख हरन को, चहिये तीन सिफ़ात[१] ॥९॥

एक ज़रूरत ज्ञान की, जासे दुख हो ज्ञात ।
दुयम दया बल तीसरा. जो दुख दूर करात ॥१०॥

यह तीनों जिन नरन में. एक संग मिल जाहिँ ।
दुखिया के सब दुःख को. फ़ौरन दूर कराहिँ ॥११॥

यह गति आतम बुन्द में, जाकी कौन बिसात ।
तुच्छ अंश में कहिँ कहीं, तीनों रहैं सिफ़ात ॥१२॥

तीनों पूरन रूप में, जब सिन्धू के माहिँ ।
क्या कारण महाराज फिर, हम दुख में चिल्लाहिँ ॥१३॥

दया और समरत्था, जो पूरन तुम माहिँ ।
क्या नहिँ अंतर्यामता, जो तुम जानत नाहिँ ॥१४॥

जो तुम जानत दुःख मम, और दया तुम माहिँ ।
तो क्या नहिँ समरत्थता, जो हम दुखी कराहिँ ॥१५॥

जो तुम जानत दुःख मम, अरु समरत्थ अपार ।
तो क्या पूरन सिन्धु में, नहीं दया की धार ॥१६॥

जो तुम दीनानाथ हो, तीनों में भरपूर ।
तो मम विनती प्रार्थना, क्यों नहिँ सुनो हुज़ूर ॥१७॥

बहुतहि अब घबराय के, चरनन करूं पुकार ।
छाती कूटूं सिर धुनूं, नैनन से जलधार ॥१८॥

१ गुण

नैनन जल स्याही करूँ, लिखूँ विनय यह नाथ।
काहू विधि से पिघलिये, कीजै मोहि सनाथ ॥१९॥
ब्याकुल अति घबरात हूं, नेत्र अरु हाथ उठाय।
आपहु यह दोउ अंग निज, मो तन देउ बढ़ाय ॥२०॥
दया दृष्टि से ताक कर, निज कर कँवल बढ़ाय।
दुख हरिये निज पुत्र को, अब निज कंठ लगाय ॥२१॥
'धारा सिन्धु प्रताप गुरु' पति अरु पिता हमार।
शिष, पत्नी और पुत्र मोहि, जान सुधारो कार[1] ॥२२॥

शब्द १४०.

हे प्रभो हे सतगुरू समरत्थ सर्व प्रकार हो।
सब रोगियों की रोगहरता दवा के दातार हो ॥ १ ॥
हैं तन से रोगी मन से रोगी रोग ने आतम ग्रसी।
तन मन के रोग विकार हैं बिरह नागिनी आतम डसी॥ २ ॥
पञ्च दूत विकार हैं दिन रैन मन पीड़ित करैं।
तन करै दुष्कर्म पर हम कर्म फल भोगैं भरैं ॥ ३ ॥
आतमा को दुख घना इन धूर्तों के संग से।
रहती वह निर्लेप जो करता न बनती हंग से ॥ ४ ॥
हंग अरु कर्म डंड से पीड़ित हुई चिल्ला रही।
गिड़ गिड़ा के आर्त हो सब भाँति विनय सुना रही ॥ ५ ॥
तुम तो पूरे वैद्य हो अब रोग सब मेरे हरो।
बिरह विकार अरु कर्म से सुत मन व तन निर्मल करो॥ ६ ॥
दया की बूटी सजीवन जो तुम्हारे पास है।
सो करो बख़शिश पिता यह पुत्र की अरदास[2] है ॥ ७ ॥

१ काम, २ विनती.

'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु तुम विश्व में सबसे बड़े ।
आस जग की जार हम अब चरण में तुम्हरे पड़े ॥ ८ ॥

शब्द १४१.

जगत गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' । आपका शिष मैं मम गुरु आप॥१॥
आपने प्रघट किया निज नाम । बताया नाम का असली धाम ॥२॥
जनाया मारग का सब भेद । मिटाया मन का भर्म अरु खेद ॥३॥
दिया उपदेश बँधाई आस । कहा नित करौ शब्द अभ्यास ॥४॥
लगाओ तन मन धर विश्वास । कटै यासे जल्दी जम फाँस ॥५॥
किया जब मैंने यह सब काम । दया बिन पाया कठिन तमाम॥६॥
विनय अब करता पुत्र तुम्हार । सुनो हे परम पिता दातार ॥७॥
आदि का नाता अब चित लाव । निबाहो पिता पुत्र का भाव॥८॥
जगत के पुत्र पिता की प्रीति । निबाहो जो चल आई रीति ॥९॥
करैं जग पितु सब भाँति सम्हाल । पुत्र के दुख में हों बेहाल ॥१०॥
तुम्हीं मम जननी हो किरपाल । आदि के तुम्हरेहि हैं हम लाल॥११॥
आप की .कुदरत की जो नीति । लखौ अब माता सुत की प्रीति॥१२॥
बाल जब जुदा मात से होय । भूख में बोलै नहिँ दे रोय ॥१३॥
मातु घर बैठी सुत से दूर । प्रीत का सुनिये हाल हुज़ूर ॥१४॥
मात पर अस परभाव परै । दूध आँचर से तुरत झरै ॥१५॥
आप जननी भये प्रथम हमार । गुरू अब बनि आये दातार ॥१६॥
मात अब आँचर देउ उघार । गिरै मुख मम अमृत की धार॥१७॥
निबाहो जो तुम बाँधी नीति । करो मत मेरे संग अनीति ॥१८॥
और अब दास का नाता लेव । लखौ अब सेवक स्वामी देव॥१९॥
शरण जब स्वामी की ले दास । स्वामी बेचैन जो दास उदास॥२०॥

सन्त मुख आपहु यह भाखी । नीति निज ऐसी करि राखी॥२१॥
"दास जो होय दुखी बेहाल । मोहि दुख आदि अन्त तिहुँ काल॥२२॥
प्रगट हो दास के दुख में हाल । दास को छिन में करूँ निहाल"॥२३॥
दास को रोवत भये बहु दिन । आपका कब आयेगा छिन ॥२४॥
जो मानो राजा रइयत नात । तो उनकी रीति सुनो अब तात॥२५॥
कहूं नहिँ काल राज की बात । स्वाभाविक होय न्याय जहँ पात॥२६॥
प्रजा हम द्याल की हैं महाराज । जो राखें निज रइयत की लाज॥२७॥
मनुष राजा की रीति यही । प्रजा का दुख नहिँ जात सही॥२८॥
कोई स्वारथवश करै अनीति । तो वासे पलटै नहिँ शुभ रीति ॥२९॥
आप तो द्याल सर्वसम्राट । आपकी न्याय दया की बाट ॥३०॥
जो चाहो मानो हमसे नात । दया आवश्यक सब में तात ॥३१॥
अर्ज़ कर इतने नात की बात । हार कर पीछे चरन परात ॥३२॥
दयानिधि 'धारा सिन्धु प्रताप' । बख़्शिये भूल चूक सब पाप॥३३॥

शब्द १४२.

यह दासी गुरू तुम्हार, तुम्हें गुहरावत है ॥ १ ॥
गुरु द्वारे पकड़ किवाड़, खड़ी खड़कावत है ॥ २ ॥
बहु बीते बरस दयाल, ये टेर सुनावत है ॥ ३ ॥
अब खोलो पिता किवाड़, बहुत दुख पावत है ॥ ४ ॥
यह पुत्री पिता तुम्हार, खड़ी घबरावत है ॥ ५ ॥
गिरि साष्टांग तुम द्वार, दंडवत लावत है ॥ ६ ॥
ज़रा खाउ तरस दातार, यह बहुर मनावत है॥ ७ ॥
मोहि दीजै दर्शन दान, काल डरपावत है ॥ ८ ॥
सनमुख कर भोग बिलास, मोहि ललचावत है॥ ९ ॥

मम इन्द्रिन को बहु भाँति, कभी उकसावत है ॥१०॥
कभी मन को देय भुलाय, कभी तरसावत है ॥११॥
कभी धमकावै अधिकाय तो कभी रिझावत है॥१२॥
माया भी अपने खेल, नित्त खिलवावत है ॥१३॥
और डाल के अपना जाल तुम्हें बिसरावत है ॥१४॥
यह दासी गुरू तुम्हार, चरण तुम धावत है ॥१५॥
याहि लीजै गोद बिठाय, बहुत बिलखावत है ॥१६॥
अब 'धारा सिन्धु प्रताप' से लगन लगावत है॥१७॥
उन रूप को बारम्बार, ध्यान में लावत है ॥१८॥

शब्द १४३.

विनवौं गुरु पद माथ टेककर । निडर रहूं तुम ख्याल देखकर ॥ १ ॥
पतित सर्वदा भूलनहारा । माँगत क्षमा देउ कर प्यारा ॥ २ ॥
हूं अति लम्पट महा लबारा । पर मम मन बल आहि तुम्हारा॥३॥
जस अजान बालक पितु ओटा । होकर निडर करै कृत खोटा॥४॥
तस मैं सतगुरु बल सिर धारी । पाय दया इतरात हँकारी ॥ ५ ॥
भूल चूक सब तुमहिँ सम्हारी । मैं अति ओछ पात्र अविचारी॥ ६ ॥
पशू योनि से निकल के आया । पशू सुभाव सभी सँग लाया ॥ ७ ॥
नर तन में जो बुद्धी पाई । पशु औगढ़ता ता पर छाई ॥ ८ ॥
झुण्ड अभक्तन केसे भागा । भई दया तुम चरनन लागा ॥ ९ ॥
तौ भी गुरु विमुखन की बिरती । बुध मम सँग रह दुर्मत भरती॥१०॥
सो बुधि धार करूं सब कर्मा । समझूं नहिँ कुछ धर्म अधर्मा ॥११॥
यासे तुम्हरे चरन पखारूं । पिंडी मन निज मन पद वारूं ॥१२॥
दौनों को तुम लेउ सुधारी । तो बुद्धी शुध होय हमारी ॥१३॥

फिर तुम्हार अज्ञा मैं बरतूं। होय सुपुत्र पिता पद परसूं ॥१४॥
पकड़ कँवल पद चढ़ सुषमन में। पाय दया नित रहूं अमन में ॥१५॥
शब्दामृत धारा हो जारी। पी पी सुत हो अमर सुखारी ॥१६॥
नाम तुम्हार रटूं पपिहा सम। पूरन कब करिहो आसा मम ॥१७॥
बिरह की तपन बुझाओ आकर। दरश प्रेम का जल बरसाकर॥१८॥
अब तो दया करो दातारा। जल्दी खोल देउ भंडारा ॥१९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' ध्यान धर। अति आरत हो माँगूं यह बर॥२०॥

शब्द १४४.

प्रेम का दीजै दान दयाल। सतावै नित्त तुम्हारा ख़्याल ॥ १ ॥
विरह नित उठ उठ बुझ जावै। तुम्हारी खबर न कुछ आवै॥ २ ॥
हाय अब करूं कौन तदबीर। नैंक यह दिल धारै नहिँ धीर॥ ३ ॥
याद जब आवै छेदै तीर। पीर[1] हुये ऐसे क्यों बेपीर ॥ ४ ॥
तुम्हारी छबि की आवै याद। रखै मोहि रैन दिवस नाशाद[2] ॥ ५ ॥
जुदाई खून सुखाय रही। जिगर पर छुरी चलाय रही ॥ ६ ॥
विरह का कीड़ा चुन चुन खाय। काठ भीतर ज्यों घुन लग जाय॥७ ॥
रात को छिन छिन चौंक परूं। पिया बिन क्या विष खाय मरूं॥ ८ ॥
सहूं हो दिन, महिना या साल। यह तो बेहद दायमी[3] मलाल[4] ॥ ९ ॥
दुखों से जिस्म हो चला ज़र्द[5]। सुनै नहिँ ज़रा पिया बेदर्द ॥१०॥
करूं क्या जाउँ कहाँ अब दौड़। कहीं नहिँ लगै ठिकाना ठौर॥११॥
सुनो हे 'धारा सिन्धु प्रताप'। नहीं कोई सूझै मोहि बिन आप ॥१२॥

शब्द १४५.

हे सतगुरु दाता बहिरे[6] करम[7]। रक्खो दासों की लाज शरम॥ १ ॥
दुखियों पर अब कुछ खाओ रहम। रहे भटकत हम जन्मान् जनम॥२॥

१. गुरु, २. दुखी, ३. सदा रहने वाला, ४. दुःख, ५. पीला, ६. समुद्र, ७. दया।

चौरासी लाख और खान चतुर। और नर्कों में दुख पाये हम ॥ ३ ॥
अब शरण तुम्हारी आन पड़े। गुरु सबसे बड़े बलवान हो तुम॥४॥
सिवा तुम्हारे रचना का। जानै नहिँ पूरा कोई मरम[1] ॥ ५ ॥
तुमहीं हो सच्चे जगतगुरू। तुमहीं सब धर्मों के हो धरम ॥ ६ ॥
बिन दया तुम्हारी कोई तरह। छूटैं न किसी के पाप करम ॥ ७ ॥
दुविधा नहिँ छूटै जीवों की। संशय न मिटै नहिँ जाय भरम॥ ८ ॥
पड़ा द्वार तुम्हारे बरसों से। यह पापी नीच नकार अधम ॥ ९ ॥
हे सतगुरु मेरी विनय सुनो। मैं ध्याऊं तुम्हारे चरण पदम ॥१०॥
मोहि देव दरश का दान प्रभो। तो पाऊं अमर आनन्द परम॥११॥
चढ़ संग तुम्हारे सदा रहूं। सत निर्मल चैतन लोक हरम[2] ॥१२॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू। अब सख़्त दिली तज होउ नरम॥१३॥
अब अनुभव सार कराओ तुरत। तो दिल का मेरे जाय भरम ॥१४॥

शब्द १४६.

बार बार बिनवत रहूं गुरु से। नित्त पुकार करत रहूं उर से ॥१॥
को उदार तुम सम या जग में। दयाखान लाये निज पग में ॥२॥
दुख मैटन सुख दैन गुसाइँ। बीन बीन पापी उधराइँ ॥३॥
कबहुँ न कर्म दास के हेरे। गही बाँह जिन हिय से टेरे ॥ ४ ॥
यह सब महिमा सुनी तुम्हारी। पर मम मन संशयरत भारी॥५॥
करै न निश्चय लख निज करनी। याते पक्की होय न शरनी ॥६॥
निश्चय और शरण बिन स्वामी। कस घट प्रगटै प्रेम अकामी॥७॥
सुरत प्रेम बिन शब्द गहै कस। शब्द बिना नहिँ छुटै भोग रस॥८॥
यों जब सुरत बँधी रहे जग में। कैसे चलै अकाशी मग में ॥९॥
बिन अन्तर मग चाल दयारा। कैसे होय मोर छुटकारा ॥१०॥

१. भेद, २. खास स्थान।

ऐसेहि जीवन जात बिताना । विरह न प्रेम न उमँग निदाना॥११॥
जग कृत जग रस मन को भावै । परमारथ में अरुचि रहावै ॥१२॥
नहिँ कोइ जतन समझ में आवै । देख ये हाल जिया अकुलावै॥१३॥
ठंडे हो बैठे क्यों गुरु तुम । क्या थक रहे देख पापी हम ॥१४॥
क्या नहिँ रहे पतित पावन अब । तुम चुप देख करैं अचरज सब॥१५॥
तुम तो आये हमें चितावन । उलट लगे हम तुम्हें मनावन ॥१६॥
मुक्ति दान प्रण काहे धराना । क्या मम पाप का था नहिँ ज्ञाना॥१७॥
क्या शक्ती पूरण नहिँ धारो । जो हमार अघ छिन में जारो॥१८॥
तुम तो सर्व शक्ति के धरता । पल में सर्व पाप के हरता ॥१९॥
अब दाता देरी मत धारो । जल्दी जल्दी जीव उबारो ॥२०॥
संशय हरो प्रतीत दृढ़ाओ । प्रेम दात दे सुरत चढ़ाओ ॥२१॥
'धारा सिन्धु प्रताप' परम गुरु । बाँह पकड़ पहुँचाओ निजपुर ॥२२॥

शब्द १४७.

दिन रात रहै मोहि सोच यही, गुरु कैसे पार लगाओगे ।
मुझ पापी लम्पट भाग हीन का, कैसे भाग जगाओगे ॥ १ ॥
मैं शुभ गुण हीन मलीन प्रवीन, विकारों में पशुवत रहती ।
इन्द्री भोगों में चित्त सदा रहता, कस मोहि निबाहोगे ॥ २ ॥
मेरे रोम रोम में कपट भरा, स्वारथ पर हरदम नज़र रहै ।
परमारथ की परवाह नहीं, तुम कैसे मोहि बचाओगे ॥ ३ ॥
क्या देख मुझे तुमने हे दाता, पात्र दया का जाना है ।
पापी को शब्द उपदेश किया, तुम कैसे शब्द सुनाओगे ॥ ४ ॥
मैं मन बच कर्म कुकर्मी हूं, मेरी बुद्धि कुमारग में रहती ।
मम अन्तःकरण निपट मैले को, कैसे साफ़ कराओगे ॥ ५ ॥

मैं सतसँग में नित बचन सुनूं. सतसँग से उठ बिसराऊं सब ।
तुम अशुभ वासना भरे हिये में, कस शुभ वास भराओगे ॥ ६ ॥
मोहि पाप पुन्न और झूठ सत्त, और नेकी बदी विवेक नहीं ।
मेरा मन चित जग में धाय सदा, घट अन्तर कस उलटाओगे॥ ७ ॥
मोहि यह अचरज दिन रात रहै, गुरु कैसे चरन लगाय लिया ।
अब देखूं कौन उपाय से तुम. अधिकारी मोहि बनाओगे ॥ ८ ॥
कहते हैं सब तुम सब समरथ, राई छिन माहिँ पहाड़ करो ।
हम तो मानेंगे दाता जब, हम काग को हंस कराओगे ॥ ९ ॥
हे 'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू. जादूगर जो तुम सच्चे हो ।
क्यों देर करो शक्ती दिखलाओ, कौनसी कला चलाओगे ॥१०॥

शब्द १४८.

गुरू मैं भरा गुनाहों से । भरा मन जग की चाहों से ॥ १ ॥
मेरा मन बड़ा अहंकारी । प्रशंसा लगै बहुत प्यारी ॥ २ ॥
मान आदर की अभिलाषा । हुकूमत की मन में आशा ॥ ३ ॥
प्राप्ती होवै उनकी जब । मगन हो फूलै मन बहु तब ॥ ४ ॥
निरादर निन्दा अपमाना । करें मन दुखी परेशाना ॥ ५ ॥
सोचता बदला लूं किस भाँत । चखाऊं मज़ा तो मन हो शान्त॥ ६ ॥
बात जो मन को नहिँ भावै । करै कोई .गुस्सा मन खावै ॥ ७ ॥
सुर्ख़ मुँह कर छाती जारै । नाग काले सम फुसकारै ॥ ८ ॥
लड़ै गाली दे और मारै । काम अन करने कर डारै ॥ ९ ॥
लोभ वश हो धोखा देवै । पराई जमा मूंस लेवै ॥१०॥
डरै नहिँ घूंस और चोरी से । हरै धन .जुल्म कठोरी से ॥११॥
काम बस करै कुदृष्टि भुमाय । स्वान ज्यों कातिक में मस्ताय॥१२॥

निजों का देख लाभ होता। ईर्षावश कुढ़ कुढ़ रोता ॥१३॥
तरक्क़ी अपनी ही चाहै। दूसरे की सुन हिय दाहै ॥१४॥
मोह सुत स्त्री का भारी। करै नहिँ स्वारथ बिन यारी ॥१५॥
दुखावै पर हिय अपने काज। बुरे कर्मों में तनक न लाज ॥१६॥
चाट स्वादों की नित्त बढ़ाय। असक्ती कर कर फँसता जाय ॥१७॥
सुहावैं विषय गीत और नाच। रहस नाटक नौटंकी माच ॥१८॥
वासना बुरी बढ़ाता जाय। नीच योनी में जो ले जाय ॥१९॥
मारकर शेख़ी बहु अकड़ै। काल यों फन्दे में जकड़ै ॥२०॥
हुआ विद्या पढ़ अभिमानी। गिनै सबको मूढ़ अज्ञानी ॥२१॥
हृदय में प्रेम का तनक न लेश। दिखावै बढ़ बढ़ भक्ती भेष ॥२२॥
करै चतुराई की बातैं। बड़े बनने की सब घातैं ॥२३॥
ठाठ भक्ती का दिखलावै। मान भक्तों से करवावै ॥२४॥
दम्भ परमारथ में करता। गुरू से ज़रा नहिँ डरता ॥२५॥
करै चतुराई सतगुरु से। मेहर आवे कैसे धुर से ॥२६॥
बेईमानी में रस पावै। दग़ा चालाकी मन भावै ॥२७॥
सफल चालाकी हो जबही। ख़ुशी मन में हो बहु तबही ॥२८॥
करै अपनी तारीफ़ बखान। मार बढ़ बढ़ बातें बेइमान ॥२९॥
मुख़बरी चुग़ली छल करता। मान धन कारन नित मरता ॥३०॥
दया का छींटा नहिँ हिय में। कुटिलता कपट बसा जिय में ॥३१॥
नहीं कोइ अस विकार जग में। भरा जो नहिँ मम रग रग में ॥३२॥
हाय अब करूं कहा महाराज। गुरू तुम हाथ हमारी लाज ॥३३॥
लगाऊं मैं अपना सब ज़ोर। करूं क्या चलै तनक नहिँ मोर ॥३४॥
बचाओ जो तुम तभी बचूं। दया गुरु बिन कितना ही पचूँ ॥३५॥

दया बिन सब मम यत्न नसाँय। हार कर पडूं तुम्हारे पाँय॥३६॥
शरण में हूं तुम्हरे कच्चा। होउँ मैं झूठा या सच्चा॥३७॥
अधम से अधम नीच से नीच। मगर तुम लिया चरन में खींच॥३८॥
खींचने की अब राखो लाज। लखो मत मम अवगुण महाराज॥३९॥
बख़्शिये भूल चूक अपराध। दया सागर गम्भीर अगाध॥४०॥
सतगुरू 'धारा सिन्धु प्रताप'। दया बिन कटैं नहीं मम पाप॥४१॥

शब्द १४९

क्षमा माँगत हम बारम्बार। बख़्शिये सतगुरु दीन दयार॥ १॥
भूल होवे हम से दम दम। होश नहीं रहे कौन हैं हम॥ २॥
वंश सतनाम हमारा है। अघी हम ताहि बिसारा है॥ ३॥
अहँग सँग गिरे बहुत नीचे। तमोगुण छाया घट बीचे॥ ४॥
पिता भये ऐसे क्यों अप्रसन्न। सुतों को कर दिया जलावतन[१]॥ ५॥
पतित होकर भये नीच कुजात। फिरें इत उत अब धक्के खात॥६॥
गँवा कर धर्म वंश कुल जात। अछूतों से जोड़ा दृढ़ नात॥ ७॥
दुष्ट दूतों के भये आधीन। कुसँग से बुद्धी भई मलीन॥ ८॥
इसी से भूलें हम छिन छिन। इसी से अपराधी खिन खिन॥ ९॥
इसी से है आवश्यकता। छमा की पल पल दुखहरता॥१०॥
ज़रूरत माफ़ी की हर दम। दया बढ़ती रहे होय न कम॥११॥
क्षमा बिन नहीं गुज़ारा है। दास को यही सहारा है॥१२॥
गुरू मम बाल दशा देखो। निपट परआधीनी पेखो॥१३॥
हर तरह बेचारा बेकस। भूल अपराध में हूं बेबस॥१४॥
इसी से पुत्र जोड़ कर हाथ। क्षमा माँगे है नवाये माथ॥१५॥
पुत्र का हक़ तो माफ़ी है। वजह उसकी जब काफ़ी है॥१६॥

१ देश निकाला।

पिता के सन्मुख हे सरकार। पुत्र बेहक़ भी है हक़दार ॥१७॥
यहाँ तो हक़ भी साबित है। दूसरे दयासिन्धु पित है॥१८॥
अतोला क्षमा करौ बे तोल। ख़ज़ाना मेहर का दो अब खोल॥१९॥
परम गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। क्षमा जल से धोओ मम पाप॥२०॥

शब्द १५०.

परम सतगुरु तुम्हारे द्वार पर, मँगता पुकारै है।
बड़ी मुद्दत से आशा धर, खड़ा दामन पसारै है॥ १॥
दर्श निज रूप की अभिलाष, दिल में लग रही स्वामी।
बँधाई आश जो तुमने, उसी पर धीर धारै है॥ २॥
लगाऊं ज़ोर अपना सा, मगर क़ाबू नहीं दिल पर।
बिरह की पीर हे दाता, मुझे निशिदिन पजारै है॥ ३॥
अनोखी माँग सेवक की, नहीं दाता कोई उसका।
सिवा तुम्हरे तुम्हारेहि चरण, गह सबको बिसारै है॥ ४॥
मरै चाहे जिये यह दास, छोड़े चरण नहिँ कबही।
यही पक्का इरादा कर, पड़ा धीरज सम्हारै है॥ ५॥
परमपितु 'धारा सिन्धु प्रताप' विनती अब सुनो मेरी।
कमल पद पर तुम्हारे दास, निज तन मन को वारै है॥ ६॥

शब्द १५१.

पड़ पइँयाँ तुम्हें गुरु दासी मनाय॥ टेक॥
काल कष्ट से बहु घबराकर। बिलख बिलख तुम्हें बिनती सुनाय॥१॥
निज धामी प्रिय रूप तुम्हारा। वाही से रही डोरी लगाय॥ २॥
वाकी याद सतावै हर दम। कब दरशन पाऊं हर्खाय॥ ३॥
छिन बैठूं छिन उठूं विकल हुइ। कब प्रिय प्रीतम छबि दिखलाय॥ ४॥

पुनि अट्टा चढ़ि ऊपर ताकूं । दें पिय कबहूं झलक दिखाय ॥ ५ ॥
कुछ नहिँ देखि रोय चुप लेटूं । पुनि इत उत ताकूं घबराय॥ ६ ॥
छाती कूट धुनूं सिर अपना । दूं अस भाग में आग लगाय ॥ ७ ॥
फिर फिर मन में ऐसी आवै । क्यों नहिँ प्राण निकसि अब जाय॥ ८ ॥
गिरूं कूप या जलूं अगिन में । या कहिँ सोय रहूं विष खाय ॥ ९ ॥
या खाना पीना तजि पड़ रहूं । या पत्थर से सिर टकराय ॥१०॥
फिर सोचूं औरहु बिगरैगी । आतमघात का पाप चढ़ाय ॥११॥
स्वाँस है जब तक आस बँधी है । शायद कभी पिया मिलि जाय॥१२॥
आत्म-घात अघ मरै जो लेकर । नर तन छोड़ नरक फिर जाय॥१३॥
परम पिया फिर मुख नहिँ देखैं । अस उन राखी नीति बनाय॥१४॥
ऐसा सोच धरूं फिर धीरज । दरश की फिर रहूं आस लगाय॥१५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयानिधि । या दुख से अब लेउ छुड़ाय ॥१६॥

शब्द १५२.

उतारो सतगुरु भव के पार । करै यह विनती दास पुकार ॥ १ ॥
डूब रही नाव बीच भौ धार । भँवर में रही है चक्कर मार ॥ २ ॥
हाथ में लो अब डाँड़ सम्हार । खेय कर बेगि लगाउ किनार ॥ ३ ॥
नाव में है बहु अघ का भार । करो हल्की सब अघ को जार॥ ४ ॥
तुम आये केवट बनि महाराज । अघिन को पार उतारन काज॥ ५ ॥
लगाई क्यों इतनी अब देर । काज में होती बहुत अबेर ॥ ६ ॥
आस में बैठे दास तुम्हार । तरस खाओ इन पर दातार ॥ ७ ॥
लगाओ हिय से इन्हें सम्हार । तसल्ली दो उनको कर प्यार ॥ ८ ॥
उठाये हैं इन दुक्ख अपार । सताये हुए हैं सब लाचार ॥ ९ ॥
भाग जग से ली शरण तुम्हार । लगाओ कंठ इन्हें दातार ॥१०॥

तुम्हारा मुँह यह ताक रहे। तुम्हारी लँग सब झाँक रहे ॥११॥
तुम्हारा चुप रहना नहिँ ठीक। इन्हें अपनाकर दो निज भीक॥१२॥
यही धारा तुम बाना है। यही तुम कारज ठाना है ॥१३॥
करो पूरा अब विर्द अपना। लगाओ देरी मत सजना ॥१४॥
परम गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। दया कर दूर करो सब ताप ॥१५॥

शब्द १५३.

गुरु तुम देव प्रत्यक्ष अकामी। और देव सब गुप्त सकामी ॥ १ ॥
तुमहीं एक सत्य बिसरामी। और असत सब काल गिरामी[1] ॥ २ ॥
और देव माया सम्बंधक। काल राज के सबहि प्रबन्धक ॥ ३ ॥
जीव प्रजा बिन राज न होई। फिर देवों का काम न कोई ॥ ४ ॥
कौन को वे फिर कला दिखावैं। कौन पै वे फिर हुकुम चलावैं॥ ५ ॥
ताते जिव रोकन की सामाँ। रचैं दिखाय प्रकट निज कामा॥ ६ ॥
ब्रह्मा रचनहार सृष्टी के। इन्द्र देवता जल वृष्टी के ॥ ७ ॥
विष्णू सृष्टी के प्रतिपालक। हनूमान वायू सञ्चालक ॥ ८ ॥
शिव सृष्टी संहार करावैं। लक्ष्मी धन सनमान बढ़ावैं ॥ ९ ॥
सूरज देव प्रकाश कराई। विद्या देय सरस्वति माई ॥१०॥
दुर्गा देवै माँस और मदिरा। भक्तन से कटवावै बकरा ॥११॥
कोइ देव देवैं सन्ताना। कोइ बल नाम हुकूमत माना ॥१२॥
तात्पर्य यह है महाराजा। यह सब देव प्रकट दें दाजा ॥१३॥
दात अस दे विश्वास बढ़ावैं। देख दात जिव उन लँग धावैं॥१४॥
उमँग सहित सब पूजा धारैं। देव कर्म फन्दा अस डारैं ॥१५॥
बहु विधि अपनी कला दिखावैं। जीवन अपने जाल फँसावैं ॥१६॥
फाँस जीव उन प्रजा बनावैं। ऐसे काल का राज चलावैं ॥१७॥

१. देशवासी।

गुरु तुम आये जीव उबारन । जिव को काल के जाल से काढ़न॥१८॥
काल राज की प्रजा बिगाड़न । माया का सब देश उजाड़न ॥१९॥
कस बिन प्रगट दात जिव पाऐ। निकस जाल से तुम ढिँग आऐ॥२०॥
काल प्रचण्ड कला दिखलावै । दात तुम्हारी गुप्त रहावै ॥२१॥
तुम्हरी दात रहै संशय मय । कैसे हो जिव काल से निर्भय ॥२२॥
काल से कोई निडर भये बिन । कस दृढ़ लगै तुम्हारे चरनन ॥२३॥
तुम पाबँद हो काल नीत के । वाके डंके बजैं जीत के ॥२४॥
जो न बताओ कला प्रचंडा । नीचा रहै तुम्हारा झंडा ॥२५॥
काल से बढ़ कर शक्ति दिखाओ । तब धारैं जिव तुम पर भाओ॥२६॥
तुम नर तन धर प्रगट पधारे । दूसर देव गुप्त गति धारे ॥२७॥
वे रहि गुप्त प्रगट दें दाना । तुम तन धर निज दात छिपाना॥२८॥
अब दाता धारो अस रीती । प्रगट काल की तोड़ो नीती ॥२९॥
कला दिखाय प्रगट जिव खींचो । काल कलाऐं धर धर भींचो॥३०॥
ऐसी धाल मौज अब धारो । प्रकट शक्ति कर जीव उबारो ॥३१॥
भक्ती संशय रहित कराओ । उमँग प्रेम अनुराग बढ़ाओ ॥३२॥
टूट टूट जिव आवें सरना । गिर गिर पड़ैं तुम्हारे चरना ॥३३॥
पाय प्रत्यक्ष सुबूत मोक्ष गत । धाय धाय हों पद तुम्हरे रत ॥३४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' विनय सुन । करौ दया गाऊं नित तुम गुन ॥३५॥

शब्द १५४.

हे सतगुरु महाराज लखो मेरी निर्बलता ।
मुझ से कुछ नहिँ बनै तुम्हीं हो करता धरता ॥ १ ॥
शब्द भजन के माहिँ ध्यान में गुरू स्वरूपा ।
एक भी आवै नाहिँ रहै अँधकार कुरूपा ॥ २ ॥

कभी कभी कुछ बनै शुरू तब होंहि गुनावन ।
जब वह थोड़ी रुकैं लगै तब निद्रा आवन ॥ ३ ॥

मिलै जो थोड़ा समय नित्त वह ऐसे जावै ।
सतसँग में भी यही कैफ़ियत रोज़ रहावै ॥ ४ ॥

पहिले तो परमारथ में मन ढूंढ़ै हीला ।
ज़रा बहाना मिलै भक्ति में होवै ढीला ॥ ५ ॥

कभी कोई विधि लगै तो घेरैं नींद गुनावन ।
श्रम कर उनसे बचूं तो मच्छर लगैं सतावन ॥ ६ ॥

रहनी की अब सुनो जो मन कपटी की हालत ।
हैं जो बुरे स्वभाव दुष्ट उनहीं को पालत ॥ ७ ॥

जभी सुनूं गुरु बचन तभी मन को धिक्कारत ।
अमुक काम नहिँ करूं कभी ऐसा प्रण धारत ॥ ८ ॥

करै समय पर वही बेशरम प्रण बिसरावत ।
ले जब कर्म चढ़ाय तो पीछे बहु पछतावत ॥ ९ ॥

मेरा बस नहिँ चलै नाथ अब तुम्हीं बचैया ।
तुम्हरेहि बल से कढ़ै दास की डूबत नैया ॥१०॥

कृष्ण द्रोपदी विष्णू गज के भये सहाई ।
काल दया अस करी दयाल क्यों चुप्प रहाई ॥११॥

ब्रह्म ने अपने नीचे के सब दुष्ट सँहारे ।
तुम तो सबसे बड़े काहे चुप बैठे हारे ॥१२॥

वह तो कला दिखाय प्रकट कर जग के माहीं ।
तुम दयाल यह कहो मौज हमरी अस नाहीं ॥१३॥

ऐसे कैसे बनै नाथ जीवन का काजा ।
बदलो अब निज मौज रखो दासन की लाजा ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बिना तुम नहिँ कोइ हमरा ।
सूझै नहिँ कहिँ ठौर गहा अब पल्ला तुम्हरा ॥१५॥

शब्द १५५.

हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । मैं फँसि रहा काल के जाल ॥ १ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । तुम्हीं दया से लेउ निकाल ॥ २ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । तुम रक्षक मेरी करो सम्हाल ॥ ३ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । मैं अति दीन दुखी बेहाल ॥ ४ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । मेटौ कृपया मम दुख साल ॥ ५ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । तुमही मोर करौ प्रतिपाल ॥ ६ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । अब तो दर्शन देउ कृपाल ॥ ७ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । तुमही सको व्यथा मम टाल ॥ ८ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । दर्श बिना रहै बहुत मलाल ॥ ९ ॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । अब आरत करूं कर ले थाल॥१०॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । प्रथम खुलाओ मम तिल ताल॥११॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । पुनि दिखलाओ जोत जमाल॥१२॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । फिर चढ़ जाउँ बंक की नाल॥१३॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । लखूं तिरकुटी सूरज लाल ॥१४॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । आगे बढ़ै सुन्न को चाल ॥१५॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । धारूं जहँ मैं गती मराल ॥१६॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । फिर मैं न्हाऊं मानसर ताल॥१७॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल । पहुँचूं भँवर गुफा फिर हाल ॥१८॥

हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। पाऊं सत्तनाम निज माल ॥१९॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। अलख अगम का निरख जलाल॥२०॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। पाऊं प्रिय धारा सिन्धु कृपाल ॥२१॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। तबही होय सुफल मम घाल[1] ॥२२॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। पाय दरश मैं होउँ निहाल ॥२३॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। तब मुरझावै काल कराल ॥२४॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। पूरा करो यह घाल सवाल ॥२५॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। नित घट दूत करैं पामाल[2] ॥२६॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। खींचो मम बैरिन की खाल ॥२७॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। दृष्टि तुम्हार करै खुश हाल॥२८॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। दया दृष्टि अब मुझ पर डाल॥२९॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। समरथ समझ गहूं तुम ढाल ॥३०॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। मम विनती पर धरो खयाल॥३१॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। तुम दर खड़ा दास कंगाल ॥३२॥
हे धारा सिन्धु प्रताप दयाल। मैं तुम्हारा अज्ञानी बाल ॥३३॥

शब्द १५६.

गुरु जी मोहि देउ भक्ति निष्काम ॥टेक॥

यह मन जग की चाह न छोड़ै ऐसो निमक हराम ॥ १ ॥
इत उत मुँह मारत घूमै जस घोड़ा बिना लगाम ॥ २ ॥
करूं बचन सतसँग में सुन सुन मन से नित संग्राम ॥ ३ ॥
जब हीं सन्मुख भोग होंय अन्धा हुइ गिरै .गुलाम ॥ ४ ॥
जैसे कूकर बली सिंह सम अपनी गली गिराम[3] ॥ ५ ॥
मन इन्द्री और पाँच दूत या देश में हैं हुक्काम ॥ ६ ॥

१. खेप, २. दुर्गति, ३. गाँव ।

संत साध और प्रेमी जन नित हित के कहैं कलाम॥ ७ ॥
सो सब भूल जक्त को धावै ऐसो ढीठ निकाम ॥ ८ ॥
करै बिमुख हो सतसँग से हाकिम को रोज़ सलाम॥ ९ ॥
सतसँग को .फुरसत न बतावै हुआ धूर्त बस काम॥१०॥
बालापन तरुनापन खोया मुरझाया तन चाम ॥११॥
थोड़े दिन की और बात है आवै मौत पयाम[1] ॥१२॥
फिर मर प्रेत लोक में करि है भूतन सँग विश्राम ॥१३॥
करैं कहा कुछ बस नहिँ चालै पड़ा काल के दाम ॥१४॥
हे सतगुरु अब दया बिचारौ मन को राखौ थाम ॥१५॥
बिना दया मन को सुधारना है अति मुश्किल काम॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम ही है सच्चा निज नाम ॥१७॥
जप जप याको मन को मारो हो सब काम तमाम॥१८॥

शब्द १५७.

शान्ति स्वरूप परम सुख धामी । धारा सिन्धु प्रताप सुआमी॥ १ ॥
अगम अथाह अगाध अनामी । दास करै तुम चरण नमामी॥ २ ॥
अलख अपार अमी भण्डारा । सब जीवन के प्राण अधारा ॥ ३ ॥
रूप अनन्त और कला अनन्ता । अकथ अगोचर आदि न अन्ता॥४॥
सोहं पारब्रह्म परमेश्वर । माया ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ ५ ॥
अस्तुति सभी तुम्हारी गावैं । भेद तुम्हार कोई नहिँ पावैं ॥ ६ ॥
न्यून कला धारी सब देवा । यह सब करैं तुम्हारी सेवा ॥ ७ ॥
सृष्टि काज दीन्हा तुम इनको । लोक लोक में राज सबन को॥ ८ ॥
इनने तुमसे दर्श न माँगा । धारा हिये राज अनुरागा ॥ ९ ॥
सो तुम इनहिँ राज दे दीना । इनका हमें किया आधीना ॥१०॥

१. संदेशा

जीव ब्रह्म दोनों जब भाई । फिर क्यों उनकी पक्ष बढ़ाई ॥११॥
चाह तुम्हार नहीं है जिनको । माँगा सो दीन्हा तुम तिनको॥१२॥
इनको तुम कीन्हा किरतारथ। माँगे सो सब दिये पदारथ ॥१३॥
वे हैं तृप्त राज आधारी । उन्हें नहीं कुछ चाह तुम्हारी ॥१४॥
जिनकी नहीं प्रीति है तुमसे । बहुत प्रसन्न रहो तुम उनसे ॥१५॥
तुम निज प्रेमिन को तरसाओ । उनसे नहीं प्रसन्न रहाओ ॥१६॥
यह क्या उलटी रीति तुम्हारी । याहि दया कर लेउ सुधारी ॥१७॥
निज प्रेमिन को कंठ लगाओ । कर कर प्यार गोद बैठाओ ॥१८॥
प्रेमी काज नीत बदलाओ । चरण अम्बु देकर तृप्ताओ ॥१९॥
मुख्य दया उन पर तुम धारो । देव स्वारथी पीछे डारो ॥२०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाकर । अर्ज़ दास की मानो हितकर॥२१॥

शब्द १५८.

अब सुनौ गुरू मम टेर । उमर दिन दिन घटती ॥टेक॥
दया धार क्यों गुप्त कराई । पड़ा कौन अब फेर ॥उमर०॥ १ ॥
मुँह फाड़े सीपी सम बैठी । स्वाँति बूँद तन हेर ॥उमर०॥ २ ॥
शक्ती बान उठा के मारो । काल कर्म को घेर ॥उमर०॥ ३ ॥
बिरह तेज कर क्यों नहिँ जारौ । पाप कर्म का ढेर ॥उमर०॥ ४ ॥
इन्द्रिय भोगन से चित टारौ । माया को कर .ज़ेर ॥उमर०॥ ५ ॥
जल्दी करो जिया घबड़ावै । काहे लगाओ देर ॥उमर०॥ ६ ॥
हिम्मत धीर हमारी टूटै । देख तुम्हार अबेर ॥उमर०॥ ७ ॥
धुन की डोर सुरत पकड़ाओ । ठहरै जाय सुमेर ॥उमर०॥ ८ ॥
सुन और भँवर गुफा में होकर । सतपुर जाय सबेर ॥उमर०॥ ९ ॥
माया हद के पार सिधारै । छुटै काल अन्धेर ॥उमर०॥१०॥

दया तुम्हार पाय गुरु दाता । गीदड़ होवै शेर ॥ उमर० ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धाम में । केल करै सुत चेर ॥ उमर० ॥१२॥

शब्द १५९.

गुरु डालो मेहर की नज़रिया दास दुख में तड़पै ॥टेक॥
शब्द सुनाओ दरश दिखाओ । खोलो घट की डगरिया॥दास०॥१॥
काल करम से खूँट छुड़ा के । पहुँचूँ सत्य नगरिया ॥दास०॥२॥
जी उकतावै नेक न भावै । माया की हाट बजरिया ॥दास०॥३॥
तुमहीं चित्त उचाटा जग से । दे निज धाम खबरिया ॥दास०॥४॥
कैसे बेगि पिया ढिंग पहुँचूँ । अब नहिं होय सबरिया॥दास०॥५॥
इक इक दिवस पड़ा मोहि भारी । छेदै याद कटरिया ॥दास०॥६॥
तीर विरह का दम दम सालै । फाटै हिया जिगरिया ॥दास०॥७॥
दया करी तुम दूर हटाई । जग की चाह चमरिया ॥दास०॥८॥
औरहु कृपया दूर निकारो । जो कुछ होय कसरिया ॥दास०॥९॥
तेज तुम्हार देख मुरझावै । माया नारि गँवरिया ॥दास०॥१०॥
काल देश तजि चढ़ै अधर में । सूरत बाँध कमरिया॥दास०॥११॥
तीसर तिल धस अण्ड समावै । झाँकै दीप झँझरिया॥दास०॥१२॥
बंक नाल हो त्रिकुटी जावै । जहाँ ओंकार पसरिया ॥दास०॥१३॥
ब्रह्माण्डी मन तज सुन पहुँचै। पावै शब्द किंगरिया ॥दास०॥१४॥
दीपक हाथ महासुन जावै । धाय हटाय तिमिरिया ॥दास०॥१५॥
भँवर गुफा सोहं तन त्यागै । कर सत धाम तयरिया॥दास०॥१६॥
माया हद के पार चढ़ै अब । काल के मार थपरिया ॥दास०॥१७॥
सत्तलोक जाय सत्त पुरुष के । सम्मुख करै मुजरिया ॥दास०॥१८॥
हंसन के सँग केल करै अब । सतपद अमर अजरिया॥दास०॥१९॥

अचरज रूपी होंय विलासा । बरसै अमीं बदरिया ॥दास०॥२०॥
अलख पुरुष लख अगम लोक में। करै सर्व श्रृंगरिया॥दास०॥२१॥
आगे धस धुर धाम समावै । सोवै पिया सेजरिया ॥दास०॥२२॥
संत सतगुरू दया करैं जब । पार होइ भव दरिया ॥दास०॥२३॥
जम और काल करम मन माया । अंध कूप सब पड़िया॥दास०॥२४॥
दीन देख अब दया विचारो । जन्म मरण दुख टरिया॥दास०॥२५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू का । बारम्बार शुकरिया ॥दास॥२६॥

शब्द १६०.

गुरु प्यारे लगादो भव के पार ॥ टेक ॥

जग दल दल में आन फँसानी । गुरु प्यारे यह अंश तुम्हार ॥ १ ॥
बिना तुम्हार दया नहिँ निकसै । कर कर ज़ोर रही मैं हार ॥ २ ॥
अघ का भार धरा सिर ऊपर । औरहु नीचे रहा उतार ॥ ३ ॥
तुम चरनन की ओर निहारूं । हे सतगुरु रक्षक हुशियार ॥ ४ ॥
दीन दुखी की देख दुर्दशा । बेगि सुनौ अब नाथ पुकार ॥ ५ ॥
तुम बिन और न कोई मेरा । तुमहीं मेरी करौ सम्हार ॥ ६ ॥
नीति नियम तुमहीं यह बाँधा । अपनी आप मौज अनुसार॥ ७ ॥
स्वामी अपने शरणागत का । हाथ गहै दुख में कर प्यार ॥ ८ ॥
हम हैं दासन दास तुम्हारे । हे स्वामी हम शरण तुम्हार ॥ ९ ॥
अपनी नीति नियम अब पालो । शरणागत को लेउ उबार ॥१०॥
निर्बुद्धी निर्बल अविचारी । हूं अति मूढ़ अजान गँवार ॥११॥
दुष्ट दूत बैरिन में फँसकर । हुआ सर्व विधि अति नाकार ॥१२॥
जानूँ नहीं दासता रीती । भक्ती सिवकाई में आर ॥१३॥
जैसा तैसा पापी कर्मी । अनगढ़ और उदण्ड लबार ॥१४॥

तुम गम्भीर गहर अति भारी । क्षमा करौ मोहि लख लाचार ॥१५॥
जैसे दोष पुत्र के माता । माफ़ करै अनजान विचार ॥१६॥
गोद बिठाय शीश पर कर धर । दूना सुत से करै पियार ॥१७॥
यह रीती जग पितु माता की । परम मातु पितु तुम दातार ॥१८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला । तुम्हरे कर है लाज हमार ॥१९॥

शब्द १६१.

हमारी आह सतगुरु असर से बिलकुल्ल ख़ाली है ।
तुम्हारी रीति कुल .कुदरत की रीती से निराली है ॥ १ ॥
कड़ा से कड़ा हिरदय विनय से बिल्कुल पिघल जाता ।
न जानूं तुमने क्यों निज रीति यह ऐसी बनाली है ॥ २ ॥
तड़प और सोज़[1] वेदन आहो[2] गिरियां[3] सब हुआ बेसूद[4] ।
दयानिधि क्यों हमारे काम में अब ढील डाली है ॥ ३ ॥
सुना था हो गये निश्चिन्त निर्भय तृप्त सब सेवक ।
जिन्होंने सन्त सतगुरु के चरण की शरण पाली है ॥ ४ ॥
मगर इस दास ने सब हाल अपना उल्टा पाया है ।
बताओ इसमें क्या सरकार की मसलहत आली है ॥ ५ ॥
हुज़ूर हैं हर तरह पूरे नहीं कुछ इसमें शक मुझको ।
मेरी ही शरण भक्ती लाग शायद कसरवाली है ॥ ६ ॥
दया कर यह कमी पूरी करो प्रभु दीन हितकारी ।
सुरत निर्बल है ज़ालिम काल ने ऐसी फँसाली है ॥ ७ ॥
न थी उम्मेद हरगिज़ छूटने की हमको हे दाता ।
मगर अब तुमने आकर मुक्ति की रस्ता निकाली है ॥ ८ ॥

१. जलन, २. हाय हाय करना, ३ रोना, ४. बेफ़ायदा ।

यह सुनकर बँध रही आशा हृदय में मेरे छुटने की।
कि बन्धन काटने की राह तुम्हरी अति सुखाली है ॥ ९ ॥
सकै क्या आपका कर काल आख़िर आपका बन्दा।
रहै डरता वह ऐसी आपकी सूरत जलाली[1] ॥१०॥
रहम पूरा करो गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' तुम उन पर।
जिन्होंने शरण तुम्हरी उल्टी सीधी कुछ सम्हाली है ॥११॥

शब्द १६२.

पूरन निरस्वारथ हितकारी। सतगुरु परम अनुग्रह धारी ॥ १ ॥
पूरन पर अर्थी दातारा। क्षमा स्वरूपी परम उदारा ॥ २ ॥
मैं हूं दास तुम्हार भिखारी। औगुन रूप निपट संसारी ॥ ३ ॥
मम नस नस में भरे विकारा। बख़्शो क्षमा गुरू दातारा ॥ ४ ॥
विनती करने में कुटिलाता। क्षमा करो हे सतगुरु दाता ॥ ५ ॥
तुम्हरेहु सन्मुख कपट न खोलूं। अन्तर कुछ बाहर कुछ बोलूं॥ ६ ॥
हूं अस बढ़कर दुरआचारी। याते अधिक क्षमा अधिकारी ॥ ७ ॥
पक गया हृदय पाप के माहीं। बुरा भला अब सूझै नाहीं ॥ ८ ॥
याते क्षमा पात्र तुम्हारा हूँ। कुट पिट तुम्हरे द्वार पड़ा हूं ॥ ९ ॥
दया रूप तुम अमृत दाता। मैं अघ रूप विषय विष राता ॥१०॥
पकड़ा मोहि तुम अपनी राज़ी। मुर्चा रोप लगाई बाज़ी ॥११॥
इक है ऊपर इक है नीचे। देखो अब को कौन को खींचे ॥१२॥
या समाय बुँद परम सिन्ध में। या समाय सिँध अघी बुन्द में॥१३॥
उत सब समरथ परम दयाला। ज़ोर करे इत काल कराला ॥१४॥
देख रहा अब जगत तमाशा। बहु नर बैठे बाँधे आशा ॥१५॥
हे गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। क्षमा बान से जारो पाप ॥१६॥

१. तेज वान

हे गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप'। दूर करो जीवन कलि श्राप ॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाल। दया करो काटो कलि जाल ॥१८॥

शब्द १६३.

सतगुरु दीनानाथ कृपा करी पूरण प्रभू।
पकड़ा तुम मम हाथ श्रापी धुर के हम यहाँ ॥ १ ॥
सिन्धू दिया निकार मक्खी सम निज दूध से।
जान हमें बेकार पटका नीचे धाम से ॥ २ ॥
रह बहु समय रिसाय फुरी दया कुछ सिन्धु में।
उमँड़ उमँड़ रह जाय थक थक सन्त विदा भये ॥ ३ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' पिछले गुरु सब चल बसे।
नये आये अब आप बीड़ा ले उद्धार का ॥ ४ ॥
फ़र्क़ यही महाराज तुम लाये पूरन कला।
देउ भक्ति का दाज दोनों हाथ लुटायकर ॥ ५ ॥
भाग बढ़ाओ इत्त करो निठुरता दूर उत।
प्रेमी प्रीतम नित्त केल करें मिल सिन्ध में ॥ ३ ॥
अस न करो अब आप जस पिछलों सन्तन करी।
देखि जीव के पाप दाँत उँगलिया दाब गये ॥ ७ ॥
हे गुरु परम उदार दुखियों के दुख देख कर।
करो रहम धर प्यार समय रहम का है यही ॥ ८ ॥
सब विधि मैं बलहीन बिनती भी नहिँ कर सकूँ।
तुम सब भाँति प्रवीन 'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु ॥ ९ ॥

शब्द १६४.

परम पिया बेगि मिलो अब काहे रहे तरसाय ॥ टेक ॥

दुनिया से मन मोड़ लगाया अपने चरनन माँहि ।
दया करी सतगुरू मिलाये जिन पकड़ी मोरी बाँहि ॥ १ ॥
कर किरपा गुरु ने समझाया परमारथ का भेद ।
दिया दिलासा आस बँधाई मैटा मन का खेद ॥ २ ॥
परम धाम की राह बताई सुरत शब्द अभ्यास ।
गुरु स्वरूप का ध्यान बताया जो काटै जम फाँस ॥ ३ ॥
निज सेवा और सतसँग बख़्शा करके कृपा महान ।
बहुत भाँति से बचनन में गुरु पिया छबि करी बखान ॥ ४ ॥
सुन सुन बरनन पिया रूप का सुरत हुई हैरान ।
बिरह अग्नि हिय में सुलगा के अब लागे तरसान ॥ ५ ॥
करूँ शब्द अभ्यास ध्यान गुरु का मैं बित अनुमान ।
निज स्वरूप की छबि के मेरे लगैं कलेजे बान ॥ ६ ॥
रैन दिवस अब चैन न पाऊँ बेकल फिरूँ उदास ।
बार बार घबराय पुकारूँ कस पहुँचूँ पिया पास ॥ ७ ॥
इत जग कृत में मन नहीं लागै उत प्रीतम है दूर ।
इत से तोड़ा उत नहीं जोड़ा बीच ही चकना चूर॥ ८ ॥
हे सतगुरु अब रहम करौ इस घायल पर कर प्यार ।
पूरे समरथ दाता तुमको करत लगै नहीं बार ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला करुना सिन्धु अपार ।
अब तो तनक हृदय पिघलाओ दास की ओर निहार ॥१०॥

शब्द १६५.

सुनो अब सतगुरु दीन दयाल ॥ टेक ॥
फँस्यो जाल में या भव के मैं, तुमहीं करौ सम्हाल ॥ १ ॥

जित जित दृष्टि करूँ पग धारूँ, सूझै भारी जाल ॥ २ ॥
कौन जुगत से बच यासे मैं, पकड़ूँ चरन रसाल ॥ ३ ॥
शब्द रूप और स्वाद जगत के, भरा सभी में काल ॥ ४ ॥
मन बैरी बाहर को धावै, ले सूरत निज नाल ॥ ५ ॥
बिना तुम्हार दया के सतगुरु, नहिँ छूटै जंजाल ॥ ६ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बचाओ, दृष्टि मेहर की डाल ॥ ७ ॥

शब्द १६६.

सतगुरु दीनानाथ दयाला। पकड़ो बाँह दास की आय ॥ टेक ॥
मैं निरबल अनजान अधम हूँ। मोसे बनै न कोई उपाय ॥
तुम समरथ की शरना लीन्ही। शरनागत की करो सहाय ॥ १ ॥
बनै न भजन ध्यान कुछ मोसे। स्वाँसा छिन छिन छीजत जाय ॥
मौत अचानक छापा मारै। यह भय दम दम रहा सताय ॥ २ ॥
सेवा हू गुरु प्रेमी जन की। जग कारज में नहिँ बन पाय ॥
सोच सोच मेरा जी काँपै। कोई तरह नहिँ चित ठहराय ॥ ३ ॥
जीव अभी जो अच्छा दीखै। देखत देखत जाय बिलाय ॥
देख देख यह हाल जगत का। जियरा मेरा अति घबराय ॥ ४ ॥
बार लगै नहिँ समय जात में। दिन दिन महिना महिना जाय ॥
वर्षा गई शरद ऋतु आई। फिर गर्मी में वर्ष बिताय ॥ ५ ॥
जैसी हालत मन सूरत की। पहिले थी सो अब हुँ दिखाय ॥
तुम बिन और न सूझै कोई। का पै यह दुख रोऊँ जाय ॥ ६ ॥
बड़ा भरोसा मन में धरके। तुम्हरे चरन गहे मैं आय ॥
हे प्रभु गुप्त दया की धारा। दीन बंधु अब दो प्रगटाय ॥ ७ ॥
हिम्मत बढ़े चरण दृढ पकड़ूँ। आरत करूँ हिया उमगाय ॥

पक्का हो विश्वास भरोसा। सत्गुरु मोहि लिया अपनाय ॥ ८ ॥
मन और सुरत खिलैं अन्तर में। भजन करैं नित चाव बढ़ाय ॥
हिय अन्तर से धन्यवाद धुन। कढ़ै दिये गुरु भाग जगाय ॥ ९ ॥
थोड़ी विनती बहुत जानियो। ज़्यादा मोसे कही न जाय ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला। चरन तुम्हार गिरी मैं आय ॥१०॥

शब्द १६७.

हे गुरु प्यारे प्रान अधारे। दास को कीजै भक्ति प्रदान ॥ टेक ॥
दया दृष्टि किंकर पर करके। काटो जग के बन्धन आन ॥ १ ॥
मन माया से खूँट छुड़ाओ। जान मुझे निज बाल अजान ॥ २ ॥
इन्द्री भोग खेंच मन सूरत। जगत जाल में बाँधैं तान ॥ ३ ॥
अपने बल से छुटूं न कब ही। माया काल बड़े बलवान ॥ ४ ॥
बिना तुम्हार दया के दाता। कौन करे पूरन कल्यान ॥ ५ ॥
नाम तुम्हारा पतित उधारन। सर्व समरथ दया की खान ॥ ६ ॥
पलक मारने की है देरी। फ़ौरन बचै हमारी जान ॥ ७ ॥
शरण पड़ा हूँ तुम्हरे दाता। बन कर तुम्हरे घर का स्वान ॥ ८ ॥
मुझको सग[१] असहाब[२] कैफ़ सम। कर दो काया पलट सुजान॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरण पर। बार बार जाऊँ .कुरबान ॥१०॥

शब्द १६८.

सत्गुरु दर्श न देंहि सखी मैं कौन उपाय करूं ॥ टेक ॥
भोग बासना छूटै नाहीं, मन जग में भरमै।
कैसे यासे पिण्ड छुड़ाऊँ कहँ मैं जाय जरूं ॥ १ ॥
नित्य प्रार्थना करूँ गुरू से, दया करो दाता।
मेरा बल कुछ काम न देवै, तुम्हरे चरन परूं ॥ २ ॥

१. कुत्ता, २. साधू लोग, एक कुत्ता जो चन्द महात्माओं के साथ रहता था सतसंग के प्रभाव से मनुष्य होगया.

ध्यान भजन सत्संग पाठ नित, करूं बनै जितना।
विरह प्रेम अनुराग दया बिन, कैसे हिये भरूं ॥ ३ ॥
सुरत शब्द में ठहरै नाहीं, मन इकाग्र नहिं होय।
हे गुरु दाता दया करो अब, चरनन शीस धरूं ॥ ४ ॥
ज्ञान इन्द्रियाँ चाह उठावैं, कर्म इन्द्रीं उकसाहिँ।
मन ले सुरत संग उन धावै, कैसे शब्द वरूं ॥ ५ ॥
मेरी सभी शक्ति अब थाकी, कर कर यतन अनेक।
दया करो नहिँ तो बतलाओ, कहँ मैं जाय मरूं ॥ ६ ॥
साथी मेरे बहुत चल बसे, कर कर पूरी आयु।
मेरी भी अब वारी आई, यासे बहुत डरूं ॥ ७ ॥
तब सत्गुरु ने दिया दिलासा, प्यारी मत घबराउ।
धारो प्रीति प्रतीति चरन की, दुख सब बेगि हरूं ॥ ८ ॥
मैं खुद रहा समेट मौज से, मन को दे दे ढील।
रैन दिवस तुम्हरे सँग रहता, इक छिन नाहिँ टरूं ॥ ९ ॥
जो इक दम सिमटै पूरा मन, तन का बिगड़ै काम।
यातें दे दे ढील समेटूँ, क्रम क्रम याहि छरूं ॥१०॥
तुम तो चरनन प्रीति बढ़ाकर, करते रहो पुकार।
मैंने काल अरु मन की जानी, सबको मार धरूं ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरन में, राखो दृढ़ परतीत।
यही आस पक्की हिय धारो, उनके संग वरूं ॥१२॥

शब्द १६९.

हे 'धारा सिन्धु प्रताप', तुम्हारी छबि जादू भरी।
जादू भरी महाराज, तुम्हारी छबि जादू भरी ॥ टेक ॥

लोचन कँवल अधिक रतनारे, मोहित हों मन सूरत सारे।
खेंच करैं भव पारे ॥ १ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

दरशन मिलत प्रेम हिये जागै, माया मलिन छोड़ घट भागै।
मन चंचलता त्यागै ॥ २ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

ऐसा अद्भुत रूप सुहावन, निज दासन को अति मनभावन।
अति ही पापी पावन ॥ ३ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

जा पर दृष्टि मेहर की डारो, कलि कलेश पल माँहि बिडारो।
पूरन कारज सारो ॥ ४ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

रूप तुम्हार सर्व गुण सम्पन, काल कलाऐं मारै हन हन।
सेवक पतित उबारन ॥ ५ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

कब ऐसे प्रभू दरस दिखैहो, कब लग निज दासन तरसैहो।
कब जम जाल जरैहो ॥ ६ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

हेरत मग दृग फूटे जावैं, कासे कहैं कहाँ हम जावैं।
मन मोहन कस पावैं ॥ ७ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

कौन भाँति अब विनय सुनाऊं, क्या उपाय कर तुम्हें मनाऊं।
कैसे तुम्हें रिझाऊं ॥ ८ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

तुम पावन हम पतित तुम्हारे, नाम पतित पावन तुम धारे।
पतित अनेक उबारे ॥ ९ ॥ तुम्हारी छवि० ॥

हे प्रभु द्याल दीन हितकारी, दीनन की देखो लाचारी।
कब अइ है मम बारी ॥१०॥ तुम्हारी छवि० ॥

एक नज़र की हमें ज़रूरत, निरमल होवैं सब मन सूरत।
लखैं अचरजी मूरत ॥११॥ तुम्हारी छवि० ॥

हे पिया प्यारे प्रान अधारे, हम दासन के जग उजियारे।
हे नयनन के तारे ॥१२॥ तुम्हारी छबि० ॥
तुम ही हो सब विधि रखवारे, हम दुखियन के परम सहारे।
हम तन चितवौ प्यारे ॥१३॥ तुम्हारी छबि० ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला, करुणा सिन्धु परम किरपाला।
अब तो करो निहाला ॥१४॥ तुम्हारी छबि० ॥

शब्द १७०.

हे गुरु प्यारे मेरी लो अब ख़बर, मुझे होय ना सबर
रहा बिनती सुनाय ॥ टेक ॥
दरशन बिन मोहि चैन न आवै, जगत भोग मोहि नेक न भावै।
चारों लँग अँधकार दिखाय ॥ १ ॥ रहा बिनती० ॥
भाल बिरह की चुभै हिये में, निश दिन करकत रहै जिये में।
उलट प्रान नैनन तक आय ॥ २ ॥ रहा बिनती० ॥
सोचूं लिखूं गुरू को पाती, क़लम उठावत फाटै छाती।
गुरु तो रहे घट गुप्त समाय ॥ ३ ॥ रहा बिनती० ॥
जो कहीं बसैं गुरू परदेशा, तो मैं भेजूँ उन्हें सँदेशा।
वे रहे रोम रोम मम छाय ॥ ४ ॥ रहा बिनती० ॥
तन मन रहैं बिथा मम जानैं, बेदन मेरी सब पहिचानैं।
आपहि तो रहे जिया जलाय ॥ ५ ॥ रहा बिनती० ॥
बिरहानल जब बहुत हि भड़कै, तब पिया तनक प्रेम जल छिड़कै।
धुँदक धुँदक बिरह और दुखाय ॥ ६ ॥ रहा बिनती० ॥
अब मम टेर सुनो हे प्रीतम, तड़प रही तुम्हरी अंश आतम।
कंठ लगा दो अग्नी बुझाय ॥ ७ ॥ रहा बिनती० ॥

सुरत बुंद तुम धार संग ले, मार काल माया झटके दे ।
उलट सुषमना मग ठहराय ॥ ८ ॥ रहा बिनती० ॥
श्याम सेत के मध्य समावै, वहाँ से बंक नाल चढ़ जावै ।
त्रिकुटी ओंकार दरसाय ॥ ९ ॥ रहा बिनती० ॥
सुन्न में सुन किंगरी झनकारी, हंसन संग करै जहँ यारी ।
आगे मानसरोवर न्हाय ॥१०॥ रहा बिनती०॥
महा सुन्न में सुनै गुप्त धुन, भँवर गुफा मुरली धुन सुन सुन ।
सत्य लोक में जाय समाय ॥११॥ रहा बिनती० ॥
ले दुरबीन चढ़ै पुनि आगे. अलख पुर्ष के चरनन लागे ।
पुनि चढ़ अगम लोक धँस जाय ॥१२॥ रहा बिनती० ॥
यहाँ करै अचरज श्रृंगारी, पिया धाम की हो तय्यारी ।
'धारा सिन्धु प्रताप' समाय ॥१३॥ रहा बिनती० ॥
ऐसी दया करौ दातारा, तड़प चुका बहु दास तुम्हारा ।
मरने ही की कसर दिखाय ॥१४॥ रहा बिनती० ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयानिधि, पूरन दया करौ कोई विधि ।
दास को अपना करौ बनाय ॥१५॥ रहा बिनती० ॥

शब्द १७१.

मेरे सतगुरु महाराज, रखौ दीनन की लाज ।
बख़्शो चरन शरन आज, दीजै प्रेम भक्ति दाज ॥
कीजै बेगि पूरा काज, घाल काल से छुड़ाइये ॥ १ ॥
मैं हूँ चरनों का दास, काल देय अधिक त्रास ।
लीन्हा जगत भोग फाँस, तुम्हें रटूं स्वाँसों स्वाँस ॥
पूरी करोगे कब आस, प्यारे तनक तर्स खाइये ॥ २ ॥

गुरू नाथन के नाथ, गहो दीनन का हाथ ।
रखो शरणागत को साथ, हम हैं दुख भरे अनाथ ॥
धरैं तुम्हरे चरण माथ, तनक तो दया विचारिये ॥ ३ ॥
गुरु दीनानाथ अपार, तुम निज दासन के अधार ।
बहे जात हम भौ धार, लीजै दया से निकार ॥
भूलैं ना हम यह उपकार, दाता देर ना लगाइये ॥ ४ ॥
जितने दास हैं तुम्हार, करैं दीन हो पुकार ।
गुरू प्यारे परम उदार, हम हैं सब तरह लाचार ॥
घिरे दुशमनों से झार, नाथ कर में खड़ग लीजिये ॥ ५ ॥
करो बेगि अब सहाय, आओ टेर सुनत धाय ।
लीजे काल से बचाय, दीजे बेड़ियाँ कटाय ॥
लीजे बन्द से छुड़ाय, दयाल ऐसी दया कीजिये ॥ ६ ॥
माया काल के हैं हने, सभी कीचड़ में सने ।
भरे घट में दोष घने, बिन तुम्हारे टेर सुने ॥
नहीं कोई काम बने, दयाल तनक दृष्टि फेरिये ॥ ७ ॥
अब तो पिता करो रहम, होय दिल से दूर वहम ।
धो बहाओ हमरे करम, राखो पुत्रों की शरम ॥
यही पिता का है धरम, दया दृष्टि से अब हेरिये ॥ ८ ॥
कृपा सिन्धु दुःख हरन, देवो सतसँग की सरन ।
गहैं सब तुम्हारे चरन, बनै बिना विघ्न भजन ॥
लगै घट में सुरत चढ़न, दर्श रूप नित दिखाइये ॥ ९ ॥
जाय तीसर तिल पार, लखै श्याम सेत धार ।
करै धुनन से विहार, लखै कँवल दल हज़ार ॥

चढ़ै प्रेम का .ख़ुमार, क़दम आगे को बढ़ाइये ॥१०॥

खुलै द्वार बंक नाल, जाय तिरकुटी में हाल।
लखै सूर नूर लाल, सुनै मिरदंग की ताल॥
देखि ब्रह्म का जलाल[1], राह ऊपर की लीजिये ॥११॥

चढ़ै तोड़ दशम द्वार, देख चन्द्र का उजियार।
सुनै किँगरी धुन सार, करै हंसन से प्यार॥
होय कर्म से निरबार, जहाँ अमृत रस पीजिये ॥१२॥

आगे अक्षर पद जाय, जहाँ मानसर नहाय।
मोती चुन चुन के खाय, बड़ी निर्मल गति पाय॥
महासुन्न में समाय, जहाँ गुरु के संग चालिये ॥१३॥

चढ़ै भँवर गुफा झमक, सुनै मुर्ली की धमक।
देख पूरन रवि चमक, लखै हंसन की दमक॥
धरै आगे पग लमक, दृष्टि सतपुर लँग डालिये ॥१४॥

पाय सत्य का सरूर[2], भई सुरत सखी हूर[3]।
सुनै बीन मधुर तूर, अजब पुर्ष का ज़हूर॥
अजब हंसन का नूर, मगन हुई दर्श पायके ॥१५॥

गई अलख लोक सुरत, जहाँ प्रेम अधिक बढ़त।
अलख पुरुष रंग चढ़त, अमी अद्भुत रस पगत॥
चली आगे को भगत, खिली अगम लोक जायके ॥१६॥

अगम पुर्ष का दीदार, रही दमबदम निहार।
करै अद्भुत शृंगार, पाय निर्मल गति सार॥
बिरह अग्नि हिये बार, पिया धाम को सिधारती ॥१७॥

१. तेज, २. आनन्द, ३. हंसिनी।

गुरू 'धारा सिन्धु प्रताप', चले सुरत संग आप ।
हुआ पिया से मिलाप, गई बिरह की सब ताप ॥
छुटा सदा को कलि श्राप, शीस सतगुरु पद वारती ॥१८॥

धन्यवाद व बधाई.

शब्द १७२.

देख सखी .खुद प्रीतम प्यारे । आप गुरू बन आये हैं री ॥ १ ॥
सुनत टेर हम सब सखियन की । तनक न थिर रह पाये हैं री ॥ २ ॥
आखिर तो हैं दीन दयाला । तुरत धाम तजि धाये हैं री ॥ ३ ॥
जिन सखियन साँचे हिरदय से । बिकल होय गुहराये[1] हैं री ॥ ४ ॥
उतने हि रूप धार कर प्रीतम । तिनके घट्ट समाये हैं री ॥ ५ ॥
जिन जिन जैसी प्रीत लगाई । तिन तैसे अपनाये हैं री ॥ ६ ॥
सखियन चित निज चरन लगाकर । याकी परख कराये हैं री ॥ ७ ॥
कर्म हृदय और मन शोधन को । अन्तर गुप्त रहाये हैं री ॥ ८ ॥
परिचय दया अरु लगन रूप में । प्रगट प्रमाण दिखाये हैं री ॥ ९ ॥
जिनकी प्रीति है कम .खुद क्रम क्रम । प्रेमिन संग बढ़ाये हैं री ॥१०॥
जान अजान बाल हम सबको । .खुद सब काज बनाये हैं री ॥११॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू बन । दया नवीन कराये हैं री ॥१२॥
सखियो सब मिल गाओ बधाई । प्रीतम घट घट छाये हैं री ॥१३॥

शब्द १७३.

आज शब्द की नई धुन सुनके । प्राणन की कैसी गति भई रे ॥ १ ॥
धुन गहि सुत सुषमन में खिँच गई । तन मन की सुधि बिसर गई रे ॥२॥
सतगुरु ने अब किरपा धारी । जागी हिये मम उमँग नई रे ॥ ३ ॥

१. बुलाए

रैन दिवस गुन गाऊं गुरु का। जिन मोहि अचरज दात दई रे ॥४॥
झूठ लगा भासन यह सब जग। निज घर की अब राह लई रे ॥५॥
शब्द गुरू को कभी न छोडूं। ऐसी हिय में ठान ठई रे ॥ ६ ॥
तन मन धन सब गुरू पर वारूं। दासी बनि उन चरण पई रे ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' शरण में। पिया मिलन की आस भई रे ॥ ८ ॥
जहँ का तहँ भटकत रहे सब जग। मैं तो मुक्ति गति पाय गई रे॥ ९ ॥

शब्द १७४.

सखियो सब मिलि गाओ बधाई। सतगुरु मौज दिखाय रहे हैं ॥ १ ॥
लहर रूप हुइ परम सिन्धु से। भव में धार बहाय रहे हैं ॥ २ ॥
जमा क्षीर[1] हिम[2] ज्यों दधि होवै। गुण तत रूप समाय रहे हैं॥ ३ ॥
सूक्ष्म पंच तत रँग बाना धर। निज दासन घट छाय रहे हैं॥ ४ ॥
दया करैं लीला दिखलावैं। भव से उबार कराय रहे हैं ॥ ५ ॥
सुरत धार को गौन रूप से। शब्द गहाय चढ़ाय रहे हैं ॥ ६ ॥
काहू को आकार रूप सँग। लोक लोक ले जाय रहे हैं ॥ ७ ॥
या सूक्षम गति प्रगट करन को। रूप स्थूल धराय रहे हैं ॥ ८ ॥
मोटर रेल जहाज़ बिठाकर। भिन भिन चाल जनाय रहे हैं ॥ ९ ॥
मार्ग लोक के निज हंसन सँग। स्रुत को वचन सुनाय रहे हैं ॥१०॥
वह बिलास स्थूल रूप में। भिन भिन भाँति लखाय रहे हैं ॥११॥
तरह तरह के महल सुशोभित। दिव्य रूप दरसाय रहे हैं ॥१२॥
जहँ हंसन की सत संगति के। सूचक चिन्ह बताय रहे हैं ॥१३॥
उच्च धाम के दिव्य दृश्य जो। तम सँग यहँ बिसराय रहे हैं ॥१४॥
गुरु उनके तम लोक में हमको। सूचक चिन्ह प्रगटाय रहे हैं ॥१५॥
भाँति भाँति के दृश्य जो सबको। जब तब गुरु दरसाय रहे हैं ॥१६॥

१. दूध, २. बर्फ.

जानौ उन्हें चिन्ह अनुभव के। जो हम चढ़ घट पाय रहे हैं ॥१७॥
यासे निश्चय जानौ तुम सब। नित प्रति सुरत चढ़ाय रहे हैं ॥१८॥
बहुधा गुरु भक्ती प्रभाव से। सुषपति में खिँच जाय रहे हैं ॥१९॥
सो सब सैन बैन में सतगुरु। अन्तर हाल जनाय रहे हैं ॥२०॥
कोटिन कोटि बधाई गाओ। गुरु हमको अपनाय रहे हैं ॥२१॥
अरबन खरबन कर शुकराना। भव जल पार कराय रहे हैं ॥२२॥
नील पदम उन धन्यवाद है। कैसी मेहर कराय रहे हैं ॥२३॥
संख असंख मुख महिमा गावत। गावत सब शरमाय रहे हैं ॥२४॥
धारा सिन्धु नाम धुन्यात्मक। गुरु प्रताप समझाय रहे हैं ॥२५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' नाम का। आप प्रभाव बताय रहे हैं ॥२६॥
कला प्रचण्ड धारि धुर घर से। नये नाम सँग लाय रहे हैं ॥२७॥
ऐसी दया भई नहिँ कबही। जैसी अब करवाय रहे हैं ॥२८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु के। हम चरनन बलि जाय रहे हैं ॥२९॥

शब्द १७५.

सुरत खेलै अन्तर गुरु सँग होली ॥ टेक ॥
मानुष जन्म मिला जो अबकी। पाया समय अमोली ॥ १ ॥
बड़े भाग से जागी घट में। सोना था सो सोली ॥ २ ॥
गुरू कृपा और साध संग से। भैंटी शब्द अतोली ॥ ३ ॥
श्रद्धा शील गुलाल बनाया। प्रेम रंग घट घोली ॥ ४ ॥
होली खेल सुरत गुरु दोनों। लाल भये जस रोली ॥ ५ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। भक्ति स्रोत अब खोली ॥ ६ ॥

शब्द १७६.

सुरत घबड़ाओ मत, गुरु पुरवैं जल्दी आस ॥ टेक ॥

भानु स्वरूप उदय सुत सन्मुख, होकर करैं प्रकास ॥ १ ॥
हिय निरासता दूर हटावैं, होय तिमिर घट नास ॥ २ ॥
जा सुख को सुत बन बन भरमी, किया बहुत परयास ॥३॥
सो सुख अब निज किरणी द्वारा, घट घट करैं उजास ॥४॥
नइ नइ उमँग प्रेम घट बाढ़ै, दूर हटै कलि त्रास ॥ ५ ॥
ढाँढ़स गह सुत अन्तर चालै, पावै अधिक हुलास ॥ ६ ॥
लोक लोक मंडल मंडल चढ़ि, धुन से करै बिलास ॥ ७ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दिखावैं, अब नई लीला खास ॥ ८ ॥

शब्द १७७.

गुरु दीनानाथ दया करि हैं। मन जल्दी काहे मचाओ हो ॥
तुम धीर धरो विश्वास करो। काहे ऐसे अकुलाओ हो ॥ १ ॥
यह बड़ा काम है जन्मों का। गुरु खुद ही जल्द कराय रहे ॥
सतगुरु ने गोद बिठाय लिया। अब ऐसे क्यों घबड़ाओ हो ॥ २ ॥
तुम से ज़्यादा उनको जल्दी। कुछ भेद तुम्हें मालूम नहीं ॥
तुम काम क्रोध मद मोह में फँस। क्यों फन्द पै फन्द लगाओ हो॥ ३ ॥
बुद्धी तुम्हरी हो मलिन रही। आगे पीछे की सुद्ध नहीं ॥
इन्द्री के विषय भोग में तुम दृढ़। अपना चित्त जमाओ हो ॥ ४ ॥
जिन करमन से यह देह बनी। उनहीं से सभी स्वभाव बने ॥
यह धीरे धीरे छूटेंगे। क्यों उचला चाल कराओ हो ॥ ५ ॥
तुम्हरी चिन्ता गुरु हृदय धरी। तुम रह अचिन्त गुरु भक्ति करो ॥
गुरु तारेंगे निश्चय धारो। मन ऐसे क्यों बौराओ हो ॥ ६ ॥
जो काम त्याग बैराग का था। बन पर्वत कँद्रा में होता ॥
सो घर में गुरु करवाय रहे। तुम क्यों नहिँ शुक्र बजाओ हो ॥ ७ ॥

कितनी कठिनाई दूर करी । कुल कुटुंब बन्धु के संग रखा ॥
उद्यम ब्योहार कराऐं सब । फिर भी तुम जोग कमाओ हो ॥ ८ ॥
सच मानो गुरु अपनाय लिया । रक्षा का सिर पर हाथ रहै ॥
गुरु सदा तुम्हारे संग रहैं । तुम क्यों नहिँ भाग सराहो हो ॥ ९ ॥
वह समय अधिक नगिचाय रहा । जब सब बन्धन से छुटकर तुम ॥
मालिक के संग मिलाप करौ । चित में क्यों नहिँ हुलसाओ हो॥१०॥
गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' सदा । सब भाँति तुम्हार सम्हार करैं ॥
क्यों धन्यवाद उनको नहिँ दो । गुण उनका क्यों नहिँ गाओ हो॥११॥

शब्द १७८.

कल्प बहु भटक भटक अबके यह मौक़ा पाया ।
सतगुरू आन मिले जन्म सुफल करवाया ॥ १ ॥
दया से खींच लगाया उन्होंने सतसँग में ।
भेद धुर घर का दिया शब्द मार्ग बतलाया ॥ २ ॥
काल और कर्म के सब दाव पेच घातों को ।
करके विस्तार भली भाँति मुझे समझाया ॥ ३ ॥
नर्क चौरासी के सब दण्ड दुःख दिखलाकर ।
आँख और कान मेरे खोल के अब चेताया ॥ ४ ॥
सुक्ख पूरन जो अमर लोक में हैं कीये बयां ।
उनके मिलने का दृढ़ विश्वास मुझे बँधवाया ॥ ५ ॥
देके उपदेश कमाई भी कराई जारी ।
दया के बल से मेरे घट में घाट खुलवाया ॥ ६ ॥
मैं हूं निर्बल मलीन सब प्रकार नाकारा ।
उन्हीं की किरपा ने अब धुर का भाग जगवाया ॥ ७ ॥

करूं क्या शुक्र गुरू 'धारा सिन्धु प्रताप' का मैं ।
जिन्होंने भाग्यहीन भाग्यवान करवाया ॥ ८ ॥

शब्द १७९.

हे सतगुरु करुणा धारी । हे दीनन के हितकारी ॥ टेक ॥
भई बड़ी है कुगति हमारी । काल बली की त्रासा में ॥
खोले मुँह सब खड़े सीप सम । स्वाँति अमी की आसा में ॥
बहुत दिवस हो गये दया निधि । लीजे खबर हमारी ॥ १ ॥
कपटी कुटिल कुचाली सब विधि । जम दूतन के मारे हैं ॥
पति गति सबही खोय हार कर । आये तुम्हरे द्वारे हैं ॥
लख अनाथ हम दीनन को । अब सुनिये टेर हमारी ॥ २ ॥
जब से निकले हैं निज घर से । योनि योनि में घसिट रहे ॥
नर्क अग्नि कुंडों में जाकर । बार बार हम दहत रहे ॥
अब तो पकड़ो हाथ नाथ । हम आखिर अंश तुम्हारी ॥ ३ ॥
भक्त वत्सल महाराज टेर । दीनन की सुनकर धाए तब ॥
तुरत डिगा आसन उनका । करि किरपा कंठ लगाए सब ॥
सब के सिर कर धरा । बिठाया अपनी गोद मँझारी ॥ ४ ॥
लीन्हे सब अपनाय काल से । सब की डोर कटाई है ॥
शब्द पंथ दिखलाय आस । मुक्ती की हमें बँधाई है ॥
खुशी मनाओ सभी हो रही । निज घर की तैयारी ॥ ५ ॥
कोट कोट है धन्यवाद और । अरब खरब शुकराना है ॥
संशय अब मत करो बेगि । सबको अब निज घर जाना है ॥
सत्त नाम का टिकट गुरू ने । कीन्हा है अब जारी ॥ ६ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू का । है जहाज़ तैयार खड़ा ॥

काल भार सब पटक जो बैठै। जल्द सोई है सूर बड़ा॥
सामाँ प्रीति प्रतीति गुरू की। लो अब संग सम्हारी॥ ७॥
भजन ध्यान और आरति कर। केवट गुरु को परसन्न करो॥
तुरत जहाज़ छुड़ाय खिवाओ। काल की दलदल से निकरो॥
दो गुरु चरनन ज़ोर। जल्द बेड़ा होवै भव पारी॥ ८॥

मिश्रित शब्द

शब्द १८०.

दया सागर दयानिधि दीन बन्धू दुख हरन सतगुरु।
अनामी परम स्वामी सत अलख और अगम सर्वेश्वर॥ १॥
विश्वम्भर विश्वरूपी विश्वकर्ता विश्व के साधक।
करैं अस्तुत तेरी सोहं रारं ओंकारादिक॥ २॥
तुही उत्पत्ति करता है तुही पालक तुही रक्षक।
तुही संहार करता नाश करता विश्व का भक्षक॥ ३॥
तुही फैला तुही पसरा बना तूही तो जड़ चेतन।
तुही सब सृष्टि में बैठा असंखन रूप का बन बन॥ ४॥
असंखन लोक तिरलोकी असंखन अण्ड ब्रह्मण्डा।
असंखन मण्डलों की सुरत तू है तू ही है पिण्डा॥ ५॥
सभी है तू सभी तेरा मैं हूं तू मेरा सब तेरा।
तुही ने डाला है भ्रम कर दिया सब में मेरा तेरा॥ ६॥
तुही तेरे से तेरी अस्तुती करवाय और निन्दा।
तू राजा बन सज़ा देवै तू भोगै सज़ा बन बन्दा॥ ७॥

तुही हो .ख़ुश तेरे से तुही हो नाराज़ तेरे से।
करै लीला बना कर तू व मैं और तेरे मेरे से ॥ ८ ॥
तुही है हंग हंगी मोह मोही लोभ और लोभी।
तुही गुन तूही है तत तुही है पच्चीस प्रकृति भी ॥ ९ ॥
तुही है क्रोध तू क्रोधी तुही है काम तू कामी।
तुही करता करम का तूही हरता भोगता स्वामी ॥१०॥
तुही सिन्धू तुही धारा तुही है बुन्द लघु दीरघ।
तेरे परताप से तूही बना है पुण्य तूही अघ ॥११॥
इसी से 'धारा सिन्धु प्रताप' है सब सिन्धु में फैला।
तुही गुरु बन के आया है उबारन को तेरे चेला ॥१२॥
तुही लक्ष्मीनरायण गौर शिव और तूही गनपत है।
तुही ब्रह्मा सावित्री दैव देवी तूही सुरपत है ॥१३॥
तुही नरसिंह वामन परसराम और कृष्ण रघुपत है।
तुही नर पशू पक्षी कीट बृक्ष और नदी पर्वत है ॥१४॥
तुही अस्तुत करै अपनी अनेकन रूप धर धर कर।
तुही निन्दा करै अपनी असुर और दैत्य बन बन कर ॥१५॥
कहीं शक्ती तेरी पूरण कहीं ज़्यादा कहीं है कम।
रखै भिन भिन्न नर अँग में जैसे न्यून अधिक बल आतम ॥१६॥
मनुष तन तेरे पूरन रूप का छोटा नमूना है।
कोइ अँग कम कोई चेतन अधिक कोई न सूना है ॥१७॥
शीश है अधिक चेतन उससे कम धड़ और कम नीचे।
अधिक तर मग़ज़ चेतन केन्द्र सबका शीश के बीचे ॥१८॥

वही राजा है सबका राजधानी शीश है उसकी।
शीश ही प्रेम सुख और ज्ञान शक्ती खान है जिसकी ॥१९॥
यह सब जीवात्मा हैं सिन्ध के ही केन्द्र की बूंदें।
अन्य अंगों की बूंदें बन प्रकृती आत्मा मूंदें ॥२०॥
दिया निज आत्मा को अल्प भिन भिन ज्ञान का आपा।
करन को प्रेम तुझसे तूने सबका भिन्न अँग थापा ॥२१॥
यह सब तेरी ही लीला है यह सब ही खेल है तेरा।
करे है दण्डवत गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' को चेरा ॥२२॥

शब्द १८१.

सुरत पती निरत पती, प्राण पती प्यारे।
सुरत निरत प्राण सब, तुम्हारे आधारे ॥ १ ॥
शब्द रूप ज्ञान रूप, प्रेम रूप धारे।
भव से निज दीन दास, बहुत तुम उबारे ॥ २ ॥
जिनने पद कञ्ज पकड़, तन मन धन वारे।
उनको निज शरण खेंच, लीन्ह तुम सम्हारे ॥ ३ ॥
मेरे प्रभु आन बनो नैनन के तारे।
रूप निज बसाओ अब, मम हिये मँझारे ॥ ४ ॥
तुमही संसार तिमिर, नाश करन हारे।
हे प्रभु दातार परम, धारा सिँधु अपारे ॥ ५ ॥
तुमही निज दासन के सर्व जग उजारे।
तुमही सब बन्धन से मुक्त करन हारे ॥ ६ ॥
किरपा कर करुणा कर आनँद भण्डारे।
नरन बे सहारे के, तुम अगम सहारे ॥ ७ ॥

माया कर जोरि फिरै, नित तुम्हार लारे।
तुम्हरी इक दृष्टि से, सब काल कर्म हारे ॥ ८ ॥
तुम से जम दूत भगैं, दूर भय के मारे।
विघ्न कोइ ठहरे नाहिँ, पास प्रभु तुम्हारे ॥ ९ ॥
भिक्षुक सब दास खड़े, तुम्हरे अब द्वारे।
दर्श आस हिरदे धर, कँवल पद निहारे ॥१०॥
मेहर दृष्टि डार करो, दास निज दुलारे।
गुरु 'प्रताप धारा सिन्धु' लीजिये उबारे ॥११॥

शब्द १८२.

जब से प्रीतम की खबर गुरू ने सुनाई है।
तब से काली घटा ग़म की जिगर पे छाई है ॥ १ ॥
हम अपने हाल से बिल्कुल्ल बे खबर थे पड़े।
बताया गुरु ने अपनी क्यों हुई जुदाई है ॥ २ ॥
कौन कैसा है कहाँ है वह हमारा प्यारा।
कैफ़ियत खोल के सतगुरू ने समझाई है ॥ ३ ॥
जुदा कराया हमें किस ने पिया प्यारे से।
वह कहाँ कौन है कैसा अधम अन्यायी है ॥ ४ ॥
फाँस क्यों लिया अपने जाल में सब जीवों को।
एक रूह इतने रूहों की हुई दुखदाई है ॥ ५ ॥
सुन के हम सतगुरू से भेद यह सब चौंक पड़े।
हवा चलती थी किधर कहँ से कहाँ आई है ॥ ६ ॥
रुख़ तो था नीचे को पर जानते हम कुछ भी न थे।
दया ने नीचे से ऊपर नज़र उठाई है ॥ ७ ॥

लगा है तीर कलेजे में ज़ख़्म कारी है।
जब से सतगुरु ने याद पिया की दिलाई है ॥ ८ ॥
राह कमज़ोरों को प्रीतम के पास जाने की।
बहुत मुश्किल है जो गुरु ने हमें बताई है ॥ ९ ॥
कहें गुरु 'सहल है' होगी वह सहल जिन को हो।
हमें तो पापियों को बहुत ही कठिनाई है ॥१०॥
हमारा गुज़र तो होगा जो चाल शुतरों की।
चलायें गुरु जो अपनी बानी में फ़रमाई है ॥११॥
बचन हम येही पकड़ के उमेद बाँधी है।
करो पूरी हम याद वादे की दिलाई है ॥१२॥
यह बचन हिरदै की तख़्ती पै हम लिख रक्खा है।
इसी के बल पै परम गुरु की अब दुहाई है ॥१३॥
अब गुरु 'धारा सिन्धु प्रताप' मिलाओ पिय से।
जिस लिये धुर से धार आप की यहँ आई है ॥१४॥

शब्द १८३.

अरे मन बन गुरु मेघ मयूर ॥ टेक ॥
जग के सब झगड़े तज भागौ। बनौ भक्ति में सूर ॥ १ ॥
क्यों विटम्बना अपन कराओ। बन के कूकर क्रूर ॥ २ ॥
दर दर पूँछ हिलाकर भागौ। सुन सुन दुर दुर दूर ॥ ३ ॥
सब दर तज इक दर के हो रहु। निज दरबार हुज़ूर ॥ ४ ॥
दुम हिलाय घट चाट गुरू पद। लेउ अमी फल मूर ॥ ५ ॥
भींगौ नित्त अगम रस में तुम। सुन सुन अनहद तूर ॥ ६ ॥
सुषमन जाय प्रेम में पागौ। लख लख अद्भुत नूर ॥ ७ ॥

लोक लोक चढ़ आरति धारो । गुरु की बन बन हूर ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धाम चढ़ । लो आनँद भर पूर ॥ ९ ॥

शब्द १८४.

परम गुरु सबकी करैं सम्हार ॥ टेक ॥

तकैं तनक आशा धर गुरु पद, सो उतरैं भव पार ।
कबहूँ जिन्हें दया से हेरैं करैं काल से न्यार ॥ १ ॥
काहू विधि जासे सम्बंधित होंय गुरू दातार ।
निश्चय उन बड़ भागिन को वे खोलैं मुक्ति दुआर ॥ २ ॥
वे अजान जानैं या नाहीं, पलटे भाग हमार ।
रह कृतघ्न अज्ञान दशा में, भूले फिरैं गँवार ॥ ३ ॥
गुरु गम्भीर चित्त नहिं धारैं, जीवन के अविचार ।
जारी राखैं धार दया की, अपनी ओर निहार ॥ ४ ॥
जो जन गुरु भक्ती में रहते, रैन दिवस हुशियार ।
'धारा सिन्धु प्रताप' दया की, उन पर कौन शुमार ॥ ५ ॥

शब्द १८५.

तनक तौ सोच करो, मर के जैहो केहि ओर ॥ टेक ॥

मरने में कुछ संशय नाहीं, थोड़े दिन हैं और ।
मौत घाट से बहुतक मारग, जावत हैं कई ठौर ॥ १ ॥
एक राह है प्रेत लोक की, दूसर नरकहिं जाय ।
तीसर अस्थावर ले जावै, चौथे नर तन लाय ॥ २ ॥
राह पाँचवीं पशू पखेरू, कीट योनि भरमाय ।
छटवीं पित्र लोक ले जावै, सप्तम स्वर्ग समाय ॥ ३ ॥

राह आठवीं नवीं व दसवीं, त्रैगुण फाँस फँसाय ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लोक में, भक्तन को पहुँचाय ॥ ४ ॥

ब्रह्म अण्ड में एक मार्ग जोगेश्वर गती दिलाय ।
महा प्रलय तक कुछ सुख दे नर यौनी देइ गिराय ॥ ५ ॥

यह सब मारग काल हद्द में जीवन को ले जाहिँ ।
कहीं बहुत सुख कहीं बहुत दुख फाँसी सब हि लगाहिँ ॥ ६ ॥

संत सतगुरू का जो मारग सबसे ऊपर जाय ।
काल हद्द के पार जीव को अमरानंद दिलाय ॥ ७ ॥

अब तुम सोचो कौन राह तुम लोगे मृत्यू बाद ।
नहीं हाथ में है कुछ तुम्हरे कर्म करैं बरबाद ॥ ८ ॥

काल जाल के सबही मग में दुःख कष्ट अधिकाय ।
जन्म मरण की फाँसी में जिव नित ही चक्कर खाय ॥ ९ ॥

जो तुम दुख से छूटन चाहो संत सरन लो आय ।
'धारा सिन्धु प्रताप' चरन में परम शांति मिल जाय ॥१०॥

५. शब्द १८६.

सजनी मत घबराओ । सत्गुरु प्यारे करेंगे सम्हार ॥ टेक ॥
जीव काज निज घर से आये । तज के पूरन सुख भंडार ॥
जीव समान फँसे तन पिँजरा, रहे जगत जीवन की लार ॥ १ ॥
बन .कैदी .खुद .कैदिन सँग रह, तोड़ा बन्दीखाना द्वार ।
.कैदिन का मल धोय साफ़ कर, लगे चढ़ान निकार निकार ॥ २ ॥
अपनी ओर से ख़ातिर कर कर, जीव लगाये चरन मँझार ।
भेद आपना खोल सुनाया मैं हूं परम सिन्धु औतार ॥ ३ ॥

भेद हमारा भी बतलाया, हो तुम बुन्द सिन्धु की सार ।
तुम को काल जाल के दुख में, देख आये हम करन उबार ॥ ४ ॥
परमारथ धन बिना माँग वे, लगे लुटावन कर कर प्यार ।
रूठे जीवन मना मना के, दई दात उन लख अधिकार ॥ ५ ॥
ताते यह दृढ़ निश्चय राखौ, ऐसे दाता परम उदार ।
ख़ाली कैसे रखेंगे उनको, जो माँगन गये उनके द्वार ॥ ६ ॥
देर हो रही केवल इस में, छूटे नहीं विकार तुम्हार ।
वे तो खींचैं घट में तुमको, तुम भागत हो जगत मँझार ॥ ७ ॥
सो याकी हू चिन्ता नाहीं, कहँ तक भागोगे तुम यार ।
हलगे हलगे खींच खींच के, इक दिन मन बस करैं तुम्हार ॥ ८ ॥
पकड़ा है समरथ ने तुमको, छोड़ेंगे नहीं अब ज़िनहार[1] ।
तुम्हरी चिन्ता उन मन धारी, तुम अचिंत रह धरौ पियार ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू ने, कीन्हा वादा ग्रन्थ मँझार ।
यह वादा रख सदा याद तुम, पक्का जानौ निज उद्धार ॥१०॥
जो उबार तुम जल्दी चाहौ, पटकौ सब गुरु चरनन भार ।
घट का घाट रात दिन उलटौ, जीवत देखौ बेड़ा पार ॥११॥

शब्द १८७.

सुत पकड़ी अब निज धारा हिये से शुकर करो ॥ टेक ॥
संशय भ्रम मन में मत राखो । गुरु की दया अपारा॥१॥हिये से०
रक्षा का कर शीस तुम्हारे । धरा गुरू कर प्यारा ॥२॥हिये से०
जब तब प्रगट तुम्हें दिखलावें। गुरु कर[2] हाथ तुम्हारा॥३॥हियेसे०
मत घबराउ मौज से जब वे। कर दें गुप्त सहारा॥४॥हिये से०
यह ज़रूर है जो घबरावै। सूझै जब अँधियार॥५॥हिये से०

१. कदापि, २. हाथ ।

खाली देख दया से गुरु की । अन्तर बाहर सारा ॥६॥हिये से०
इस में मौज मसलहत जो है । सो तुम नाहिँ बिचारा ॥७॥हिये से०
जो तुम मौज समझ लो पूरी । तो वह हो बेकारा ॥ ८ ॥हिये से०
ताते तुमसे रखें छिपाई । तुम रो करो पुकारा ॥ ९ ॥हिये से०
बहुत अजीब पन्थ सन्तन का । सब पन्थन से न्यारा ॥१०॥हिये से०
देखा सुना पन्थ नहीं ऐसा । आपा तोड़न हारा ॥११॥हिये से०
आपा ही है बड़ा आवरन । बुँद और सिन्धु मँझारा ॥१२॥हिये से०
समझो नहीं कोई हालत में । बन्द है दया दुआरा ॥१३॥हिये से०
दृढ़ प्रतीति और प्रीति धीर धर । पकड़े रहु गुरु धारा ॥१४॥हिये से०
'धारा सिन्धु प्रताप' सतगुरू । करि हैं इक दिन पारा ॥१५॥हिये से०

शब्द १८८.

जो चहिये तुम्हें भक्ति मार्ग में, सो गुरु ही से माँगो जाय ।
अति आरत हो दीन होय, हिरदय से बिनती करो बनाय ॥ १ ॥
इसी तरह करते रहो निश दिन, जब तक माँग न हो पूरी ।
थक कर बिनती छोड़ न बैठो, पीस पीस मन कर चूरी ॥ २ ॥
जो मन होवै कठोर ऐसा, दीन होय ना उमँग भरै ।
करै न हिय से विनय प्रार्थना, कभी नयन से जल न झरै ॥ ३ ॥
तो जैसी तैसी हिरदय से, निकल सकै वैसी ही करै ।
नाक रगड़ मस्तक पृथवी धर, हाथ जोड़ गुरु चरन पड़ै ॥ ४ ॥
पहिली माँग यही रख आगे, ताक़त बिनती की दो दयाल ।
और माँग जितनी हों मन में, उनका पीछै करै सवाल ॥ ५ ॥
नित्त कर्म में शामिल कर लो, बड़ी ये भक्ती की रीती ।
इसी रीति से इक दिन उमगै, घट में अधिक बिरह प्रीती ॥ ६ ॥

एक माँग यह भी लाज़िम है, कर्म जो मम तन मन से हो।
या मेरे सम्बन्ध में हो, वह चहे दूसरे जन से हो ॥७॥
मौज तुम्हारी से वह होवै, मैं भी उसे मौज जानूँ।
मौज समझ निश्चल विरती धर, दुख सुख उस में नहिँ मानूँ ॥८॥
तीसर माँग दर्श की माँगो, भजन ध्यान सतसंग बनै।
दृढ़ श्रद्धा विश्वास प्रेम में, दिन दिन मन स्रुत अधिक सनै ॥९॥
चौथी माँग सबर धीरज की, जब तक पूरा होय न काम।
दृढ़ प्रण करके माँगत ही रहु, जब तक मृतक नहीं तन चाम ॥१०॥
भजन ध्यान सतसंग से होवैं, क्रम क्रम संचित कर्म विनाश।
परारब्ध और क्रियामान भी, लगैं न जब घट मौज प्रकाश ॥११॥
सुख दुख जो होवै सो होवै, उसको भी समझो तुम मौज।
ऐसे इक दिन मार गिराओ, निश्चय तुम कर्मों की फ़ौज ॥१२॥
होय निःकरम परदे फोड़ौ, मालिक का दरशन पाऔ।
आवागमन मूल से काटो, अगम सिन्ध से मिल जाओ ॥१३॥
काम जो सब यह मुश्किल सूझै, उसकी मत परवाह करो।
रूखा फीका ढीला मन हो, होने दो कुछ चित न धरौ ॥१४॥
रूठो या नाराज़ होउ गुरु से, पर उनके बने रहौ।
बालक माता सम रिस हो हो, चरन प्रीति में सने रहौ ॥१५॥
बनो सूरमा पीठ न देना, सच्चा है संग्राम यही।
और काम सब धूल जगत में, परम श्रेष्ठ है काम यही ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से, इक दिन हो अवश्य पूरे।
काल करम मन माया दल कर, रन अजीत में हो सूरे ॥१७॥

शब्द १८९.

तुम जब लागोगे टूट गुरू के चरनन में, विरह बसाकर मन में ॥टेक॥

तब ही विघ्न सतावैं तुमको। इन्द्री खेंचैं ज़ोर दिखाकर भोगन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ १ ॥

मित्र पड़ोसी ताने मारैं। बहुत उड़ावैं हँसी जाय सब लोगन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ २ ॥

काल करै घट दूत उत्तेजन। भ्यानक कला चलाय भुलावै रोगन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ ३ ॥

फुसलावै बहकावै बहु विधि। जग की हानि दिखाय घुमावै सोगन में॥
विरह बसाकर मन में ॥ ४ ॥

घरवालिन को प्रेरित कर कै। हित दिखलाकर ऐब बतावै योगिन में॥
विरह बसाकर मन में ॥ ५ ॥

ऊँच नीच विधि विधि समझाकर। खैंचा चाहै भक्त जगत के फन्दन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ ६ ॥

गुरु का प्यारा गुरू दुलारा। डिगे न कोई भाँति शीस धर चरनन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ ७ ॥

काल तो डर अरु विघ्न दिखावै। दास फँसावन हेतु गिराकर बंधन में॥
विरह बसाकर मन में ॥ ८ ॥

उलटा असर होय दासन पर। वे डरकर घबराय गिरैं गुरु चरनन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥ ९ ॥

कभी काल सुख दे भरमावै। कोई विधि से टूट गिरै यह भोगन में ॥
विरह बसाकर मन में ॥१०॥

याते यही सीख अब लीजै।। सुख होवै या दुक्ख बढ़ाओ भक्ति इन में ॥
बिरह बसाकर मन में ॥११॥
कोई तरह भक्ती मत छोड़ो। उखली में सिर दिया डरो मत चोटन में ॥
बिरह बसाकर मन में ॥१२॥
होय सो होय करौ मत परवाह। आगे ही पग धरौ महान विकट रन में ॥
बिरह बसाकर मन में ॥१३॥
गुरु पारस सँग पारस बनिये। जार पतंगा सम तन सत्गुरु चरनन में ॥
बिरह बसाकर मन में ॥१४॥
रतन बनौ निज पिया मुकुट के। पिउ पिउ कूक मचाय पपीहा सम घन में॥
बिरह बसाकर मन में ॥१५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। दुख सुख बढ़ै तो और ज़ोर दो चरनन में ॥
बिरह बसाकर मन में ॥१६॥

शब्द १९०.

रखैं जैसे गुरु वैसे राज़ी रहो तुम।
मुसीबत के सदमे ख़ुशी से सहो तुम ॥ १ ॥
वे मन की गढ़त कई तरह से करेंगे।
कभी तन में बीमारी पैदा करेंगे ॥ २ ॥
वचन तान के वे कहावेंगे तुम पर।
कभी कोई हमला करावेंगे तुम पर ॥ ३ ॥
वे डर कई तरह के दिखावेंगे तुमको।
कभी दुश्मनों से भिड़ावेंगे तुमको ॥ ४ ॥
कभी धन का नुक़साँ करावें तुम्हारा।
कभी मान भंग वे करावें तुम्हारा ॥ ५ ॥

कभी मौत का डर दिखावेंगे तुमको ।
कभी दर्द ग़म में फसावेंगे तुमको ॥ ६ ॥

कभी बेसबब मन को रक्खैं उदास ।
कभी दात अपनी से करदें निरास ॥ ७ ॥

बहुत सी इसी क़िस्म की और घातें ।
करावेंगे सत्गुरु दुरुस्ती की बातें ॥ ८ ॥

वे अक्सर गढ़त में दया गुप्त करते ।
वे रक्षा का कर गुप्त ही शीस धरते ॥ ९ ॥

भजन ध्यान सत्संग के सँग गढ़त वे ।
करावैं तुड़ावैं सभी जग के फन्दे ॥१०॥

समझ मौज इन सब गढ़त की सज़ा में ।
रहो राज़ी बरतो हमेशा रज़ा में ॥११॥

किसी हाल में तुम चरन गुरु न छोड़ो ।
कभी कुछ भी होवे मुख उनसे न मोड़ो ॥१२॥

जो सत्गुरु करें उसमें जानो भलाई ।
हर हालत को जानो वह मौज ही से आई ॥१३॥

लगेंगे गढ़त में बड़े भारी झटके ।
यह मालूम होगा अधर में हो लटके ॥१४॥

वचन गुरु के उस वक़्त बिसरेंगे तुमको ।
वही मौक़ा है तुम रखो याद उनको ॥१५॥

वही मौक़ा अपने सँभलने का समझो ।
वही वक़्त मन के कुचलने का समझो ॥१६॥

वही वक़्त गुरु के सुमिरने का समझौ ।
वही वक़्त ख़ामोश रहने का समझो ॥१७॥
इसी ढँग से होवेगा मन तुम्हरा निर्मल ।
इसी ढँग से होवेगा चित तुम्हरा निश्चल ॥१८॥
परम सिन्धु की धार परताप से तुम ।
दया की लो बख़्शिश छुटो ताप से तुम ॥१९॥

शब्द १९१.

तुम सब्र कर शरनी गहो । गुरु की पियारे मन अधम ॥
नित दीन हो विनती करो । गुरु के चरन में दम ब दम ॥ १ ॥
इस बिकट जग के जाल से । जिव की रिहाई है कठिन ॥
गुरु दया से आसान है । छोड़ो न जो उनके क़दम ॥ २ ॥
है बैर भक्ति और जक्त में । भक्ती में होवै जग की हान ॥
गुरु भक्ति पूरी हो नहीं । छूटै न जो जग की शरम ॥ ३ ॥
कनक कामिन रूप है । माया का उससे हो उदास ॥
प्रेम की बख़्शिश कठिन है । चाह जग जो हो न कम ॥ ४ ॥
चित्त मन निश्चल व निर्मल । हों नहीं थोड़े बहुत ॥
भजन में आनन्द रस । मिलना न कब ही हो सुगम ॥ ५ ॥
खान रस आनन्द की है । भरी अन्तर सुरत के ॥
पर उसे रहता छिपाये । घट में मन माया का तम ॥ ६ ॥
होगा तम कम चाह जग की । जब घटेगी समझ लो ॥
चाह जग की घटेगी । जब सतगुरू का हो रहम ॥ ७ ॥
रहम सतगुरु करेंगे । जो संग उनका नित करो ॥
अंतरी और बाहरी । दोनों में हो आरूढ़ तुम ॥ ८ ॥

मोह जग का धीरे धीरे। ढीला करते रहु सदा ॥
और बढ़ाते जाओ मन में। ख़्वाहिशे[1] वस्ले[2] सनम[3] ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' किरपा। रहो नित्त निहारते ॥
काज पूरा वे करेंगे। करौ मत कुछ फ़िक्रो ग़म ॥१०॥

शब्द १९२.

परखौ निज अधिकार चाह से। उठै वह घट में किस प्रवाह से॥ १ ॥
सत्गुरु चरन रूप निज स्वामी। परमानंद अपार अकामी ॥ २ ॥
यह सब चहौ या सुख संसारी। कौन चाह है मन में भारी ॥ ३ ॥
कहाँ सत्य स्नेह लगा है। मन तुम्हार केंहि ओर पगा है ॥ ४ ॥
जिसको जिसकी चाहत जैसी। प्राप्त करन में देरी वैसी ॥ ५ ॥
चाह बिना कोइ वस्तु न पाई। चाह प्रेम की जड़ है भाई ॥ ६ ॥
काल सृष्टि की चाह उठाई। बढ़ बढ़ चाह पुकार कराई ॥ ७ ॥
धर धर ध्यान प्रार्थना कीन्ही। तब मालिक ने आज्ञा दीन्ही ॥ ८ ॥
.कुदरत का यह नियम रहाई। बिना चाह कोइ कुछ नहीं पाई ॥ ९ ॥
चाह यथोचित यत्न करावै। यत्न वस्तु को प्राप्त करावै ॥१०॥
प्राप्ति होय तब बढ़ै पियारा। प्यार पै सुख का दार मदारा ॥११॥
सुख दृढ़ करै दोऊ का संगा। बिछुड़ैं नहिँ रहै मेल अभंगा ॥१२॥
इन नियमों के मुआफ़िक़ काला। तजै कभी नहीं माया जाला ॥१३॥
याते चाह रूप निज केरी। नित प्रति हिये बढ़ाउ घनेरी ॥१४॥
होउ अचाह जगत भोगन से। प्रीति हटाओ जग लोगन से ॥१५॥
जा घट चाह होय ठहराऊ। धुनत बुनत रहै करत उपाऊ ॥१६॥
सुमिरन सतसँग भजन धियाना। विनय पुकार करै विधि नाना ॥१७॥
बेकल रहै अकुलात उदासा। जान न देवै ख़ाली स्वाँसा ॥१८॥

१ इच्छा, चाह. २ मिलाप, ३ प्रीतम.

खाते पीते चलते फिरते । याद पिया की नहीं बिसरते ॥१९॥
धर धर धीरज होय अधीरा । हिम्मत हार उठै हो वीरा ॥२०॥
खोया सुत खोजै जस माता । कभी निरास फिरै घबराता ॥२१॥
ऐसेहि जुग के जुग हो जावैं । मन और चित्त नहीं ठहरावैं ॥२२॥
होय स्वभाविक यह सब किरिया । खान पान आदिक सम चरिया ॥२३॥
उसके रोके रुक नहिँ सकती । उसकी उसमें सर्व आसक्ती ॥२४॥
रहैं देह से जग के माँहीं । सुमिरन ध्यान विदेह कराहीं ॥२५॥
खिंची रहै सुत धुर की ओरा । काली घटा लखै ज्यों मोरा ॥२६॥
वह लख लख के होवै मगना । बिरही को तपना अरु झुरना ॥२७॥
स्वामी को अस भक्ती प्यारी । सेवा बस फिर कुछ न विचारी ॥२८॥
जो उन नियम काल सँग बरता । सो बरतै सबहिन सँग करता ॥२९॥
काल ने चाही मायक रचना । तुम्हरा प्रीतम मालिक सजना ॥३०॥
जिस घट ऐसा प्रेम समाना । मालिक पीछे फिरै दिवाना ॥३१॥
उसको है सब सुख की त्यारी । पूरन पद का वह अधिकारी ॥३२॥
यह गति मेहर अपार निशानी । चाहे घट रस रहै छिपानी ॥३३॥
घट रस गुप्त करन में भेदा । बिरह तेज नभ डालै छेदा ॥३४॥
बाहर से रहै रूखा सूखा । प्रीतम दरस बढ़त रहै भूखा ॥३५॥
बढ़ बढ़ भूख लगावै लूका । सर्व आवरन देवै फूका ॥३६॥
इक दिन इकदम फूटै अण्डा । खंड खंड होवै ब्रह्मण्डा ॥३७॥
परम सिंधु में जाय समावै । परम पिया सँग इक हो जावै ॥३८॥
जो सुत बीच बीच रस चाहे । तनक तनक वह भूख घटाए ॥३९॥
पूरन पद में होवै देरी । तन तज यहाँ करै फिर फेरी ॥४०॥
जाका हृदय फुकत रहै निसि दिन । ब्रह से जलत रहै सब तन मन ॥४१॥

बेचैनी घबराहट होवै । सोच सोच कर पिय को रोवै ॥४२॥
पूरन दया इसी को जानौ । घट मग रस लघु किरपा मानौ ॥४३॥
रह रह कर घट में चिल्लाओ । अन्तर निसि दिन शोर मचाओ॥४४॥
बाहर से तुम रहौ ख़मोश । घटै नहीं अन्तर का जोश ॥४५॥
धीरज को कबही मत तजना । लीजो मान मोर यह बचना ॥४६॥
दरस प्यास धर धीर बढ़ाओ । बनै सो करते जाउ उपाओ ॥४७॥
सत्गुरु मालिक हैं नहिँ सोते । निशि दिन देखैं तुमको रोते ॥४८॥
रक्षा दया संग नित जानौ । मौज में ख़ास मसलहत मानौ ॥४९॥
तुम नहिँ समझ सकौ यह भेदा । तम ने बुधि विचार तुम बेधा॥५०॥
जो बेकली होय अत्यन्ता । तुम से सही न जावै चिन्ता ॥५१॥
तौ सत्गुरु को खोल सुनाओ । गुरु बचनन से धीर बँधाओ ॥५२॥
जो गुरु होंय न तुम्हरे पासा । तो प्रेमी जन ढूँढ़ौ ख़ासा ॥५३॥
वासे कहने में नहिँ हानी । वह भी गुरु का है निज प्रानी ॥५४॥
कुछ दिन चखौ बिरह रस स्वादा । करै जो दरस बिलास अगाधा॥५५॥
कुछ ही दिन का बिरह दुःख है । फिर तो अटल अपार सुक्ख है॥५६॥
तनि विचार दृष्टी से देखौ । सब भविष्य आनँद मय पेखौ ॥५७॥
बार बार गुरु मौज निहारौ । सत्गुरु चरन शीस पर धारौ ॥५८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' जपत रहु । उनही के पद माँहि पगत रहु ॥५९॥

शब्द १९३.

करौ तुम सत्गुरु की परतीति ॥ टेक ॥

सेवा में तन मन धन अरपौ । उनके चरन धरौ दृढ़ प्रीति ॥ १ ॥
उनही की अस्तुति करते रहौ । उनही का गाओ गुण गीत ॥ २ ॥
कुल कुटुम्ब को जान स्वारथी । गुरु ही को जानौ सत मीत ॥ ३ ॥

उनकी दया से सत पद पाओ। इक दिन काल करम को जीत॥ ४ ॥
थोड़े दिन जग में जीवन है। जानो तन बालू की भीत ॥ ५ ॥
कोई वस्तु न है ठहराऊ। यह है काल देश की नीत ॥ ६ ॥
माया मन जम काल कलाएँ। घेरें यहँ यह सभी पलीत ॥ ७ ॥
इन से भाग गहौ गुरु शरणा। यह पूरन भक्ती की रीत ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' ख्याल के। गहे रहौ तुम चरन पुनीत ॥ ९ ॥

शब्द १९४.

मुरशिदे[1] कामिल[2] मिले रंजे मकुन[3]।
हैं मुहाफ़िज[4] वे तेरे रंजे मकुन ॥ १ ॥
झेलीं तुमने आफ़तें बेहद यहाँ।
अब किनाराकश[5] हुए रंजे मकुन ॥ २ ॥
बाज़िये[6] शैताँ[7] चलेगी अब न कुछ।
क़ादिरे[8] कुल[8] हैं गुरू रंजे मकुन ॥ ३ ॥
मान मुरशिद की नसीहत[9] कर शग़ल[10]।
मिलेगा ख़ालिक़[11] तुझे रंजे मकुन ॥ ४ ॥
अंदरूने[12] पर्दा अपने जिस्म में।
रूह[13] का मैराज[14] कर रंजे मकुन ॥ ५ ॥
नूर मालिक का तुझे आवै नज़र।
मेहर से मुरशिद के फिर रंजे मकुन ॥ ६ ॥
यही है रस्ता निजाते[15] कुल्ल[15] का।
क़दम मुरशिद के पकड़ रंजे मकुन ॥ ७ ॥

१ सत्गुरु, २ पूरे, ३ रंज मत करो, ४ रक्षक, ५ किनारे लगे, ६ दाँव, ७ काल, ८ सर्व शक्तिमान, ९ उपदेश, १० अभ्यास, ११ सिरजनहार, १२ अन्तर में, १३ सुरत, १४ चढ़ाई, १५ पूरी मोक्ष,

रह के मशग़ूले[1] शग़ल[2] आवाज़[2] बन ।
खाक[3] पाए[4] पीर[5] खुद रंजे मकुन ॥ ८ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' तेरे पीर कुल ।
वस्ल[6] वाहिद[7] बख्शैंगे रंजे मकुन ॥ ९ ॥

शब्द १९५.

'धारा सिन्धु प्रताप' सुआमी । अद्भुत लीला धारी हो ॥ १ ॥
भक्ति अचरजी राह अनोखी । मुक्ति की कीन्ही जारी हो ॥ २ ॥
भक्त के तन को मन्दिर कीन्हा । तहँ सब साज़ सम्हारी हो ॥ ३ ॥
पौड़ी पर पौड़ी जहँ लागीं । रंगा रँग फुलवारी हो ॥ ४ ॥
प्रति इक पौड़ी पर सिंहासन । अपना सतगुरु डारी हो ॥ ५ ॥
भाँति भाँति की होय रोशनी । अद्भुत जोत उजारी हो ॥ ६ ॥
घंटा शंख मृदंग बजैं जहँ । सारंगी झनकारी हो ॥ ७ ॥
हंस हंसनी नाचैं गावैं । मुरली बजे करारी हो ॥ ८ ॥
सुरत सखी जहँ आरत करती । गुरु चरनन बलिहारी हो ॥ ९ ॥
इस मंदिर में कर कर पूजा । सुरत होय भव पारी हो ॥१०॥
संत सतगुरू ने कर किरपा । ऐसी भक्ति निकारी हो ॥११॥
यात्रा सब प्रेमी सुरतन की । घट में नित प्रति जारी हो ॥१२॥
जिनका प्रेम अभी कुछ कम है । उनकी हो रही त्यारी हो ॥१३॥
नीची सुरतन की यात्रा की । जल्द आयगी बारी हो ॥१४॥
बिना सफ़ाई मन के सूरत । कस अन्तर पग धारी हो ॥१५॥
यासे बार बार गुरु दाता । तुमसे कहैं पुकारी हो ॥१६॥
जग की चाह दूर कर मन से । फिरौ न भोगन लारी हो ॥१७॥
पिया मिलन की चाह बढ़ाकर । बनौ दर्श अधिकारी हो ॥१८॥

१ अभ्यासी, २ सुरत शब्द अभ्यास, ३ धूल, ४ चरण, ५ गुरू, ६ मिलाप, ७ मालिक.

सत्गुरु भक्ती करौ प्रेम से। मिला यह अवसर भारी हो ॥१९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरन पर। तन मन धन सब वारी हो ॥२०॥

शब्द १९६.

दृढ़ परतीति गुरू की धारौ। उनही के नित चरन निहारौ ॥ १ ॥
मन नित नई उचंग उठावै। चाहै सत्सँग तज भग जावै ॥ २ ॥
मानो मत तुम उसका कहना। आयू दिन दिन घटत समझना ॥ ३ ॥
तुम्हरेहि मन की नहिँ कुचाल है। सबके मन का यही हाल है ॥ ४ ॥
इसे वकील काल का जानौ। जग में फाँसनहार पिछानौ ॥ ५ ॥
जितने भये महात्मा साधू। मन की सबको रही उपाधू ॥ ६ ॥
तुम सह चुके अतोल कलेशा। अब कुछ दिन का है दुख लेशा ॥ ७ ॥
हिम्मत बाँध भुगत यह डालौ। जाल से कैसेहु सुरत निकालौ ॥ ८ ॥
जब घबराहट अधिक सतावै। जब तुमसे वह सही न जावै ॥ ९ ॥
तब फ़रियाद करौ अंतर में। पकड़ चरन सत्गुरु निज कर में ॥१०॥
देंगे गुरू ज़रूर शान्ती। मन की दूर कराय भ्रान्ती ॥११॥
ऐसी हालत होगी अक्सर। गुरु रक्खैंगे सिर रक्षा कर ॥१२॥
घबराहट में बहुत फ़ायदा। संत पंथ का यही क़ायदा ॥१३॥
इसके पीछे है सुख हर्षा। जस गर्मी से आवै वर्षा ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से। बेगि छुटौगे काल आद्या[1] से ॥१५॥

शब्द १९७.

जी चाहत है नित घट अन्तर। सतगुरु दर्शन देहिँ निरन्तर ॥ १ ॥
शब्दारस की धार न टूटै। परमानन्द सुरत नित लूटै ॥ २ ॥
पर है या में हानि इक भारी। होवै सुरत तृप्त मतवारी ॥ ३ ॥
नीचे घाट शान्ती आवै। सुत की चाल वहीं रुक जावै ॥ ४ ॥

१ माया

जैसे यहाँ सुक्ख संसारी । फाँस रहे हैं सब नर नारी ॥ ५ ॥
परमारथ में लगन न पावैं । सुख में माया काल भुलावैं ॥ ६ ॥
संत पंथ की ख़ास यह युक्ती । पाय न पंथी रस आसक्ती ॥ ७ ॥
रोवत रहै अकुलात पुकारत । मन मारत इन्द्रीं सब गारत ॥ ८ ॥
जब तक दयाल देश नहिँ पहुँचे । मगन होन की बात न सोचे ॥ ९ ॥
दें गुरु बीच बीच में कुछ रस । दया दिखाय बढ़ावें साहस ॥१०॥
युक्ति समझकर धीरज धारो । निश्चय हिय धर काज सम्हारो ॥११॥
पर इक बात अवश है सच्ची । मनकी हालत है बहु कच्ची ॥१२॥
जो नहिँ पाय ठिकाना घट में । कैसे सिमटै अन्तर बट में ॥१३॥
बाहर के सब जगत पदारथ । मन को दिखें करत किरतारथ ॥१४॥
कैसे इन्हें छोड़ कर भागै । जब तक घट रस में नहिँ पागै ॥१५॥
घट रस तीव्र प्रेम पर निर्भर । प्रेम की जड़ है संस्कार पर ॥१६॥
पिछला संस्कार नहिँ पूरा । मन आवै नहिँ प्रेम सरूरा ॥१७॥
तातें संस्कार बढ़वाओ । धीरे धीरे प्रेम बढ़ाओ ॥१८॥
संस्कार बढ़ने की युक्ती । शब्द गुरु की सेवा भक्ती ॥१९॥
गुरु जो बचन तुम्हें फ़रमाये । जबरन मन दे जाव कमाये ॥२०॥
धीरे धीरे शौक़ बढ़ाओ । घट में रस मात्रा अधिकाओ ॥२१॥
बनौ सुपात्र दया के दिन दिन । खिँचन लगै जग से घट में मन ॥२२॥
और न युक्ती याकी कोई । ध्यान भजन सत्सँग ही होई ॥२३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धियाओ । उनकी शरन छोड़ मत जाओ ॥२४॥

शब्द १९८.

षट दर्शन के सुनो विचारा । जो ऋषि मुनि ने किये प्रचारा ॥ १ ॥
भिन्न भिन्न सिद्धांत सबन के । देखे कहें जिन्हें नयनन के ॥ २ ॥

दर्शन अर्थ का है यह लेखा । दिव्य दृष्टि से जो कुछ देखा ॥ ३ ॥
हुआ भेद क्यों दिव्य दृष्टि में । मत फैलाए भिन्न सृष्टि में ॥ ४ ॥
कपिल मुनी ने सांख्य बखाना । जिसका यह संक्षिप्त विधाना ॥ ५ ॥
जीव और प्रकृति अनादी माना । जीवहि को उन पुरुष बखाना ॥ ६ ॥
पुर्ष एक नहिँ रहैं अनेका । जितने जीव पुरुष प्रत्येका ॥ ७ ॥
इसका लक्ष प्रकृति से मुक्ती । पाय अमर हो पुरुष वियक्ती ॥ ८ ॥
परमेश्वर को सांख्य न माना । ईश विषय पर चुप्प रहाना ॥ ९ ॥
जैन बुद्ध और सांख्य यह तीनौं । ईश विषय पर मिलते चीन्हौं ॥१०॥
षट दर्शन में योग की शाखा । सो ऋषि पातांजल रच राखा ॥११॥
आतम परमातम इन माना । जीवातम बंधन में जाना ॥१२॥
निज मत लक्ष यही इन ठाना । आतम दिव्य दृष्टि खुलवाना ॥१३॥
आतम पाय दरश परमातम । पूरन गत ले मिटै सर्व तम ॥१४॥
गौतम न्याय शास्त्र रच राखा । वैशेषिक कणाद मुनि भाखा ॥१५॥
दोनों ने एकहि मत ठाना । जीव ब्रह्म माया को माना ॥१६॥
इन तीनों का पूरन ज्ञाना । सबसे बड़ा लक्ष इन माना ॥१७॥
ईश्वर को इन सगुण बखाना । जीव ईश्वर से पिरथक माना ॥१८॥
मीमान्सा जैमिनि की रचना । राखे मुख्य वेद के बचना ॥१९॥
वेद वाक्य का सही समझना । वेद अनुसार कर्म नित करना ॥२०॥
ज्ञान प्राप्ती वेद अनुसारा । अपना मुख्य लक्ष इन धारा ॥२१॥
छटा शास्त्र वेदान्त कहाना । सो वियास मुनि ने रच ठान ॥२२॥
इन ने जीव अनेक न माना । एक आत्मा सब को जाना ॥२३॥
माया ब्रह्म दोऊ इन माना । जीवहि ब्रह्म रूप पहिचाना ॥२४॥
षट दर्शन के यह सिद्धंता । इनमें है प्रत्यक्ष भिन्नता ॥२५॥

पक्षपात है जिनके मन में । कहैं भिन्नता कुछ नहिँ इनमें ॥२६॥
खींच तानकर सबन मिलावैं । खिचें नहीं तो ताने जावैं ॥२७॥
एक बात इनमें मैं जानूँ । सब सिद्धांत सही मैं मानूँ ॥२८॥
एक सत्य के सब यह टुकड़े । नीचे के छोटे और बड़े ॥२९॥
जस छै अंधे मिल इक संगा । पकड़ टटोलें गज के अंगा ॥३०॥
भिन्न भिन्न अँग कर में गहें । रूप भिन्न भिन गज के कहें ॥३१॥
पूरा रूप कोई नहीं जानें । टुकड़े देखें अपनी तानें ॥३२॥
सब हैं निज निज मत में सही । पूरन सत्य कोई नहिँ लही ॥३३॥
संत बखानै पूरन रूपा । यह सब पड़े भर्म के कूपा ॥३४॥
जिसने जितनी दृष्टी पाई । जितनी जिसकी हुई रसाई ॥३५॥
उसने निज पद पूरा जाना । जितना देखा किया बखाना ॥३६॥
उसने समझा मैं सब जाना । कूप समुद्र जान मगनाना ॥३७॥
भाग न थे सत्गुरु नहिँ पाये । सिंधु किनारे कीच मँझाये ॥३८॥
हो निर्पक्ष संत मत देखौ । सब संतन की बानी पेखौ ॥३९॥
एकहि भेद सबन ने गाया । पूरा देख एक ही पाया ॥४०॥
यह सब ऋषी मुनी आचारज । काल सृष्टि का सारैं कारज॥४१॥
भिन्न मते कालहि चलवावैं । भिन डोरीं बट जाल बनावैं ॥४२॥
बच इन से लो सत्गुरु शरना । चहो जो छोड़न जन्म अरु मरना ॥४३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' सुमिरना । काल कला से फिर नहीं डरना॥४४॥

शब्द १९९.

कालहु योग मार्ग चलवाए । अपने दूत अचार्य बनाए ॥ १ ॥
चौरासी आसन करवाऐ । चौरासी पँच अग्नि तपाए ॥ २ ॥
हठयोग योग अष्टांग चलाए । संयम नियम बहुत करवाए ॥ ३ ॥

नेती धोती बस्ती किरिया । पच पच मरे काज नहिँ सरिया ॥ ४ ॥
प्राणायाम और ध्यान समाधा । योगी बैठ गुफा मन साधा ॥ ५ ॥
कोई दिल पर ज़रब लगावैं । क़लब[1] ज़नी करि हृदय जगावैं ॥ ६ ॥
बुद्धियोग और योग विचारा । कोई अचारज यही पसारा ॥ ७ ॥
कोई बाम मार्ग में फाँसे । काम जाल में लीन्ह गिरासे ॥ ८ ॥
योग के मुद्रा पाँच निकारे । योगी बहुत इन्ही में मारे ॥ ९ ॥
प्रथम खेचरी मुद्रा बरनी । जीभ उलट तालू पर धरनी ॥१०॥
युक्ति सहित अमृत रस पीना । सिद्ध होय रहै काल अधीना ॥११॥
बास भूचरी मुद्रा स्वाँसा । मध्यनासिका करै निवासा ॥१२॥
प्राण अपान आदि वायू से । होय न मिलै मुक्ति याहू से ॥१३॥
नाम चाचरी मुद्रा तीसर । करै निवास दृष्टि के भीतर ॥१४॥
अग्र भाग नासिका धियाना । उलट दृष्टि नभ माँहि समाना ॥१५॥
है अगोचरी चौथी मुद्रा । श्रवण करै अनहद धुनि क्षुद्रा ॥१६॥
नाम उन्मुनी पंचम मुद्रा । लागै सिद्धि समाधी निद्रा ॥१७॥
सिद्धी शक्ती प्राप्त करावै । अहंकार वृद्धी करवावै ॥१८॥
साँकिन डाँकिन और पद्मिनी । कोई भयानक कोई मोहिनी ॥१९॥
कोई डरावैं कोई भुलावैं । नाना विधि के जाल बिछावैं ॥२०॥
जीव रखै पिँजरे के बीचे । कोई ऊपर कोई नीचे ॥२१॥
नाना विधि शुभ कर्म करावै । फल चुकाय कर दूर हटावै ॥२२॥
कर्मी स्वर्ग तलक ले जावै । फल भुगतैं फिर नीचे लावै ॥२३॥
योगी ऊँचे लोक चढ़ावै । ऋद्धि सिद्धि दे मार गिरावै ॥२४॥
पिँजरे के जो बाहर ताके । तिनके रोकै सबही नाके ॥२५॥
सतगुर से कोइ बस नहिँ चालै । तो भी मग में पत्थर डालै ॥२६॥

१ मुसलमान फ़क़ीरों के योगाभ्यास करने का तरीक़ा जो दिल पर ज़रब लगा कर किया जाता है ।

अपनीसी सब कर कर हारै । फिर सतगुरु आज्ञा सिर धारै ॥२७॥
ताते सत्गुरु शरण सम्हारौ । उनका बल ले काल पछाड़ौ ॥२८॥
आवागमन न छूटै गुरु बिन । भोगौ दुःख जन्म भर पुनि पुन ॥२९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' भजो नित । तौ पाओगे अटल परम गत ॥३०॥

शब्द २००.

मत नवीन वेदान्त का, जानौ वाचक ज्ञान ।
ताके अनुयायी सभी, ब्रह्म बने पहिचान ॥ १ ॥
मुनि वियास वेदान्त चलाया । पहिले योग अष्टांग कराया ॥ २ ॥
योगी बेध पिण्ड षट चक्कर । चढ़े ब्रह्मण्ड भक्ति मग पग धर ॥ ३ ॥
जब सालोक मुक्ति गति पाई । तब विचार इक मन में आई ॥ ४ ॥
लोक प्रलय में होय विनाशा । तम बढ़ गुप्त करै परकाशा ॥ ५ ॥
फिर सृष्टी उत्थान होय जब । लोक भक्त उतरैं नीचे सब ॥ ६ ॥
आवागमन चक्र में आवैं । कर्म जाल में पुनि बिंध जावैं ॥ ७ ॥
सारूपी सायुज्जी मुक्ती । पावन हेतु करी उन युक्ती ॥ ८ ॥
ज्ञान नेष्टा[1] मग वे धाऐ । लक्ष समाय ब्रह्म गति पाऐ ॥ ९ ॥
सच्चा योगेश्वर पद पाया । तऊ काल से धोखा खाया ॥१०॥
लक्ष रूप सूक्षम पिरकिरती । ऊपर चढ़े बिना नहीं दिखती ॥११॥
रहे यों पिरकृति सीमा माहीं । पूरन मोक्ष नहीं उन पाहीं ॥१२॥
संत सत्गुरू उन नहीं पाऐ । ताते आवागमन रहाऐ ॥१३॥
अब सुन वाचक ज्ञानी लीला । जिन छोड़ा सब योग वसीला ॥१४॥
बिना योग और भक्ती पंथा । भए ब्रह्म सब पढ़ पढ़ ग्रंथा ॥१५॥
घड़ी एक दो में भये ज्ञानी । पूरन ब्रह्म गती उन ठानी ॥१६॥
छुटे न विषय भोग ना कर्मा । कहैं यह सब हैं मन के धर्मा ॥१७॥

[1] अभ्यास.

करैं विचार जभी मन माँहीं । ब्रह्म एक छिन में बन जाहीं ॥१८॥
लोभ मोह मद तृष्णा क्रोधा । काम ईर्षा वैर विरोधा ॥१९॥
छल और दम्भ कपट कुटिलाई । निरभय इन में बरतैं जाई ॥२०॥
हिंसा मदिरापान[1] कुकर्मा । करैं बतावैं मन के धर्मा ॥२१॥
कहैं व्यास यह पंथ न जाना । कलियुग में हमने पहिचाना ॥२२॥
ज्ञानी और मूरख जीवन में । यही भेद यह ब्रह्म हैं मन में ॥२३॥
जग कारज में धर आसक्ती । जने जने की करते भक्ती ॥२४॥
दीन अधीन हो करैं .गुलामी । जोड़ जोड़ कर करैं सलामी ॥२५॥
जब छेड़ो परमारथ बाता । तुरतं अकड़ कर बनैं विधाता ॥२६॥
कोई ज़रूरत भक्ती केरी । ब्रह्म गती हित उन नहिँ हेरी ॥२७॥
जग के तुच्छ पदारथ काजा । भक्ति करन में आय न लाजा ॥२८॥
जग में पिटैं कुटैं दुख सहैं । तो हू ब्रह्म अपन को कहैं ॥२९॥
धोखा देवैं चोरी करैं । परनारी परधन सब हरैं ॥३०॥
गली गली जूते चटकावें । तहू अपन को ब्रह्म बतावें ॥३१॥
इनकी गती शेखचिल्ली की । घटती कथा मूस बिल्ली की ॥३२॥
इन अंधन को को समझावै । इनके बिन को नर्क बसावै ॥३३॥
कीन्ही बड़ी भूल इन जीवन । ब्रह्म बने कीचड़ में सन सन ॥३४॥
तीरथ व्रत और मूरति वाले । और हू नीच धर्म जिन पाले ॥३५॥
सब वाचक ज्ञानी से बेहतर । दीन रहैं अपने जिय अन्तर ॥३६॥
अपनी असली गति पहिचानैं । जैसी है तैसी ही मानैं ॥३७॥
झूठे ब्रह्म बने यह वाचक । रहते द्वार द्वार के याचक ॥३८॥
स्वारथ हित किंकरता ठानी । अंतर रहैं ब्रह्म अभिमानी ॥३९॥
यह हँग सब से बड़ा विकारा । और विकार रहैं इस लारा ॥४०॥

१ शराब पीना.

सोई हँग वाचक में भारी। ताते वाचक बड़ा विकारी ॥४१॥
आतम बुँद और सिन्धु मँझारी। अहंकार ही पर्दा भारी ॥४२॥
सो हँग अपने अंतर भरकर। पावै बुन्द सिन्धु गति क्योंकर ॥४३॥
यह तो बात सही में मानूं। आतम परमातम इक जानूं ॥४४॥
पर आतम बुँद मन माया में। बँध कर रहे तत्व काया में ॥४५॥
सिन्धु बुन्द सन माटी माहीं। सिन्धु रूप गति सबहि नसाहीं ॥४६॥
सिन्धु बुन्द माटी सन बोलै। मैं हूं सिन्धु अपार अतोलै ॥४७॥
क्या यह बात मानने योगा। जब तक सिंधु से रहे वियोगा ॥४८॥
बुन्द चहे इकता समुद्र से। सकै न कर निज शक्ति चुद्र से ॥४९॥
तो समुद्र से विनती लावै। तब समुद्र इक लहर उठावै ॥५०॥
लहर गिरै आ सिन्धु किनारे। माटी से बुँद काढ़ निकारे ॥५१॥
डालै खींच समुद्र मँझारे। तब बुँद सिन्धु रूप गति धारे ॥५२॥
आतम परमातमहि पुकारै। तब परमातम दया विचारै ॥५३॥
लहर रूप इक धार उठावै। सो सतगुरु बन कर जग आवै ॥५४॥
बुन्द लहर का हो संयोगा। बुन्द तजै मन इन्द्री भोगा ॥५५॥
छोड़ै जग की आशा वासा। यों माटी से होय उदासा ॥५६॥
गुरु बुँद माटी धोय बहावैं। निर्मल कर निज संग लगावैं ॥५७॥
युक्ति यथोचित करते जावैं। आतम बुँद यों सिन्धु मिलावैं ॥५८॥
तब बुँद होय सिंधु के रूपा। ब्रह्म और पारब्रह्म सरूपा ॥५९॥
पूरन सिंधु गती तब पावै। सिंधु लहर बुँद इक हो जावै ॥६०॥
वाचक धारैं सबहि विकारा। कहैं बुन्द है मन से न्यारा ॥६१॥
कर्ता कर्मों का मन जानैं। आतम बुन्द साची मानैं ॥६२॥
निस्सन्देह सही यह बाता। पर या में इक मन की घाता ॥६३॥

मन ही कर्म विचार उठावै। सब विचार मन ही में आवै ॥६४॥
तो वाचक के ब्रह्म विचारा। जानो सब मन ही के कारा ॥६५॥
मन ही में सब अहं भराना। मन ने हि ब्रह्म रूप निज ठाना ॥६६॥
पर मन को तुम जड़ पहिचानी। सो जड़ हुआ ब्रह्म और ज्ञानी ॥६७॥
आतम चैतन बुन्द बिचारी। फँसी रही जड़ ब्रह्म मँझारी ॥६८॥
जड़ मन ब्रह्म कर्म का कर्ता। यहँ ही रहै जन्मता मरता ॥६९॥
करै कर्म मन निज स्वभाव वस। पावै फल जग में जस का तस ॥७०॥
सो देखौ नित अपनी आँखन। ऐसे हो तुम रहे ब्रह्म बन ॥७१॥
छूटैं यहाँ कर्म फल भोगा। सो चौरासी नर्क में होगा ॥७२॥
कर्म कटे बिन चाह मिटे बिन। झूठा ब्रह्म बनै तुम्हरा मन ॥७३॥
ताते छोड़ो यह लवारपन। गिरो जाय सत्गुरु के चरनन ॥७४॥
बुन्द करै जब सत्गुरु भक्ती। गुरु पद गहै कमावै युक्ती ॥७५॥
हो निःकर्म तजे जग चाहें। मन के सब विकार जब दाहें ॥७६॥
ब्रह्म गती तब पूरन पावै। फिर अपने को ब्रह्म कहावै ॥७७॥
तब बुँद मन तज सिन्धु समावै। पूरन सिन्धु रूप हो जावै ॥७८॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताई। जो नहिँ मानो भुगतो भाई ॥७९॥

शब्द २०१.

भक्ति तो करै सभी संसार। मूढ़ परखैं नहिँ सार असार ॥ १ ॥
भक्ति देवन की जो करते। मनोरथ जग के हिय धरते ॥ २ ॥
काज जब नर भक्ती से होय। पूछते देवन को नहीं कोय ॥ ३ ॥
काज जब धन नर बल सारैं। सींग पर देव जीव मारैं ॥ ४ ॥
न देवै निज शक्ती जहँ काम। अराधें प्रेत देव और राम ॥ ५ ॥
उसी को समझैं परमारथ। रहैं यों लटके निज स्वारथ ॥ ६ ॥

यह तो उन लोगों की है बात । पुराने जिनके हैं ख़्यालात ॥ ७ ॥
जो आलिम नई रोशनी के । मग़रबी ढँग सीखे नीके ॥ ८ ॥
न जानें कौन चीज़ ईश्वर । कहाँ है किस मूली की जड़ ॥ ९ ॥
जानते पागल हैं हरि जन । अक़्ल का कहें उन्हें दुश्मन ॥१०॥
प्रशंसा साइँस की करते । उसी के मद भूले फिरते ॥११॥
उसी की ईजादों को देख । ताक़ में धरा विचार विवेक ॥१२॥
सुनो साइँस की नादानी । हुई जो जड़ में दीवानी ॥१३॥
शक्ति जड़ ही की पहिँचानी । उसी में रह गई अटकानी ॥१४॥
अकर्षण बिजली गरमी भाप । इन्हीं की करी तौल और नाप॥१५॥
मानसी शक्ती बुद्धि विचार । ज्ञान आदिक न किये निर्धार ॥१६॥
जो शक्ती अमल करै जड़ पर । करै ईजादें अद्भुत तर ॥१७॥
करौ क्यों अमल नहीं उस पर । वह रहती मानुष तन अन्तर ॥१८॥
शक्ति अपनी को क्यों तज दीन । शक्ति जड़ता की सब कुछ चीन॥१९॥
करौ निज शक्ती का निर्धार । तौ पाओ सर्व ज्ञान का सार ॥२०॥
बुद्धि शक्ती पर करौ विचार । कौन क्या वस्तु विचार तुम्हार॥२१॥
शक्तियाँ क्या हैं लोभ अरु क्रोध । ईर्षा तृष्णा बैर विरोध ॥२२॥
अमल कर जड़ इनकी निरखौ । किस तरह उपजैं यह परखौ ॥२३॥
अधूरी साइँस पर फूले । असलियत छोड़ मूढ़ भूले ॥२४॥
सहोगे आगे दुख बहुतक । शिथिल इन्द्री हों तन मिरतक ॥२५॥
यही है विद्या की भक्ती । काल की फाँसन की युक्ती ॥२६॥
इसी से सब विद्वान फँसे । सरसुती नागिन रूप डसे ॥२७॥
जो चाहो अपना तुम उद्धार । तजो यह बुद्धि विचार असार ॥२८॥
पाउ नहीं मुक्ती विद्या से । करो करनी गुरु किरपा ले ॥२९॥

आओ निध्यासन सीढ़ी पर। बैठ घट धुन की पीढ़ी पर ॥३०॥
करौ गुरु भक्ती इक अंगी। धार घट प्रीति एक रंगी ॥३१॥
धियाओ 'धारा सिन्धु प्रताप'। करौ नित इसी नाम का जाप ॥३२॥

शब्द २०२.

काल ने मारग रचे अनेक। भक्ति और ज्ञान विचार विवेक ॥ १ ॥
रखीं सब में अपनी घातें। लगावे लालच दे लातें ॥ २ ॥
सुनौ अब देश भक्ति की बात। काल मन माया की जो घात ॥ ३ ॥
सभी हों देश भक्त भक्ता। कौन है इनका भगवन्ता ॥ ४ ॥
करैं इक दूसर की भक्ती। समझते इसको मग मुक्ती ॥ ५ ॥
हमें तुम प्यास में जल दो दान। तुम्हें हम करेंगे अन्न प्रदान ॥ ६ ॥
हमें तुम रोग में औषध दो। वोट मेम्बर होने की लो ॥ ७ ॥
पढ़ावेंगे हम पुत्र तुम्हार। करौ खादी तुम त्यार हमार ॥ ८ ॥
नहीं पूरा सब बिधि जन कोय। कोइ गुण ज़्यादा कोई कम होय ॥ ९ ॥
तुम्हें मैं दूँ मुझ को तुम दो। दोउ मिल मुक्ति पदारथ लो ॥१०॥
कमी आपस में हो पूरी। यही है समाज दस्तूरी ॥११॥
फ़ायदा सबका हो जिसमें। पिलौ सब तन मन से उसमें ॥१२॥
सभी की स्वतंत्रता का काज। करैं सो मिल के सर्व समाज ॥१३॥
जान इसको ही पुन्न अरु दान। तुझे मैं मानूं तू मोहि मान ॥१४॥
कौन है भक्त को भगवन्ता। दोउ पद पर है सब जनता ॥१५॥
निकलता है इससे सिद्धंत। सर्व जन भक्त ज़मीं भगवन्त ॥१६॥
पृथ्वी का इक टुकड़ा लो। जहाँ जो कोई पैदा हो ॥१७॥
उसी को मानो निज पितु मात। उसी के रहौ सदा गुन गात ॥१८॥
रहो जो सुखी वहाँ तुम यार। उसे समझो उसका उद्धार ॥१९॥

करौ जो सब मिल ऐसी भक्ति । मरे पर पाओ पूरन मुक्ति ॥२०॥
मूर्खों समझो तनक विचार । यह ही क्या मुक्ति पदारथ सार ॥२१॥
यह तो आपस का है व्यवहार । सभी का है करतव्यी कार ॥२२॥
यही है नियम समाजों का । देश और जाति के काजों का ॥२३॥
होय नहिँ इसमें जो शामिल । योग नहिँ समाज के काहिल ॥२४॥
न इसका मुक्ती से सम्बंध । यह है नर सृष्टी का ही प्रबंध ॥२५॥
नहीं है निष्फल यह करतूत । करै पर कर्म फन्द मज़बूत ॥२६॥
मिलै फल इस ही जीवन में । चहे आगे के जन्मन में ॥२७॥
पर इसमें यह भी है मुमकिन । शुभ अशुभ करनी जावे बन ॥२८॥
मिलैं फिर दोनों दुख और सुख । रहै कर्ता इनका मनमुख ॥२९॥
मुक्ति का मारग जानौ और । आत्मा का घट अन्तर ठौर ॥३०॥
जो बोओगे सो काटोगे । नीर में क्षीर न पाओगे ॥३१॥
बुद्धि से सोचो करो विचार । नहीं तो बहत रहो भवधार ॥३२॥
जो इनमें अधिक बुद्धि के लोग । करैं इक और विचार प्रयोग ॥३३॥
देश सेवा की जड़ है क्या । प्रेम जीवन का हिये बसा ॥३४॥
गुप्त परमातम है घट घट । जीव है रूप उसका परघट ॥३५॥
प्रेम सब जीवों से करना । उसे परमातम से गिनना ॥३६॥
भेद जिव परमातम में क्या । उन्हें सतगुरू से नहीं मिला ॥३७॥
सिन्धु परमातम है निरमल । जीव है बुन्द फँसी दलदल ॥३८॥
प्रेम जो बुन्द के साथ करे । चित्त मन उस से बाँध धरै ॥३९॥
रहै माया मन संग फँसा । काल के जाल रहै गिरसा ॥४०॥
प्रीति धर करे मदद उनकी । लगै उन सँग गाँसी मनकी ॥४१॥
प्रेम धारो गुरु चरनन में । गुरू हैं सिन्धु धार तन में ॥४२॥

लगाओ सिन्धू से निज डोर। तनी रहे सुरत सिन्धु की ओर ॥४३॥
करौ भी जो तुम जिव उपकार। गुरू चरनन पर दो सब वार ॥४४॥
प्रीति जग जीवों से तोड़ो। गुरू और गुरुमुख से जोड़ो ॥४५॥
नहीं यह देश तुम्हारा है। तुम्हें जाना भी पारा है ॥४६॥
लोक जो सिन्धु केन्द्र से दूर। वहाँ चैतन है माया पूर ॥४७॥
तुम्हारा धाम केन्द्र अस्थान। देश भक्ती से नहिँ निरवान ॥४८॥
देश भक्ती तो अच्छा काम। पर इसमें रहो काल के दाम[1] ॥४९॥
सतगुरू 'धारा सिन्धु प्रताप'। गहो उन चरन मिटाओ ताप ॥५०॥

शब्द २०३.

करो रे मन सतगुरु चरन निवास ॥ टेक ॥
रहे सदा जन्मान जन्म तुम, माया काल गिरास ॥ १ ॥
तम कीचड़ में सन तुम खोऐ, अपने होश हवास ॥ २ ॥
अब सतगुरु दाता दयाल ने, करी अनुग्रह ख़ास ॥ ३ ॥
निज शरनी में खेंच बुलाया, तुम्हें बिना परयास ॥ ४ ॥
दया प्रतक्ष दिखाय दिलाया, अपना बल विश्वास ॥ ५ ॥
है अब उचित यही मन तुमको, करो भक्ति बन दास ॥ ६ ॥
जम नगरी से वेग उबर कर, करो ब्रह्म पद वास ॥ ७ ॥
आतम बुँद तज वह विदेस भी, पहुँचै निज पिया पास ॥ ८ ॥
'धारा सिंधु प्रताप' दया से, होवै पूरन आस ॥ ९ ॥

शब्द २०४.

गुरु प्यारे से नेहा लगाओ सजन। मन में बसाओ उनके चरन ॥ १ ॥
पतिव्रता का प्रण उनके सँग। सदा निबाहो लेकर शरन ॥ २ ॥
परमारथ और स्वारथ सब में। और न जानौ कोई अपन ॥ ३ ॥

१ जाल.

सतगुरु ही का करौ भरोसा । औरों से सब तोड़ लगन ॥ ४ ॥
जो होवै सो होय नतीजा । उस ही मैं तुम रहौ मगन ॥ ५ ॥
मन को बुरा लगै चहे अच्छा । जानौ उसी में भलाई अपन ॥ ६ ॥
बुरा कभी नहिँ करेंगे सतगुरु । यह निश्चय धर मानों वचन ॥ ७ ॥
काम क्रोध की सनी बुद्धि से । तुम नहिँ जानों कोई मरम ॥ ८ ॥
मौज में राज़ी रहे बिना तुम । नहिँ कर सकते ठीक भजन ॥ ९ ॥
'धारा सिन्धु प्रताप' हाथ में । जानौ अपना तुम दामन ॥१०॥

शब्द २०५.

(१)

आया मास अषाढ़ घटा छाई काली काली ।
बिजली छिन छिन चमक सुरत को करती मतवाली ॥
मोर और दादुर शोर मचाँय ।
बरसाती रँग देख सहेली हिय अन्तर हुलसाँय ॥
मेह रिम झिम रिम झिम बरसे ।
परम पिया की सुरत नारि पिया दर्सन को तरसे ॥

(२)

गुरु पूनों गुरु पूज प्रार्थना कर कर के हारी ।
लागा सावन मास नैन से आँसू भये जारी ॥
बिरहिनी बहुत रही घबराय ।
हरियाली चहुँ ओर देख सुत का हिय जिय मुरझाय ॥
मेघ की झड़ी लगा भारी ।
बिन प्रीतम के दरस सुरत घट सुलगै चिनगारी ॥

(३)

भादों में सब सखी करें व्रत देवन को परसें।

शिव और कृष्ण गनेश विष्णु को पूजि पूजि सरसें ॥

मनोरथ संसारी माँगें।

परम पिया की प्रेमिन पिया बिन रोय रैन जागें ॥

करें क्या चलै न कोई उपाय।

बीती सब बरसात अबहुँ नहिँ आये प्रीतम हाय ॥

(४)

आया मास कुँआर पित्र सब उतर उतर आये।

मिरतक हू के फिरे दिवस सब खा पी तृप्ताये ॥

रामलीला अब होन लगी।

पिया से बिछुड़ी सिया ताहु की अब तक़दीर जगी ॥

ईर्षा कर बिरहिन जलती।

बहुतक किये उपाय तौहु निज पिया से नहीं मिलती ॥

(५)

आया कातिक मास सफ़ाई घर घर में होवे।

बिरहिन सतगुरु दया धार से मन मल २ धोवे ॥

दिवाली दीप दान निरखे।

जुआ खेल कर हार जीत में भाग जगत परखे ॥

मंत्र निज निज सब लोग जगायँ।

बसीकरन का मंत्र पिया पर सब बिरहिन करवायँ ॥

(६)

शर्द ऋतू के संग सहालग लागी अगहन मास।

खुली ब्याह ऋतु देख बिरहिनी झुर झुर होय उदास ॥

वस्त्र हर कोई गरम बनाय ।
विरहिन के घट तपन वस्त्र की हाजत नहीं दिखाय ॥
जपै नित वशीकरन का मंत्र ।
कैसे प्रीतम मिलैं काल माया से होय स्वतंत्र ॥

(७)

पूस में बाढ़ी आस लगा अब मंत्र का होन असर ।
झलक स्वप्न में देख आस धर करती रैन बसर[1] ॥
कान में पड़े कभी कुछ बोल ।
झलक बोल जब बन्द कोई दिन होवै डावाँ डोल ॥
झलक जब प्रघटै तब हरषाय ।
हो हो बन्द और प्रघट झलक या बोल तड़प अधिकाय ॥

(८)

माघ वसन्त बहार सुहावन लगी आस बढ़ती ।
सूरत सुन सुन शब्द अधर में अब नित प्रति चढ़ती ॥
प्रेम का रँग घट में चटकै ।
ले ले रस धुनि रूप जगत में नहिँ प्यारी भटकै ॥
गुरू की परखै अब महिमा ।
प्रेम उमँग उत्साह बढ़ै जब पावै घट मर्मा ॥

(९)

फागुन लाया धूम धाम होली के रँग छाये ।
घंटा शंख मृदंग सरङ्गी घट में बजवाये ॥
करै सुत सतगुरु की आरत ।
फागुन चढ़ गई तीन धाम गुरु पद तन मन वारत ॥

[1] व्यतीत.

खेलती हंसन सँग होली।
प्रेम गुलाल उड़ाय गुरू पर मारै भर झोली॥

(१०)

चैत अँधेरे पाख सुरत गई तिमिर खंड मैदान।
हुए गुरू जहँ संग चली लख लख अचरजी निशान॥
किया जाय भँवर गुफा विश्राम।
मुरली धुन में सुना होत उच्चारण सोहं नाम॥
हिँ डोला झूलै हंसन संग।
शुक्ल पक्ष के लगत, उड़ी आगे ज्यों उड़त पतंग॥

(११)

सुन्दर सुन्दर दृश्य राह के लख लख हुई मगन।
मस्ती रही हिय छाय होय कब प्रीतम संग मिलन॥
महीना आया अब वैसाख।
सत्तलोक में पहुँच रही अब अमी सिंधु रस चाख॥
तपन भई मिलने की गाढ़ी।
सत्तपुरुष के दर्शन कर ब्रह हिये अधिक बाढ़ी॥

(१२)

जेठ तपन के संग बिरह की तपन बढ़ी अत्यन्त।
अलख अगम के दर्शन कर ऊगे घट भान अनन्त॥
पिया से मिली जाय सर्वांग।
खुला प्रेम भण्डार हुई जब पिया के सँग एकांग॥
मिला अब परम शांति विश्राम।
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से हो गया पूरन काम।

शब्द २०६.

सुरतिया भटक रही, कस मिलै पियारा कंथ ॥टेक॥
बन बन भ्रमत फिरै मतवारी, कहँ पावै पिया पंथ ॥ १ ॥
बहुत लबार लालची गुरु जग, बैठे बने महंत ॥ २ ॥
मान बड़ाई विषय भोग के कारन करैं ठगंत ॥ ३ ॥
भोले धनी भक्त को पावैं, पढ़ैं सुनावैं ग्रंथ ॥ ४ ॥
बहुत प्रकार बनाय सुनावैं, परमारथ विरतन्त ॥ ५ ॥
छल और दंभ कपट में पूरे, निपट अभक्त असन्त ॥ ६ ॥
ऐसे लम्पट गुरु की संगत, छोड़ो सजन तुरंत ॥ ७ ॥
जो यह सीख न मानो मेरी, पाओ दुख अत्यन्त ॥ ८ ॥
जो सत प्रेम हृदय में तुम्हरे, निश्चय भेटैं संत ॥ ९ ॥
मिलैगा उनकी ही संगत से, कंथ अनादि अनंत ॥१०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' रटो नित, तो पाओ सत्पंथ ॥११॥

शब्द २०७.

तुम्हें चाहिये लक्ष ऊंचा उठाओ। पियारे पदारथ को बेहद बढ़ाओ ॥ १ ॥
जो वस्तू चहो तुम अधिक सबसे जग में ।
उसे हर तरह दिल में पूरा बनाओ ॥ २ ॥
करो या तो ऐसा जो चाहें हों दिल में ।
वह सब एक इक करके मन से हटाओ ॥ ३ ॥
जो समझो कठिन दिल से सबको हटाना ।
बड़ी सब से ले बाक़ियों को मिटाओ ॥ ४ ॥
जो हो सब से प्यारी उसे फिर न छोड़ो ।
उसे सर्व अँग से बढ़ाते ही जाओ ॥ ५ ॥

जो देखा है उसका यहाँ रूप छोटा ।
वह है तुच्छ उस पर निअत मत डुलाओ ॥ ६ ॥
वह फ़ानी है आखिर में देवेगा धोखा ।
तुम्हें वह तजै या तुम्हीं छोड़ जाओ ॥ ७ ॥
जो विद्या चहौ तुम तो विद्या हो ऐसी ।
कि कुल विश्व का ज्ञान पूरा ही पाओ ॥ ८ ॥
मरे पर भी तुम्हरा कभी सँग न छोड़ै ।
तुम आस ऐसी विद्या की मन में बसाओ ॥ ९ ॥
जो हो आस स्त्री या पति की या सुत की ।
तो रूप उसका बेहद्द दिल में बढ़ाओ ॥१०॥
वह हो मोहनी मन हरन रूप ऐसा ।
कि सूरज असंखन उसी में जमाओ ॥११॥
वह हो ज्ञान विद्या में सब भाँति पूरन ।
कि कामिल उसे पाके तुम भी हो जाओ ॥१२॥
वह होवै अमर सँग तजै ना तुम्हारा ।
और उसके ही सँग तुम अमर धाम पाओ ॥१३॥
जो दौलत को चाहो तो दौलत लो ऐसी ।
कि तुम लक्ष्मी अपनी दासी बनाओ ॥१४॥
यह क्या लक्ष्मी एक, लक्ष्मी असंखन ।
बुला के दुआरे पै भिक्षुक बनाओ ॥१५॥
न हो ख़ाली भंडार दौलत का कब ही ।
हमेशा दोऊ हाथ जग में लुटाओ ॥१६॥

बढ़ा के ऐसी चाह दाता को खोजो ।
पुकारें दिवस रैन हिय से उठाओ ॥१७॥

पियासा तड़पता है पानी को जैसे ।
पपीहा रखै जैसे स्वाँती का भाओ ॥१८॥

इसी भाँति प्रिय वस्तु अपनी को तड़पो ।
विनय दीन दाता को अपनी सुनाओ ॥१९॥

सुनेगा वह बेशक यह विश्वास धारो ।
थको मत रुको मत यह करते ही जाओ ॥२०॥

मिलैं जब वह दाता तो दें घट में परचा ।
तो ले करके परचा उन्हीं को धियाओ ॥२१॥

करो उनकी सेवा उन्हीं का ही सत्संग ।
उन्हीं के कँवल पद में श्रद्धा बढ़ाओ ॥२२

बतावेंगे मारग सुरत शब्द का वे ।
उसे धीर और प्रेम से नित कमाओ ॥२३॥

मगर ख़्याल रखना न दे काल धोखा ।
वह चाहै तुम ऐसा पदारथ न पाओ ॥२४॥

दिखावेगा वह भी तुम्हें अपने परचे ।
कि तुम झूंठे गुरु में उलझ धोखा खाओ ॥२५॥

जो गुरु की जगत वृद्धि में वृत्ति देखो ।
जो गुरुवाई से मिलकियत बढ़ती पाओ ॥२६॥

जो खुद शब्द में रत न हो और कुटुम को ।
कमाई धनादिक हढ़ातेही पाओ ॥२७।

समझ लैना दिल में यह धोखे की टट्टी ।
मिलैगा न कुछ पास का भी गँवाओ ॥२८॥
जो हो दिल में सच्चे व जग से निराशा ।
मिलैं सच्चे दाता यह दृढ़ निश्चय लाओ ॥२९॥
वह हैं संत पूरे जो हैं सच्चे दाता ।
उन्हीं की शरण से परम प्यारा पाओ ॥३०॥
बढ़ावैं वे अधिकार पहिले तुम्हारा ।
तजौ तुम न धीरज न जल्दी मचाओ ॥३१॥
यह दृढ़निश्चय दृढ़निश्चय दृढ़निश्चय रक्खो ।
कि इक दिन अवश प्राण प्यारे को पाओ ॥३२॥
'गुरू धारा सिन्धू प्रताप' हि को जानो ।
दया उनकी ले काज पूरा बनाओ ॥३३॥

शब्दा २०८.

जो एक का होकर रहै मन चित्त दृढ़ चरनन धरै ।
और प्रीति गाढ़ी सब तरफ़ से खींचकर उससे करै ॥ १ ॥
तब फ़िक्र पूरी ख़ास प्रीतम ख़ास प्रेमी की रखै ।
सब प्रीति वालों में उसे ही ख़ासकर अपना लखै ॥ २ ॥
तुम छाँट लो उस एक को निज प्रीति करने के लिये ।
जो विश्व में सब से बड़ा उसको बसाओ निज हिए ॥ ३ ॥
यों तो कुल मालिक बड़ा है सर्व व्यापक और अपार ।
वही सृष्टि और विश्व है वह घाल काल है सार असार ॥ ४ ॥
धारों से धारें फँसावै और उबारै धारों से ।
दुख दिलावे सुख दिलावै निज हुकम बरदारों से ॥ ५

निराकार अरूप है वह रंग रेखा से रहित।
माया से निर्लेप है और फिर भी है माया सहित ॥ ६ ॥
प्रीति उस से ख़ास कर यह जीव कर सकता नहीं।
चाहिये साकारों को साकार प्रीतम हो कहीं ॥ ७ ॥
ढूंढ़ौ अब साकारों में जो होवै सब से बहतरीं[१]।
सोचो अब क्या चहिये उस में जो हों लक्षण बरतरीं[२] ॥ ८ ॥
प्रीति दुनिया में करै नर उसी नर से जो करै।
मदद और रक्षा दुखों में और सब व्याधा हरै ॥ ९ ॥
आधि व्याधि उपाधि हमको और मरने का है दुख।
जो छुड़ावे इन से हम को और देवे अमर सुख ॥१०॥
वही हो सकता हमारा बड़ा सबसे प्रेम पत।
उसीको तन मन अरपकर करना चहिये प्रीति सत ॥११॥
कहते हैं सब महात्मा है शब्द का ही एक मग।
जो करै जिव सब दुखों और मौत से पूरा अलग ॥१२॥
शब्द मारग जो बतावै और दिखावै अपना बल।
घट में परचा दे बतावै काल पर है वह सबल ॥१३॥
वही है सब से बड़ा रक्षक उसी को पकड़ लो।
चरण उसके निज हिये में प्रेम से धर जकड़ लो ॥१४॥
धीरे धीरे प्रीति उसकी हिये में भरते रहो।
सब तरफ़ से तोड़ कर उस एक की शरनी गहो ॥१५॥
जो मदद माँगे कई से किसी का पूरा नहीं।
प्रीति उसकी बँटी रहती है नहीं पूरी कहीं ॥१६॥

१ सब से अच्छा. २ सब से श्रेष्ठ.

वह मुसीबत में मदद पावै न पूरी किसी से ।
इक बतावै दूसरे को हो मुख़ातिब[1] जिसी से ॥१७॥
इससे पकड़ो मूल को सब डालियों को छोड़ कर ।
हैं भरे सब मूल में पकड़ो उसे जी तोड़ कर ॥१८॥
यही है पतिवरत का पूरा धरम पालो इसे ।
इस्त्री जो और लँग ताकै पती छोड़ै उसे ॥१९॥
"धारा सिन्धु प्रताप" सत्गुरु हैं पती पूरे सही ।
हो अमर पाया परम पद जिन शरन उनकी गही ॥२०॥
यों तो वे भी हैं अरूपी पर धरा उनने अकार ।
पकड़ वह आकर तुम भी हो सको हो निराकार ॥२१॥

शब्द २०९.

तज लाज जगत् की वह विध्न भक्ति में करै ।
डर जाति बंधु कुटुम के से काज नहीं सरै ॥ १ ॥
है वैर जक्त भक्ति में यह ख़ूब समझ लो ।
वह भक्ति न कर सकै जो कुल कुटुम से डरै ॥ २ ॥
दुनिया को देखलो यह कभी संग ना चलै ।
सब दूर खड़े देखें जीव चिता में जलै ॥ ३ ॥
यह मतलब के यार सभी निपट स्वारथी ।
इनका हो पूरा काम जीव जिये या मारै ॥ ४ ॥
यह रहें बहुत राज़ी करें ख़ातिरें उसकी ।
जो लावे धन कमाके चाहे चोरियाँ करै ॥ ५ ॥
तुम डरो मत किसी से कभी गुरु की भक्ति में ।
कोई बुरा कहै कहै कोई जरै तो जरै ॥ ६ ॥

[1] कहै.

जो दुनिया में बिभिचार करै उसको तो देखो।
वह इज़्ज़त आबरू उठाय ताक़ में धरै ॥ ७ ॥

उसे कितना ही समझाउ कभी बाज़ न आए।
वह नाम खानदान की परवाह न करै ॥ ८ ॥

कूचा[१] व मकाँ दिल रुबा का छोड़े ना कभी।
वह पिटे कुटै मार खाय वहीं जा अड़ै ॥ ९ ॥

दिलबर[२] भी कभी खफ़ा होय घर से भगावै।
कभी गालियाँ देवै कभी दो लत्तियाँ जड़ै ॥१०॥

वह बुरा भला जूंठा अपना खाना खिलावै।
और बातों में फुसलाय इसका सारा धन हरै ॥११॥

यह बेहया खुश हो हो के क़ुर्बान हुआ जाय।
इसकी बला से दुनिया दीन भाड़ में पड़ै ॥१२॥

यह इश्क़ में बेखौफ़ रहे मस्त और अंधा।
ना रिश्तेदार दोस्त और ना खुदा से डरै ॥१३॥

वह जिस्मो ज़ात लोक व परलोक बिगाड़ै।
वह नर्क व चौरासी की परवाह ना करै ॥१४॥

ऐसे बुरे कामों की पाउ बहुत मिसालें।
चोरी शराब जूआ मनुष जिसमें जागिरै ॥१५॥

अब हिम्मत और बहादुरी इन लोगों की देखो।
धिक्कार ऐसे भक्त को जो भक्ति में डरै ॥१६॥

खानाखराब[३] होता है जो झूठे इश्क़ में।
और बुरी मौत मरके नर्क कुण्ड में सड़ै ॥१७॥

१ गली. २. प्रीतम. ३. बरबाद.

लानत[1] उसे जो क़ादिरेमुतलक़[2] के इश्क़ में ।
दुनिया का ख़्याल ज़रा ज़रा बात में करै ॥१८॥
निर्लोभ व निर्भय उसे होनाही चाहिये ।
जो सतगुरू दयाल की भक्ती का दम भरै ॥१९॥
जो होय भक्त कच्चा तो मुज़ायक़ा[3] नहीं ।
वह पकेगा ज़रूर जो गुरु दर से ना टरै ॥२०॥
कुछ हर्ज नहीं पहिले जो होवे तियाग कम ।
वह धीरे धीरे संग संस्कार के बढ़ै ॥२१॥
अच्छी है भक्ति झूठी भी बिल्कुल न होने से ।
सच्ची वह होगी धीरे धीरे जैसे मन मरै ॥२२॥
लाज़िम है गुरू भक्त को सत्संग ना तजै ।
और मन से सत्त नाम सत्त शब्द को बरै ॥२३॥
जो भक्ति असल कर न सकै नक़्ल ही करै ।
सत्संग का प्रभाव धीरे धीरे ही पड़ै ॥२४॥
गुरु "धारा सिन्धु प्रताप" की दाया बनी रहै ।
कैसाही होवे सेवक भव सिन्धु से तरै ॥२५॥

शब्द २१०.

करामात के ग्राहक जो नर । जिनका निश्चय उस पर निर्भर ॥ १ ॥
मन उलझावें करामात में । चहैं करशमे बात बात में ॥ २ ॥
कहैं गुरू जो पूरन स्वामी । सर्व समर्थ और अन्तर्यामी ॥ ३ ॥
तो वे बरतैं क्यों जीवन सम । भूलैं डरैं सहैं पीड़ा ग़म ॥ ४ ॥
झूठी बातैं सच्ची मानैं । क्या वे भूत भविष्य न जानैं ॥ ५ ॥
क्यों नहिँ अंतर से वे निरखें । क्यों नहिँ सत्य असत को परखें ॥ ६ ॥

१ धिक्कार. २ सर्व शक्तिमान. ३ हर्ज

क्यों आपत्ती में घबरावें । क्यों आपत्ती सहैं सहावें ॥ ७ ॥
क्यों उनको हो कष्ट अचानक । पड़ै एकदम दुःख भयानक ॥ ८ ॥
क्यों वे विरती अचल न धारें । क्यों बीमारी में तन गारें ॥ ९ ॥
क्यों वे घर में वैद्य बुलावें । क्यों औषधियाँ खाँय खिलावें ॥१०॥
और अनेक तुच्छ बातन में । जिव सम बरतें जग घातन में ॥११॥
मूरख भक्त देख अस लीला । तुरत भक्ति में होवे ढीला ॥१२॥
मन में जब संशय अस आवें । चहिये बुद्धि काम में लावें ॥१३॥
यह है काल देश की नीती । भव में सब पालें भव रीती ॥१४॥
परम सिन्धु ने बाँधी नीतें । लोक लोक में न्यारी रीतें ॥१५॥
सतगुरु परम सिन्धु की धारा । हैं नहीं परम सिन्धु से न्यारा ॥१६॥
मालिक खुद निज नीति जो तोड़ै । उनकी तोड़ी फिर को जोड़ै ॥१७॥
उनसे एक बार जो टूटी । सबके लिये रास्ता फूटी ॥१८॥
जितने हुए काल औतारी । बनी जहाँ तक नीति सम्हारी ॥१९॥
तोड़े नियम कर्म के जबही । उनहूं भोगे फल तब सबही ॥२०॥
रामचंद्र सीता को रोए । गति पति अपनी सब विधि खोये ॥२१॥
भये मूर्छित त्रिया सोग में । त्यागी मत सीता वियोग में ॥२२॥
पूछैं वृक्ष नदी परवत से । नीचे गिरे नरहु की गति से ॥२३॥
तुमहि बताओ कहँ है सीता । तुमहि बनो मम दुख में मीता ॥२४॥
धोबी तान एक जब मारी । उचित अनउचित कुछ न विचारी ॥२५॥
गर्भवती सिया दीन्ह निकारी । फिरी वह बन बन मारी मारी ॥२६॥
जरासंध ने कृष्ण भगाए । देश छुड़ाय विदेश बसाए ॥२७॥
लीलाकरी पाण्डव मित्रा । क्या क्या अच्छे करे चरित्रा ॥२८॥
बहु चालाकी झूंठी बातें । करीं जीतने की सब घातें ॥२९॥

ब्रह्म अवतार जीव सम बरते। पतित जीवहू अस नहीं करते ॥३०॥
धनुष यज्ञ और बनोवास में। जनक विदेही पड़े त्रास में ॥३१॥
पढ़ो कथा शिव भस्मासुर की। शिव नहीं जानी घात असुर की ॥३२॥
पहिले शिव दीन्हा वरदाना। पीछे पड़ा उन्हें पछिताना ॥३३॥
नर बन देवन नरकृत कीन्ही। सृष्टि नियम के रहे अधीनी ॥३४॥
कबहू कला प्रचंड दिखाई। जा कारन औतार धराई ॥३५॥
कबहूं दुष्टन से वे हारे। कबहू दुष्टन को संहारे ॥३६॥
कबहुँ भये वे निपट अजाना। कबहुँ दिखाया दिव्य गियाना ॥३७॥
कबहुँ रोय रोय पछिताए। कबहुँ सूरता बहुत दिखाए ॥३८॥
तीन पैंड कीन्हा जिन जग मठ। नांघि न सके नंद की चौखट ॥३९॥
ऋषि मुनि जन के सुनो चरित्रा। लड़े वसिष्ठ और विश्वामित्रा ॥४०॥
नारद श्रृंगी ऋषि पाराशर। दुर्वासा मैत्री आदिक नर ॥४१॥
काम क्रोध तृष्णा मद माते। पतितहु नर इन से शरमाते ॥४२॥
ब्रह्म औतार देव औ ऋषि मुनि। देखो सबको इक इक गिन गिन ॥४३॥
सिद्धी शक्ती सबही धरते। जीव दशा में सबही बरते ॥४४॥
योगिन जिन सतगुरु नहिँ पाए। ले सिद्धी फूले न समाए ॥४५॥
जग में लगे करन उपयोगा। मान बड़ाई रस उन भोगा ॥४६॥
कुछ दिन भोग गिरे पुनि नीचे। काल योनि चौरासी खींचे ॥४७॥
सतगुरु जग जिस कारण आवें। उसी काम में शक्ति दिखावें ॥४८॥
संसारिन से गुप्त रहावें। दासन अंतर कला दिखावें ॥४९॥
उनके जग कामों में भी वे। करैं सहाय दया परचे दे ॥५०॥
सेवक जो अधिकारी जैसे। तिनको प्रगट होंय वे तैसे ॥५१॥
संसारिन से दूर रहावें। नहिँ संसार बिगाड़न आवें ॥५२॥

अधिकारिन को खेंच बुलावें। उनको अन्तर शक्ति दिखावें ॥५३॥
निशिदिन बरतैं जीव समाना ।हो आसक्त अशक्त अजाना ॥५४॥
जो उनका है शब्द स्वरूपा । व्यापक रहै जीव घट कूपा ॥५५॥
बरतैं सिंधु मौज अनुसारा। गुप्त या पिरगट देहिँ सहारा ॥५६॥
सतगुरु मौज मसलहत जानैं। जीव बुद्धि संशय में सानैं ॥५७॥
भ्रम संशय करि करि अज्ञानो। करै आपनी ही नित हानी ॥५८॥
सतगुरु भक्ती कठिन समझना। खड़ग धार पर है ज्यों चलना ॥५९॥
भरमी जीव गिरै नीचे को । निश्चल रहै चढ़ै ऊंचे को ॥६०॥
ताते संशय करौ न कोई । बुद्धी को यहँ दखल न होई ॥६१॥
अपने काम पर दृष्टी राखौ । धर विश्वास प्रेमरस चाखौ ॥६२॥
'धारा सिन्धु प्रताप' रटौ नित। संशय भरम करौ कबही मत ॥६३॥

शब्द २११.

आज बड़े भाग जगे सत्गुरु हम पाए ।
किरपा कर दयाल चरण कँवल में लगाए ॥ टेक ॥
अब कुछ चिन्ता ना करौ दयाल शरण आए।
बहुत काल बीद काल जाल तोड़ पाए ॥ १ ॥
बैरिन ने दाउ पेच बहुत दिन चलाए ।
पटक पटक नर्क अग्निकुंड में जलाए ॥ २ ॥
धर धर चौरासी लाख योनि में घुमाए ।
महा दुख भयंकर में सदा हम रहाए ॥ ३ ॥
करै को सहाय कोई रक्षक नहिँ पाए।
देखूं जित बैरी तित मार ही मचाए ॥ ४ ॥

दशों दिशा शोर मार मार ही सुनाए।
घोर दुख हमारे का अंत ना दिखाए ॥ ५ ॥
बहु बने हिती हमार प्रीति बहु बढ़ाए।
जान उन्हें अपना हम मोह बहु लगाए ॥ ६ ॥
पीछे वे दूत काल ही के हम पाए।
बातें दे धोखे दे दाँत उन दिखाए ॥ ७ ॥
सुख की आशा दिलाय दुक्ख को बढ़ाए।
आँख बदल लात मार संग निज छुड़ाए ॥ ८ ॥
बड़ी ही कठिनता से बैरी छोड़ पाए।
रक्षक सत्गुरु दयाल शरनी अब आए ॥ ९ ॥
जैसे कोई कड़ी धूप तप तप मुरझाए।
जीभ कंठ सूख बड़ी प्यास से घबराए ॥१०॥
आँखन में प्राण आयँ मूर्छित हो जाए।
ठंडी हवा, छाया, हिम शीतल जल पाए ॥११॥
ऐसे गुरु मिले आय भाग मम जगाए।
गावैं गुण कौन कौन महिमा है अथाए ॥१२॥
'धारा सिंधु प्रताप' की जो जीव शरण आए।
उनकी गति ऐसी है धन धन गुहराए ॥१३॥

शब्द २१२.

सज सज सब चलीं आज गगन को सुरतियाँ।
सत्गुरु का उमँग उमँग गावत आरतियाँ ॥टेक॥
नभ बनाय थाल कहकशां की जोति बलियाँ।
छाँट करैं धुनन की लगाय के निरतियाँ ॥ १ ॥

मोती सतगुरु के हार काज सब चुनतियाँ।

गुरु के गले डाल डाल करें दंडवतियाँ ॥ २ ॥

सतगुरु छवि निरख निरख होवत मोहितियाँ।

भर भर उर प्रेम होंइ शब्दन में रतियाँ ॥ ३ ॥

बिगस बिगस हंसन से करतीं रस बतियाँ।

मानसर नहाय गती निर्मल पावतियाँ ॥ ४ ॥

महासुन्न पार भँवरगुफा को चढ़तियाँ।

सेत सूर दरसत मुरली की धुन सुनतियाँ ॥ ५ ॥

आगे चढ़ सत्त लोक पाई सत्‌गतियाँ।

सत्त पुरुष दरशन कर बीन में पगतियाँ ॥ ६ ॥

अद्भुत लीला निहार आगे पग धरतियाँ।

अलख लोक जाय अलख दश सब करतियाँ ॥ ७ ॥

वहँ से सब मिलके ऊपर को सिधारतियाँ।

भेद अगम लोक का जो गुप्त सो खुलतियाँ ॥ ८ ॥

पाय यहाँ पूरन अति निर्मल सब गतियाँ।

परम सिंधु ओर धाय पिया से मिलतियाँ ॥ ९ ॥

'धारा सिंधु प्रताप' की सब महिमा गावतियाँ।

जिनकी किरपा महान् से मिली सुगतियाँ ॥१०॥

शब्द २१३.

सत्गुरु शरण जीव जो आवैं। भिन्न भिन्न इस्थितियाँ लावैं ॥ १ ॥
कोई तीर्थ मूर्त व्रत वाले। पूजैं भूत प्रेत बैताले ॥ २ ॥
जग कारज सिद्धी के कारन। षट कर्मन में उलझैं यह जन ॥ ३ ॥
बीमारी में धरें उठाने। गंडे लेंय बुलाय सयाने ॥ ४ ॥

सुनें कथा सतनारायण की । बँधी टेक है रामायण की ॥ ५ ॥
तुलसी पीपल भैरों सेवें । नित प्रति सूरज को जल देवें ॥ ६ ॥
गंगा जमुना पर्व नहावें । जानें नदियाँ पाप कटावें ॥ ७ ॥
और अनेक करें पाखंडा । कुछ शुभ करनी का यह डंडा ॥ ८ ॥
बार बार बहु धोखे खावें । तोभी इनसे मन न हटावें ॥ ९ ॥
कोई आवें बाचक ज्ञानी । कोई आवें वेद—पुरानी ॥१०॥
कोई नास्तिक कुछ नहीं मानें । ईश्वर देव सभी भ्रम जानें ॥११॥
कोई एक ही ईश्वर मानें । देव प्रेत सब झूठ बखानें ॥१२॥
गुरू चरन जो करें अधारा । सब यह छुटें असार विचारा ॥१३॥
यह सब अटक भटक छूटै जब । गुरु भक्ती के होय योग तब ॥१४॥
पहिला दर्जा यह पहिचानो । चिन्ह तरक़्क़ी का यह जानो ॥१५॥
सब षट धर्मा झूठे भासैं । चाहें जग वृद्धी की नासैं ॥१६॥
एक ही चाह रहे मुक्ती की । यही रीति है गुरु भक्ती की ॥१७॥
संसारिन का सँग सब छूटै । जग कृत की आसक्ती टूटै ॥१८॥
ठहरै चित्त रूप और धुन में । प्रीति बढ़ै गुरु प्रेमी जन में ॥१९॥
दूसर दर्जा यह है भाई । मुक्ती मग अब कर में आई ॥२०॥
तीसर दर्जा प्रेम जगावे । पिया मिलन की विरह बढ़ावे ॥२१॥
मन में तड़प बेकली आवे । उदासीनता हिरदे छावे ॥२२॥
रोवै कभी कभी घबड़ावे । कोई जग कृत नाहिँ सुहावे ॥२३॥
कोइ विधि मन नहिँ जमै जमाये । पाहुन सम रहै चित्त उठाये ॥२४॥
तपन जलन जब बढ़ै हिये में । काँटा कसकत रहै जिये में ॥२५॥
कर्म जलें सब विरह तपन में । प्रीतम छाऐ रगन रगन में ॥२६॥
ढीले होवें काम क्रोध मद । पहुँचै सूरत काल देश हद ॥२७॥

स्त्री पति सुत आदिक प्रीती । ऊपर मन रख बरतै रीती ॥२८॥
मुक्ति द्वार पहुँचन का यह चिन्ह । रहै अवस्था ऐसी बहु दिन ॥२९॥
कर्म कटाने में लागें दिन । क्रम क्रम होत जाय निरमल मन ॥३०॥
जब तब मौज कर्म अनुसारा । कई प्रकार का दिखै उजारा ॥३१॥
जब तब सतगुरु धुनहुँ सुनावैं । जब जैसी वे मौज करावैं ॥३२॥
रोक रूप धुन बिरह बढ़ावैं। विरह अग्नि से कर्म जरावैं ॥३३॥
घट में परचे बहुत दिखावैं । निज प्रेमिन को धीर बँधावैं ॥३४॥
मारग में सिद्धी जो आवैं । सतगुरु ऊपर ही बरकावैं ॥३५॥
और अनेकन कला काल की । हटैं दया से गुरु दयाल की ॥३६॥
सुरत गिरावन यह सब आवैं । ताते सत्गुरु दूर भगावैं ॥३७॥
बिरह प्रेम बल सुरत चढ़ावैं । धीरे धीरे पार लगावैं ॥३८॥
अन्त होय जब ब्रह आपत्ती । जानो स्रुत पाया घर मुक्ती ॥३९॥
यह है चौथा दर्जा भाई । यही अवस्था अन्तिम गाई ॥४०॥
ता पाछे कहना नहिँ सुनना । स्रुत देखै सब अद्भुत रचना ॥४१।
पाय पिया ले परमानन्दा । अमर होय छूटै दुख द्वंदा ॥४२॥
निज निज दर्जा अब पहिचानो । चाल आपनी चलती जानो ॥४३॥
जल्दी जल्दी बदलो दर्जे । जल्द चुकाओ काल के क़र्ज़े ॥४४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धियाओ । भक्ति बढ़ा दर्जा बदलाओ ॥४५॥

शब्द २१४.

मेरे धुर के भाग हैं जगे सखी । मोहि सत्गुरु चरन लगाये ॥
गुण गाऊँगी, गुरु प्यारे के गुण मैं गाऊँगी ॥टेक॥
तन मन धन गुरु चरनन अरपूं ।
जिन मम काज सम्हारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ १ ॥

मुझ पापिन पर किरपा धारी।
कीन्हा चरण अधारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ २ ॥
फिरती थी मैं जग में भटकत।
बिन रक्षक गुरु प्यारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ३ ॥
जानूँ न कौन कहाँ से आई।
फँस रही जगत मझारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ४ ॥
ना जानूँ परमारथ क्या है।
कौन है मम भरतारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ५ ॥
अन्त काल का ख़्याल न था कुछ।
फिरती बिना सहारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ६ ॥
मन तरंग सँग बहती निशि दिन।
इन्द्री भोगन लारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ७॥
फाँसत रहे जाल में मुझको।
कुल कुटुम्ब परिवारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ८ ॥
पाँच दूत और सकल विकारा।
रूँधत रहे हत्यारे ॥ गुण गाऊँगी ॥ ९ ॥
सत्गुरु ने अब दया दृष्टि से।
सब से कीन्हे न्यारे ॥ गुण गाऊंगी ॥१०॥
सत संगत् में लिया मिलाई।
करके चरण दुलारे ॥ गुण गाऊँगी ॥११॥
काल दयाल और सुरत शब्द के।
भेद बताये सारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१२॥
भक्ति मुक्ति मारग गुरु दाता।

समझाया कर प्यारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१३॥
शब्द नाव बैठाय करावैं ।
एक दिवस भौ पारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१४॥
हुई प्रतीत बेगि अब पहुँचूँ ।
चैतन सिंधु अपारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१५॥
सतगुरु की महिमा को जानै ।
गाय गाय सब हारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दयाला ।
मैं चरनन बलि हारे ॥ गुण गाऊँगी ॥१७॥

शब्द २१५.

हम करैं गुरू इक अर्ज़ खड़े तुम्हरे दर पर ।
दया करो प्रभु हम पर ॥ टेक ॥
हम सब दीन दुःख के मारे ।
सब विधि हीन अधीन तुम्हारे ही किंकर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ १ ॥
पतित उधारन नाम तुम्हारा ।
लाज रखौ पतितन की प्यारे करुणाकर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ २ ॥
दुख भंजन दुखियों के दुख में ।
तुम बिन कौन सकै गहि हम दासन का कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ३ ॥
गूँगे ढोर समान पिता हम ।
नाथहीन सब फिरते मारे इधर उधर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ४ ॥

काल खिलाड़ी बाँधा हमको ।
ज्यों बन्दर को बाँध खिलावै बाज़ीगर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ५ ॥
फिर पीछे मेंढक गति करके ।
निगले हमको पकड़के काल नाग फणिधर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ६ ॥
जस बकरे को माँस अहारी ।
पाल पोस खा जाय काट के कलिया कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ७ ॥
काल ऐसे ही अंश तुम्हारी ।
निगल उगल चौरासी के देवै चक्कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ८ ॥
ताते हम आए हैं सुन कर ।
हमरे परम पिता आए हैं नर तन धर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥ ९ ॥
बिलखत तड़पत धाये तुम तन ।
खोलो नाथ किवाड़ अनाथ हमें लख कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१०॥
पावैं पुत्र पिता के दर्शन ।
तुम भी देखौ खड़ीं अंश दर क्या गति कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥११॥
जब देखौ तुम हालत हमरी ।
रहा न जावै तुम से पिता धीर धर कर ॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१२॥

भड़केगा फिर रहम तुम्हारा।
कंठ लगाओ तुरत नयन आँसू भरकर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१३॥

दया तुम्हारि और दर्शन से।
धुलें हमारे पाप गिरें सब मल कट कर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१४॥

निरमल होय सुरत पद परसै।
शब्द स्वरूपी पिया पाय घट में चढ़ कर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१५॥

लोक लोक और धाम धाम में।
धीरे धीरे चढ़त जाय धुन सुन सुन कर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१६॥

पहुँचे द्याल देश में इक दिन।
परम पिया से मिलै प्रेम हिये भर भर कर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१७॥

अटल अटूट परम सुख पावै।
बिचरै हो निर्बन्ध देश निज अजर अमर॥
दया करो प्रभु हम पर। ॥१८॥

हे सत्गुरु अब किरपा धारो।
आशा पूरण करो आये हम जो हिय धर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥१९॥

'धारा सिन्धु प्रताप' दयानिधि।
लेकर भुजा पसार लगाउ हमें निज उर॥
दया करो प्रभु हम पर ॥२०॥

शब्द २१६.

हे सतगुरु सुआमी अगाध और अपार ।
दया कर करो नाथ मेरा उधार ॥ १ ॥
खड़ा है यह दर पर अभागा अनाथ ।
रहम खाके दाता गहो इसका हाथ ॥ २ ॥
सिवा तुम्हारे सूझै नहीं कोई ठौर ।
न तुम बिन दिखै नाथ अब कोई और ॥ ३ ॥
तुम्हीं गुरु तुम्हीं मात तुमहीं पिता ।
फिरैं मारी सुरतैं तुम्हारी सुता ॥ ४ ॥
दिया देश से जब से तुमने निकार ।
सहैं सब बिचारीं कलेशों की मार ॥ ५
पिता हीन पति हीन बल हीन दीन ।
हैं सब बिधि सभी काल माया अधीन ॥ ६ ॥
हुई हैं विकारों में सब विधि प्रवीन ।
यह सन माया कीचड़ में हो गईं मलीन ॥ ७ ॥
मैं आई तुम्हारी शरन दीना नाथ ।
मैं पुनि पुनि धरूं तुम्हरे चरनों में माथ ॥ ८ ॥
तुम्हीं हो सहायक तुम्हीं रक्षा कर ।
मैं बिनवूं तुम्हें शीस चरनों में धर ॥ ९ ॥
खड़ा एक पग नाथ करता पुकार ।
सुनो टेर मेरी हे दाता दयार ॥१०॥
तुम्हें तज के सतगुरु मैं जाऊँ कहाँ ।
जहाँ जाऊँ है काल बैरी वहाँ ॥११॥

शरण अपनी में घाल लीजै मुझे ।
कँवल पद में परतीति दीजै मुझे ॥१२॥
पिलाओ अमी अपने पद प्रेम का ।
बनाकर के अधिकारी निज रहम का ॥१३॥
करो माफ़ दाता मेरे सब क़सूर ।
तुम्हीं हो मेरे स्वामी पूरन हुज़ूर ॥१४॥
मुझे करके निर्मल चढ़ाओ गगन ।
लगै तुम्हरे चरनों में पूरी लगन ॥१५॥
दिखाओ दरश नाथ निज रूप का ।
बना दो टहलुआ परम भूप का ॥१६॥
मैं गाऊँ तुम्हारे पिता कौन गुन ।
करूँ कौन मुख से मैं धन धन की धुन ॥१७॥
हे सतगुरु मेरे 'धारा सिंधू प्रताप' ।
दया दान दीजै मिटैं सर्व ताप ॥१८॥

शब्द २१७.

हम सब बच्चे जुड़ मिल आये । आरति थाल सजा कर लाये ॥ १ ॥
गुरु चरनन में आरति करते । रूप तुम्हार चित्त में धरते ॥ २ ॥
हम सब हैं बालक अनजाना । खेल कूद में रहें धियाना ॥ ३ ॥
मात पिता सँग रहें अचिंता । उपजी नहिँ परमारथ चिंता ॥ ४ ॥
जैसे सबको करते देखैं । सब करतूत बड़ों से सीखैं ॥ ५ ॥
एक बात सुन सुन हम जानी । सत्गुरु सर्वोपरि पहिँचानी ॥ ६ ॥
यही हमारा सब परमारथ । गुरू चरण है बड़ा पदारथ ॥ ७ ॥
हमरे घर गुरु ही की पूजा । गुरु समान कोई देव न दूजा ॥ ८ ॥

पर हमको इक संशय भारी। आगे क्या मति होय हमारी ॥ ९ ॥
हों जवान जब फँसें जगत में। गिरें भूल तुम कौन कुगति में ॥१०॥
जा का हमें बताउ उपायू। होय ख़राब न हमरी आयू ॥११॥
तब सत्गुरु ने दीन्ह असीसा। गुरु कर रहे तुम्हारे शीसा ॥१२॥
जो तुम भूलोगे भी हमको। कभी न भूलेंगे हम तुमको ॥१३॥
कहीं रहो हम संग रहावें। औसर पाय तुम्हें चेतावें ॥१४॥
हमने पकड़ी सुरत तुम्हारी। तन परिवर्तन चित्त न धारी ॥१५॥
इक दिन तुम्हें लगावें पारा। काल देश से कर दें न्यारा ॥१६॥
सन्त सन्त में भेद न जानो। एक सन्त में सब पहिचानो ॥१७॥
जब सतगुरु अस दिया दिलासा। बच्चों के मन हुआ हुलासा ॥१८॥
'धारा सिंधु प्रताप' रिझाए। ले असीस बच्चे मगनाए ॥१९॥

शब्द २१८.

योग अभ्यास नीति इक भाखूं। मुख्य अवस्था दो ही राखूं ॥ १ ॥
जैसे रात दिवस यहाँ होई। समय के दो विभाग हैं सोई ॥ २ ॥
पहिले सुरत रैन में रहती। तम अज्ञान तिमिर में बहती ॥ ३ ॥
जैसे रात चंद्र उजियारा। होय कभी पुनि हो अँधियारा ॥ ४ ॥
कुछ प्रकाश तारों का होई। अधिक अंश में तमहि समोई ॥ ५ ॥
तैसे रैन अवस्था योगी। रहै बहु काल प्रकाश वियोगी ॥ ६ ॥
कभी कभी कुछ चमक दिखावै। चन्द्र अरु तारा गण सम आवै ॥ ७ ॥
बहुधा पूरन तिमिर रहावै। तम घन ज्ञान प्रकाश छिपावै ॥ ८ ॥
जैसे कँवल बन्द हो रैना। भँवर कँवल में हो बेचैना ॥ ९ ॥
तैसे योगी के सूरत मन। घट पट में रहें बन्द बहुत दिन ॥१०॥
रैन अवस्था बीतै जब ही। ज्ञान भानु ऊगै घट तब ही ॥११॥

कँवल खिलै योगी घट अन्तर । मन भँवरा तब होय सुतंतर ॥१२॥
सूरत प्रीतम के अँग निरखै । देख देख छबि खिल खिल हरखै ॥१३॥
जस चकवी बिछुड़ी सब राता । पावै पति जब होय प्रभाता ॥१४॥
तैसे सुरत होय अति मग्ना । होय उदय जब रवि घट गगना ॥१५॥
सब योगिन को आवै यह दिन । पगत रहो निश दिन गुरु चरनन॥१६॥
धीरज धरौ करौ विश्वासा । इक दिन पूरन होगी आशा ॥१७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु चरना । प्रीति सहित हिरदे में धरना ॥१८॥

शब्द २१९.

हे पूरण पद दातारा, सत्गुरु मेरी खेप निभाउ ॥ टेक ॥
मैं अधम नीच अविचारी । मैं लीन्हीं शरण तुम्हारी ॥
दृढ़ पकड़ो बाँह हमारी ॥ १ ॥ सत्गुरु० ॥
मन जगत ओर नित धावै । याहि जगत भोग रस भावै ॥
बंधन नित पुष्ट करावै ॥ २ ॥ सत्गुरु० ॥
वह करम फन्द उलझावै । नीचे की राह कमावै ॥
माया के जाल फँसावै ॥ ३ ॥ सत्गुरु० ॥
याहि प्यारी लगै अनीती । नित पालै जग की रीती ।
सत सँग में धरै न प्रीती ॥ ४ ॥ सत्गुरु० ॥
लागै जग मनको प्यारा । भक्तों से करै किनारा ।
विषयों को करै अधारा ॥ ५ ॥ सत्गुरु० ॥
मैं सब विधि या से हारा । मैं तुम्हरा लीन्ह सहारा ।
नहिँ कोई तरह गुज़ारा ॥ ६ ॥ सत्गुरु० ॥
सुत मन से नित ही जूझै । वह वैरी बात न बूझै ।
अब कोइ उपाय न सूझै ॥ ७ ॥ सत्गुरु० ॥

मन काल जोति ने जाया । सुत फाँसन हित उपजाया ।
मैं गहा तुम्हारा साया ॥ ८ ॥ सत्गुरु० ॥

तुम हो समरत्थ अपारा । कर दो मन से छुटकारा ।
हे दाता परम उदारा ॥ ९ ॥ सत्गुरु० ॥

हे दीना नाथ दयाला । काटौ माया का जाला ।
और मारो काल कराला ॥१०॥ सत्गुरु० ॥

हे परम सिन्धु गम्भीरा । अब बेगि बँधाओ धीरा ।
कर दया हरो मम पीरा ॥११॥ सत्गुरु० ॥

हे पूरन धनी अगाधा । काटौ मम रोग असाधा ।
मैं पक्ष तुम्हारा साधा ॥१२॥ सत्गुरु० ॥

हे पूरन अन्तर्यामी । हे सर्वोपरि सत स्वामी ।
हे अलख अगम सतनामी ॥१३॥ सत्गुरु० ॥

हे परम पुरुष करतारा । सब सुर्तन के भरतारा ।
दासन के प्रान अधारा ॥१४॥ सत्गुरु० ॥

हे सर्व ज्ञान भंडारी । यह सुत है अंश तुम्हारी ।
तुम्हरे दर आन पुकारी ॥१५॥ सत्गुरु० ॥

हे परम पिता महाराजा । राखौ दासन की लाजा ।
अब बेगि सम्हारो काजा ॥१६॥ सत्गुरु० ॥

हे प्रभु दीनन के नाथा । अब गहौ दास का हाथा ।
अब करो अनाथ सनाथा ॥१७॥ सत्गुरु०॥

बेथाह दया के सागर । अब करो मदद रक्षा कर ।
कर लो चरणों का चाकर ॥१८॥ सत्गुरु०॥

हे 'धारा सिन्धु प्रतापी'। बे हद्द अथाह अनापी।
बख़्शो निज सेवक पापी ॥१९॥ सत्गुरु० ॥

शब्द २२०.

प्रेमी प्रीतम जुग हर्ष सुक्ख की खानी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥टेक॥

१

सूरत बुँद चेतन सिंधु चेतन की बासी।
जड़ काल देश में रहती सदा उदासी ॥
मन जड़ और सुरत का मेल कभी नहिँ होई।
चेतन ने जड़ सँग मिल सब पति गति खोई ॥
स्रुत रहै हमेशा जड़ता सँग हैरानी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

२

यहाँ सुरत एक और प्रकृति राक्षस दल है।
राक्षस हैं सब बलवान सुरत निर्बल है ॥
इन सब मिल अन्तर बाहर स्रुत को घेरा।
स्रुत बैरिन में फँस पाया दुःख घनेरा ॥
दुःखों में बिचारी भरमत फिरी दिवानी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

३

जग विषय भोग नित मन को प्रेरित करते।
शुभ अशुभ कर्म कर जीव भटकते फिरते ॥
थोड़ा सुख दुःख बहुत ले चक्कर खावैं।
कभी एक पलक भी शान्ति चैन नहिँ पावैं ॥

सुत जन्म मरण की फाँसी में लटकानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

४

ऐसे ही सुत को जुग अनन्त यहाँ बीते ।
बिन रक्षक सहती रही जम जाल फ़ज़ीते ॥
खोजत रही पिय सुख कहीं निशान न पाया ।
जित चितई पाये काल करम जम माया ॥
रो रो कर रही निरास पिया की प्रानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

५

इस नर देही में जगे भाग अब धुर के ।
पिय करी याद तब चरन मिले सत्गुरु के ॥
अब बँधी आस पिय मिलन होय कोइ दिन में ।
बढ़ती रहै बिरह दरश की निशि दिन मन में ॥
है सतगुरु के निज रूप की प्रीति समानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

६

अब ध्यान भजन सतसंग करैं दिन राती ।
सुत धीरे धीरे जावै शब्द समाती ॥
सुन सुन नित सतगुरु बचन जगत रस त्यागै ।
गुरु चरन प्रेम हिय धर घट अन्तर जागै ॥
अब दिन दिन होवै तन मन से अलगानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

७

कर कर प्रीतम की याद रह घबराती।
कब मिलै पिया से फटत रहै नित छाती ॥
रहै हेरत पिय की बाट न आवै चैना।
बीतें सिसकत अकुलात दिवस और रैना ॥
पुनि पुनि सत्गुरु से करती विनय दिवानी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

८

सुत गौन अंग से धुन में रहती भरती।
चढ़ कँवल सहस दल, गुरु का दर्शन करती ॥
वहाँ रूप निरंजन जोति पड़ै दरसाई।
फिर बंकनाल हो त्रिकुटी जाय समाई ॥
यहँ लेवै सुत की ओंकार अगवानी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

९

आगे चढ़ सूरत दसवें द्वार समावै।
हंसन से यारी करै अमी फल खावै ॥
ले अद्भुत रस नाना प्रकार के हरखै।
न्हा मान सरोवर निज निर्मल गति परखै ॥
लगी भँवर गुफा की मुर्ली धुन अब आनी।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

१०

फिर सत्तलोक चढ़ सत्तपुरुष पद परसै।
पुनि अलख दर्श कर अगम लोक जा सरसै ॥

वहँ से चढ़ आगे धारा सिन्धु समावै ।
जहँ बहुत काल से बिछुड़ा प्रीतम पावै ॥
अब 'धारा सिन्धु प्रताप' की महिमा जानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

११

गुरु चरन धूर धर शीष पिया मुख देखा ।
पाई पूरन गति जागा भाग अलेखा ॥
कोइ मत घबराओ मिलेगी सब को यह गत ।
तुम निश्चय धारो है सच्चा सन्तन मत ॥
हो 'धारा सिन्धु प्रताप' चरन क़ुरबानी ।
बिछुड़ी जब पिय से प्रेमिन रहै निमानी ॥

शब्द २२१.

हे सतगुरु पियारे क्षमा कीजिये ।
गुनहगार पर अब दया कीजिये ॥ १ ॥
जो हालत हमारी सुरत की यहाँ ।
ज़रा भी वह तुमसे नहीं है निहाँ[1] ॥ २ ॥
ज़रा ग़ौर कीजै हे किरपा निधान ।
है क्या दोष उसका सुनो मेहरबान ॥ ३ ॥
वह निर्दोष आई वतन[2] से यहाँ ।
लिया काल ने घेर अन्दर जहाँ ॥ ४ ॥
लगाये कुमन और सुमन उसके संग ।
चढ़े आवरन उस पै काम और अहंग ॥ ५ ॥
भरे मन में क्रोध और लोभ आदि अंग ।
दिये रजो गुन और तमोगुन के रंग ॥ ६ ॥

१ छिपी हुई, २ निज देश.

फिर उन पर चढ़ाये ततों के शरीर ।
दसों इन्द्रियाँ कीन्ही मन की वज़ीर ॥ ७ ॥

यह वैरी सुरत अंश के अंतरी ।
मददगार इनके से रचना भरी ॥ ८ ॥

विषय इन्द्रियों के हैं बाहर खड़े ।
विषय पाँच दूतों के सन्मुख अड़े ॥ ९ ॥

वह खींचें हैं सब मिल के सूरत की धार ।
करैं कर्म मन लेके सूरत को लार ॥१०॥

सुरत का है इस बात में क्या .कुसूर ।
करो न्याय इस मामले का हुज़ूर ॥११॥

फँसी क्या वह .खुद है यहाँ आन कर ।
या फाँसी किसी ने निबल जान कर ॥१२॥

ज़बरदस्ती कोई किसी पर करे ।
कोई .ज़ुल्म से बेकसों को हरै ॥१३॥

पकड़ कर .जँजीरों से बाँधै उसे ।
बहुत क़िस्म के डर दिखावै उसे ॥१४॥

न मानै तो मारै पजारै उसे ।
न रक्षक कोई नज़र आवै उसे ॥१५॥

वह फिर भी करै खुद नहीं कोई काम ।
करैं उसके दुश्मन धरैं उसका नाम ॥१६॥

तो फिर भी सुरत ही सज़ायाब[1] हो ।
तो फिर किसको अन्याय की ताब[2] हो ॥१७॥

१ दण्ड का भागी, २ बर्दाश्त ।

सहा मैंने यह .ज़ुल्म अब तक सभी ।
वजह थी कि रक्षक न पाया कभी ॥१८॥
पिता मातु जो पास सुत के न हों ।
सहै वह हो मजबूर जो दुःख हों ॥१९॥
दिखै जब उसे कोई रक्षक समर्थ ।
सहा फिर न जाये कोई दुख निरर्थ ॥२०॥
करम बैरियों के वह ले अपने मान ।
उन्हें मान अपने करै अर्ज़ आन ॥२१॥
किया मेरे दुशमन का जो मेरा लो ।
दया निधि मेरा ही समझ बख़्श दो ॥२२॥
मैं सब बिधि हूँ लाचार दीन और अधीन ।
तुम्हारा ही बन्दा रहा नाथ हीन ॥२३॥
करो माफ़ मेरे क़सूर और गुनाह ।
हुआ हूँ मैं बेहद दुखी और तबाह ॥२४॥
शरण ली मैं तुम्हरी मेरे जाँ पनाह[१] ।
किसी भाँति लीजै मुझे अब निबाह ॥२५॥
जो रो रो मनावै सुरत तुम को जब ।
सुनो क्यों नहीं नाथ तुम उसकी तब ॥२६॥
दिया तब दिलासा गुरू ने तुरन्त ।
अब आया तुम्हारी मुसीबत का अन्त ॥२७॥
तुम्हें सौंपा था हमने खुद काल को ।
तुम्हारा ही हित था पसन्द द्याल को ॥२८॥

१ प्राण बचाने वाले

तुम्हें था न सुख दुःख अनुभव बिना।
न परघट हुआ प्रेम सुख के बिना ॥२९॥

बिना प्रेम और सुक्ख रहतीं सदा।
बिना सुक्ख रहने में ढँग ही था क्या ॥३०॥

यहाँ साक्षी दुःख की तुम रहीं।
कोई दुःख .खुद तुमने भोगे नहीं ॥३१॥

यह मन ही है करता व दुख भोगता।
वह सत्ता तुम्हारी से है जीवता ॥३२॥

जो दुख दूसरे जन का देखै कोई।
वह बन साक्षी होवै दुख अनुभवी ॥३३॥

इसी भाँति सुरतें हैं दुख साक्षी।
नहीं भोगतीं दुख यह कोई कभी ॥३४॥

मिलौनी ही जड़ और चैतन्य की।
दिखै ऐसी गोया सब है एकही ॥३५॥

इसी से दिखै भोगती है सुरत।
पृथक होंय सब जब मिटै भ्रम तुरत ॥३६॥

तुम्हारे दुख अनुभव का आया अब अन्त।
इसी से मिले आन गुरु तुमको संत ॥३७॥

तुम हो बेफ़िकर में कहूँ सो करौ।
हिये में लगन सत्गुरू की धरौ ॥३८॥

धरौ प्रीति परतीति हिरदे मँझार।
गुरू के चरण पै दो सब भार डार ॥३९॥

सुरत शब्द की नित कमाई करौ।
थोड़े दिन का झगड़ा है धीरज धरौ ॥४०॥
यहाँ से जभी लौट जाओगे घर।
रहोगे परम शान्ति में हो अमर ॥४१॥
तभी तुम कहोगे यह क्या खेल था।
हमें तो कोई दुख कभी ना हुआ ॥४२॥
करैं 'धारा सिन्धू प्रताप' अब उधार।
धरौ उनके चरणों में सच्चा पियार ॥४३॥

शब्द २२२.

सुनिये बेगि पुकार। सतगुरु सुनिये बेगि पुकार ॥टेक॥
मैं दासी तुम्हरे चरनन की। खड़ी तुम्हारे द्वार ॥ १ ॥सत्गुरु०॥
हूं मति हीन निपट नाकारा। लीन्ही शरण तुम्हार ॥ २ ॥सत्गुरु०॥
दया करौ प्रभु दरश दिखाओ। सेवक को कर प्यार ॥ ३ ॥सत्गुरु०॥
काल दूत मोहि घेरैं ठाड़े। ले ले कर हथियार ॥ ४ ॥सत्गुरु०॥
जन्म जन्म से योनि योनि में। देत रहे यह मार ॥ ५ ॥सत्गुरु०॥
भवजल धार अगम अति भारी। सूझै नहीं किनार ॥ ६ ॥सत्गुरु०॥
मेरी नाव झाँझरी टूटी। डूबत है मँझधार ॥ ७ ॥सत्गुरु०॥
हे सत्गुरु अब आन सम्हारो। तुम केवट हुशियार ॥ ८ ॥सत्गुरु०॥
लो अब डाँड़ दया का कर में। शक्ती का पतवार ॥ ९ ॥सत्गुरु०॥
संग हमारे और इक अड़चल। बहुत पाप का भार ॥१०॥सत्गुरु०॥
सो सब धोय नाव हलकी कर। खेप लगाउ किनार ॥११॥सत्गुरु०॥
तब ही हम दूतन से छूटैं। जब उतरैं भव पार ॥१२॥सत्गुरु०॥
मैं सब पिंड अंड ब्रह्मंडा। भव में करूँ शुमार ॥१३॥सत्गुरु०॥

ब्रह्म अण्ड से भँवर गुफा तक । महा काल करतार ॥१४॥सत्गुरु०॥
वह भी मेरी सुरत अंश का । करता बहुत बिगाड़ ॥१५॥सत्गुरु०॥
वहाँ न तुम नैया ठहराओ । सतपुर देउ उतार ॥१६॥सत्गुरु०॥
वहाँ से अलख लोक कर पारा । जाय अगम दरबार॥१७॥सत्गुरु०॥
पुनि चढ़ि धारा सिन्धु धाम में । पहुँचै केन्द्र मँझार ॥१८॥सत्गुरु०॥
तब यात्रा पूरी हो मेरी । पाऊं पिया अपार ॥१९॥सत्गुरु०॥
सत्गुरु दाता जल्द करौ यह । पूरा काज हमार ॥२०॥सत्गुरु०॥
गाऊं महिमा सदा तुम्हारी । दम दम शुक्र गुज़ार ॥२१॥सत्गुरु०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' चरन पर । बार बार बलिहार ॥२२॥सत्गुरु०॥

शब्द २२३.

मोहि गुरु दरशन की प्यास । सखी मन धीर न धारै री ॥ टेक ॥

सतगुरु भेद बताइया रे निज स्वरूप का आय ।
निज स्वरूप है रूप उन्हीं का ऊपर खोल चढ़ाय ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ १ ॥

खोल के अन्तर पिया छिपाना लहर सिन्धु की जान ॥
लहर सिन्धु दोउ एक रूप हैं कुछ अन्तर मत मान ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ २ ॥

मन में तन में नयन में रे हिरदे रहे समाय ।
बिरह बिथा मेरी सब जानैं तोऊ रहे तरसाय ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ३ ॥

इस तन का मैं दीवा बनाऊं लोहू तेल जराय ।
मन बट कर मैं बाती डालूँ गुरु छबि नहिँ प्रगटाय ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ४ ॥

मन्द भाग लेकर मैं आई सतगुरु चरनन माँहिं ।
भाग से मेरा ज़ोर न चालै गुरु नहिँ दरस दिखाहिँ ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ५ ॥

सतगुरु ही जब दया बिचारैं पलटैं मेरे भाग ।
निज स्वरूप घट में दरसावैं रही यही बर माँग ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ६ ॥

निज स्वरूप के बहुत रूप हैं लोक लोक भिन भिन्न ।
एक एक लखि सुरत समावै सब में होय अभिन्न ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ७ ॥

नयन हमारे बावरे रे दरशन बिना उदास ।
जगत भोग रस नेक न भावै सूखे लोहू मास ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ८ ॥

लोग कहैं आपा है परदा प्रेमी प्रीतम बीच ।
कौन युक्ति से याको त्यागूं संग न छोड़ै नीच ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥ ९ ॥

बिना दया सतगुरु दयाल के यह आपा नहिँ जाय ।
बड़े बड़े सब योगी हारे कर कर बहुत उपाय ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१०॥

याकी जड़ है भँवरगुफा में, मेरी कहा बसाय ।
यह जड़ है मायक सृष्टी की, या बिन सृष्टि नसाय ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥११॥

ऐसा सबल अंग नाशन को मेरी कौन बिसात ।
छूटै नहिँ यह जब तक गुरु नहिँ करैं दया की दात ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१२॥

तातै पल पल छिन छिन गुरु से करूं विनय कर जोर ।
आपा तोड़ छुड़ाओ माया, मारो काल कठोर ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१३॥

जो जानो सो करो दयाला, दरशन बेगि दिखाउ ।
अपनी सी मैं सब कर हारा, मोहि न अब तरसाउ ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१४॥

मैं तुम्हरे दासन का दासा, तुम समरत्थ अथाह ।
ऐसी चूक पड़ी क्या मोसे बदलो नहीं निगाह ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१५॥

दयासिंधु करुणा सागर हो किरपा के भंडार ।
मेहर अनुग्रह रूप तुम्हारा अगम अनन्त अपार ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१६॥

कौन शब्द ले महिमा गाकर करूं तुम्हें परसन्न ।
क्या उपाय क्या काम करूं मैं, दया होय उतपन्न ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१७॥

दीनानाथ दयानिधि दाता दुख मैटन सुख दैन ।
पाप हरन दुख भञ्जन स्वामी, मैं तड़पूं दिन रैन ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१८॥

प्रभु अघ मोचन पतित उधारन जीव उबारन नाथ ।
दीन दयाल दीन हितकारी तुम चरनन मम माथ ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥१९॥

'धारा सिन्धु प्रताप' सतगुरू अब तो पिघलो घाल ।
दरश दान दे दीन दास को करदो बेगि निहाल ॥
सखी मन धीर न धारै री ॥२०॥

शब्द २२४.

विश्व का जो परकाश स्वरूपा । महा अचरजी महा अनूपा ॥ १ ॥
ताकी तनक झलक कहि गाऊं । जितना बनै बरण में लाऊं ॥ २ ॥
छिपै राख में ज्यों चिनगारी । राख ऊपर अन्तर उजियारी ॥ ३ ॥
पंच अस्थूल तत्व अन्तर तस । छिपा हुआ परकाश रहा बस॥ ४ ॥
पंच तत्व का लोक हमारा । सो दिख रहा निपट अँधियारा ॥ ५ ॥
सूरज का जब छिपै प्रकाशा । और ढकैं बादल आकाशा ॥ ६ ॥
असल रूप भू का तब दरसे । सूझै कुछ नहिँ खुले दृगनि से ॥ ७ ॥
सो यह भू है रवि आधीना । रवि प्रकाश बिन महा मलीना ॥ ८ ॥
सृष्टि अस्थूल प्रकृती केरी । सबही जानौ निपट अँधेरी ॥ ९ ॥
जो रचना याके अन्तर गत । सो सब है न्यून अधिक प्रकाशित॥१०॥
भुवर लोक तारन सम चमकै । स्वर्ग लोक सूरज सम दमकै ॥११॥
ब्रह्मा लोक अधिक उजियारा । जिमि सौ रवि चमकैं इक बारा ॥१२॥
प्रति इक सूक्षम लोक है अन्तर । प्रति इक के अन्तर गत दूसर ॥१३॥
मुख्य भाग अन्तर गत ऊपर । शेष लोक नीचे के भीतर ॥१४॥
जस वायू मंडल भू ऊपर । शेष समाना भू के भीतर ॥१५॥
जस अकाश वायू के ऊपर । और हु भरा वायु भू अन्तर ॥१६॥
अन्तर बढ़त गया परकाशा । करता गया तिमिर तम नाशा ॥१७॥
पिंड लोक जैसे गये चढ़ते । तस परकाश भानु गये बढ़ते ॥१८॥
बढ़ी सैकड़ों से रवि गिनती । अधिक अधिक गई शोभा बनती ॥१९॥
ब्रह्म अण्ड लोकन के माहीं । भानु सहस्रन नूर बढ़ाहीं ॥२०॥
यहाँ हज़ारों से रवि बढ़ती । होत गई ऊपर को चढ़ती ॥२१॥
गुफा लाख रवि जान उजारी । सत्त लोक में क्रोड़ शुमारी ॥२२॥

रंग विरंग नूर के भाना। घूमैं छवि नहिँ जाय बखाना ॥२३॥
मंडल बँधे दसों दिशि भारी। परवत बाग़ नूर उजियारी ॥२४॥
मोहित होवैं सुरतें सारीं। धन धन सतगुरु कहैं विचारीं ॥२५॥
जो हमको नहिँ मिलते सतगुरु। रहतीं सड़तीं पड़ीं पतित पुर ॥२६॥
सुरतन को शक्ती अस होई। रच लें रचना चाहें सोई ॥२७॥
जैसे दृश्य ख़्याल में आवैं। मौज करत फ़ौरन रच जावैं ॥२८॥
पुनि उनमें वे करैं बिहारा। आनँद प्रेम अटूट मँझारा ॥२९॥
अलख लोक रवि अरबन नूरा। करैं अगम में खरब ज़हूरा ॥३०॥
आगे जहाँ सिंधु मैदाना। उग रहे नीलन पदमन भाना ॥३१॥
केन्द्र महल का दिखै न अन्ता। बिन्दु बिन्दु पर भान अनन्ता ॥३२॥
धारा सिंधु पुरुष जहाँ राजैं। महा महा अद्भुत छवि साजैं ॥३३॥
अगम अपार अगाध प्रकाशा। हैरत हैरत रूप तमाशा ॥३४॥
प्रेमानन्द ज्ञान की खानी। वार पार नहिँ अकथ कहानी ॥३५॥
अचरज अचरज अचरज होई। वाणी में ला सकै न कोई ॥३६॥
प्रेमी प्रीतम सँग विश्रामा। परम शान्ति वह अकथ अनामा ॥३७॥
तब पूरी महिमा सतगुरु की। लखै परम प्यारी धुर घर की ॥३८॥
कुछ अनुमान प्रकाश रूप का। बतलाया .क़ुदरत अनूप का ॥३९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' प्रकाशा। हिय प्रगटाय दिखाय तमाशा ॥४०॥

शब्द २२५.

बलिहारी तुम पर जाइयाँ।
सतपुर के बासी साइयाँ॥ टेक॥
चरणों पर शीश नवाऊं, कर जोरूं हा हा खाऊं।
भवजल से पार लगाइयाँ॥ १॥ सतपुर०॥

हमने चकोर गति धारी, तुम चन्द्र रूप उजियारी ।
बिन दर्शन रहें मुरझाइयाँ ॥ २ ॥ सतपुर० ॥
मैं चहुँ दिशि तुमको ताकूं, छिन छिन घट अन्तर झाँकूं ।
तुम बिन नित अग्नि चबाइयाँ ॥ ३ ॥ सतपुर० ॥
तुम परम प्रकाशी सूरज, मैं रहूं धारि गति पंकज ।
अब देकर दर्श खिलाइयाँ ॥ ४ ॥ सतपुर० ॥
मैं चकवी तुम मम चकवा, कीन्हा जग रैन बिछौहा ।
दरशन दे संग लगाइयाँ ॥ ५ ॥ सतपुर० ॥
मैं गती भुजंग धराई, तुम मम मणि दूर रहाई ।
तुम बिना मूरछा खाइयाँ ॥ ६ ॥ सतपुर० ॥
मैं चकरी तुम मम डोरा, नहिँ फिरूं बिना तुम ज़ोरा ।
तुम बिन सब बिधि बेकारियाँ ॥ ७ ॥ सतपुर० ॥
तुम शशि मैं रैन अँधेरी, तुम बिन नहिँ शोभा मेरी ।
अब करो बेगि उजियारियाँ ॥ ८ ॥ सतपुर० ॥
मैं पपिहा तुम मम स्वाँती, तुम बिन प्यासी दिन राती ।
प्रभु अब तो दरश दिखाइयाँ ॥ ९ ॥ सतपुर० ॥
मैं मृगनी तुम मम नादा, धुन बिन मम रोग असाधा ।
अब तो घट शब्द सुनाइयाँ ॥१०॥ सतपुर० ॥
मैं लोहा तुम चुम्बक गति, बिन खिँचे पड़ा हूं बे गति ।
अब देकर दरश खिँचाइयाँ ॥११॥ सतपुर० ॥
मैं मछली तुम मम पानी, तुम बिन मैं अति घबड़ानी ।
अब तो मम प्राण बचाइयाँ ॥१२॥ सतपुर० ॥

तुम स्वाँती मैं सीपी सम, मैं रटूं तुम्हें प्रभु दम दम ।
अब मम मुख अम्बु चुआइयाँ ॥१३॥ सतपुर० ॥
हे 'धारासिंधु प्रतापी', मैं जुग जुग टेर अलापी ।
अब तो दुख दूर कराइयाँ ॥१४॥ सतपुर० ॥

शब्द २२६

तुम्हरे चरण पै मैं वारी दयाला ॥टेक॥
डूबत हूं भव सिंधु मँझारी । लीजै मोहि उबारी दयाला ॥ १ ॥
अन्तर बाहर सब अँधियारी । भटकै सुरत हमारी दयाला ॥ २ ॥
मग में ज़ोर काल का भारी । दुखित है सुरत बिचारी दयाला ॥ ३ ॥
मन है इन्द्री भोगन लारी । बिकट जाल संसारी दयाला ॥ ४ ॥
मन में उठैं तरंग अपारी । मैं या से अब हारी दयाला ॥ ५ ॥
सब बिधि ख्याल भई लाचारी । तुम बिन कौन सम्हारी दयाला ॥ ६ ॥
रोग सोग में बहुत दुखारी । तुम को लाज हमारी दयाला ॥ ७ ॥
कोइ बिधि खेप निभाओ हमारी । पूरण करुणाधारी दयाला ॥ ८ ॥
हे दाता पतितन हितकारी । लीन्ही शरण तुम्हारी दयाला ॥ ९ ॥
हूं नहिँ दयापात्र अधिकारी । सब बिधि रहा अनारी दयाला ॥१०॥
हूं कामी क्रोधी अहंकारी । लोभी बड़ा लबारी दयाला ॥११॥
अपनी दया से लेउ सुधारी । धोय मलिनता सारी दयाला ॥१२॥
कर निरमल शुभ गुण शृंगारी । बख्श करौ दरबारी दयाला ॥१३॥
करके काल जाल से न्यारी । दो धुर धाम उतारी दयाला ॥१४॥
'धारासिंधु प्रताप' तुम्हारी । सेवक गोद पड़ारी दयाला ॥१५॥

शब्द २२७.

दयानिधि लीजै खबर हमारी ॥टेक॥
जानौ हमें बाल अनजाना तुम हो पितु महतारी ॥१॥

तुम हो दया दात भंडारी जानौ हमें भिखारी ॥२॥
जानौ हमें दास हे स्वामी चाहे शिष्य अनारी ॥३॥
चाहे अपन अंश पहिचानौ चाहे जानौ नारी ॥४॥
चाहे गऊ ढोर निज जानौ चाहे प्रजा दुखारी ॥५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' निभाओ कोई नातेदारी ॥६॥

शब्द २२८.

करो अब निज घर की तय्यारी ॥टेक॥
यहाँ जो माल खरीदन आये भरगई गोन तुम्हारी ॥१॥
पूरा हुआ दुखःका अनुभव अब क्यों भटको प्यारी॥२॥
सतगुरु तुम्हें लैन यहाँ आये करी रेल निज जारी ॥३॥
सतसंग स्टेशन पर जाओ जहाँ रेल है ठाड़ी ॥४॥
नाम टिकट गुरु भक्ती तोशा लेकर करो सवारी ॥५॥
'धारा सिन्धु प्रताप'दया से, धुर घर देंय उतारी ॥६॥

शब्द २२९.

सुरत तुम छोड़ो यह परदेशा ॥टेक॥
मूरख नर पृथ्वी पर मानें निजनिज देश स्वदेश॥१॥
करैं विदेशी लोगन से नित झगड़े रारि कलेशा ॥२॥
जो परमारथ यही पिछानैं मृतु का नहिँ अन्देशा ॥३॥
रहना चाहैं कोई योनि धर मूरख यहीं हमेशा ॥४॥
पूरन वृत्ती इसी काम में नित उठ करैं प्रवेशा ॥५॥
काल उन्हैं चौरासी माहीं खींच रहा गहि केशा ॥६॥
तजो संग इन बुधिमानों का गुरु का मान अदेशा ॥७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरू का तुम्हें यही उपदेशा ॥८॥

शब्द २३०.

भक्ति भंडार रहे गुरु खोल । बाँट रहे अद्भुत रतन अमोल ॥ १ ॥
मगर हम करते नहीं क़दर । इसी से होता नहीं सबर ॥ २ ॥
न जानै गोबर का कीरा । वस्तु क्या है पन्ना हीरा ॥ ३ ॥
हम हैं सब इन्द्री रस माते । इसी से घट रस नहिँ पाते ॥ ४ ॥
करें हम बाहर मुख सतसंग । न आवै किंचित प्रेम तरंग ॥ ५ ॥
गुरू गुन ऊपर मन गाते । प्रीति उन हिय में नहिँ लाते ॥ ६ ॥
प्यार मन अन्तर नहिँ आवै । प्रीति बाहर से दिखलावै ॥ ७ ॥
हिये से उठै न हमदरदी । जिगर में भरी रहै सरदी ॥ ८ ॥
क़दर परमारथ की नहिँ कुच्छ । चाहता जगत पदारथ तुच्छ ॥ ९ ॥
न आवै मन में मृत्यू भय । रहै जग के रिश्तों में लय ॥१०॥
करैं नहिँ सतसँग वचन असर । सख़्त है हिरदय ज्यों पत्थर ॥११॥
उमर सब यों ही बीती जाय । हाथ से अवसर निकला जाय ॥१२॥
जायँ यह दिन देखत देखत । होयगी पीछे बहुत कुगत ॥१३॥
मूढ़ मन अब मानो कहना । अभी है औसर तुम्हें बना ॥१४॥
सीख जो चित नहिँ लाओगे । हाथ मल मल पछिताओगे ॥१५॥
ज़रा तुम बात मेरी मानौ । लाभ और हानी पहिचानौ ॥१६॥
करौ मत अब लापरवाही । चित्त दे सुनौ मेरी भाई ॥१७॥
ध्यान दे लाभ हानि परखौ । जगत में सत्य सार निरखौ ॥१८॥
हिरस नर पशुओं की न करौ । जीव निज का हित चित्त धरौ ॥१९॥
यही है सत्य यही है सार । और सब नाशमान बेकार ॥२०॥
प्यार से तुम्हें चिताय रहा । तुम्हारे हित की गाय रहा ॥२१॥
धियाओ 'धारासिंधु प्रताप' । जो चाहौ तजना जग सन्ताप ॥२२॥

शब्द २३१.

सखि जुग गुरु चरनन बाँध पियाने याद किया ॥ टेक ॥

गुरु क़ासिद धुर घर से आये। प्रीतम का संदेशा लाये ॥
तुझको दिया सुनाय। पिया ने याद किया ॥ १ ॥

सोवत सतगुरु लिया जगाई। तन मन धन दे करो सगाई ॥
सत संगत में जाय। पिया ने याद किया ॥ २ ॥

अंतर शब्द बरिच्छा कीजै। धुनको सुरत भेट कर दीजै ॥
गुरु से गोद भराय। पिया ने याद किया ॥ ३ ॥

कँवल सहस दल हुई बरिच्छा। शोधा गुरू महूरत अच्छा ॥
धुन से दिया मिलाय। पियाने याद किया ॥ ४ ॥

त्रिकुटी चढ़ फलदान चढ़ाया। ब्रह्म अण्ड का थाल सजाया ॥
निज मन थान धराय। पिया ने याद किया ॥ ५ ॥

लोभ मोह और क्रोध विकारा। और कर्म अस्थूल पसारा ॥
सतगुरु देंय जराय। पिया ने याद किया ॥ ६ ॥

निरगुण कर गुरु सुन्न चढ़ावैं। सामाँ लगन जोड़ धरवावैं ॥
रारँग भेंट धराय। पियाने याद किया ॥ ७ ॥

सुत का गुरु भृंगार करावैं। संचित सूक्षम कर्म जरावैं ॥
सब कलि मल धुलवाय। पियाने याद किया ॥ ८ ॥

सुत दुलहिन पहिने आभूषण। भाँति भाँति के गहने शुभ गुण ॥
सुन्दर छवि रही छाय। पियाने याद किया ॥ ९ ॥

सुरत सखी सज सतपुर आई। सत्त पुरुष बारात सजाई ॥
धुन की धूम मचाय। पियाने याद किया ॥१०॥

द्याल देश में होवै शादी। हंसा देंय मुबारिकबादी ॥
फेरे दिये डराय। पियाने याद किया ॥११॥
हंसा जुड़ मिल गाली गावैं। धृग धृग माया काल बतावैं ॥
बाजे मधुर बजाय। पियाने याद किया ॥१२॥
करके ब्याह अलख पुर आई। वहाँ से अगम लोक को धाई ॥
गौना आस बँधाय। पियाने याद किया ॥१३॥
हुई यहाँ गौने की त्यारी। सूरत करै नवल श्रृंगारी ॥
छबि नहिँ बरनी जाय। पियाने याद किया ॥१४॥
सुत अब पिया धाम को धाई। धार केन्द्र से उमड़त आई ॥
सुरत लई लिपटाय। पियाने याद किया ॥१५॥
अटल सुहाग सुरत अब पाया। परमानन्द सर्व अँग छाया ॥
धन धन शोर मचाय। पियाने याद किया ॥१६॥
गुरु निज रूप पिया को देखा। अपना रूप पिया में पेखा ॥
तीनों एक दिखाय। पियाने याद किया ॥१७॥
'धारा सिंधु प्रताप' सराहै। बार बार धन धन गुहराऐ ॥
महिमा कही न जाय। पियाने याद किया ॥१८॥

शब्द २३२.

हे दीन बन्धू हे दीन द्याल। हे भक्त वत्सल हे भक्त पाल ॥
सुनो विनती मम हे गुरु कृपाल ॥टेक॥
मैं दीन हीन बलहीन छीन। और अति मलीन सब बिधि अधीन ॥
दे रहा दुःख मोहि बहुत काल ॥१॥
मोहि खींचै माया जगत माँह। गुरु थाम लेउ मेरी पकड़ बाँह ॥
और काट देउ जम विषम जाल ॥२॥

मैं लीन्ही अब शरनी तुम्हार । मैं पड़ा आन चरनन मँझार ॥
हूं आदि का मैं तुम्हरा ही लाल ॥३॥
मैं निपट अपाहज और अनाथ । कर सकै कौन तुम बिन सनाथ ॥
बिन दया तुम्हारी हूं बेहाल ॥४॥
मैं पड़ा हूं जस जल बिना मीन । तुम सिंधु रूप सब बिधि प्रवीन ॥
करो दाता मेरी अब सम्हाल ॥५॥
मैं बिनवूं तुमको बार बार । पद कंज गहे अब हार हार ॥
अब बनो दयानिधि मोर ढाल ॥६॥
अब दो किरपा कर प्रेम दात । जो दूर बिडारै काल घात ॥
इस दास काग को करो मराल ॥७॥
हे 'धारा सिंधु प्रताप' द्याल । निज दासन को करदो निहाल ॥
तो होवे मेरी सुफल घाल ॥८॥

शब्द २३३.

थोड़े दिन जीवन के कारण । मन क्यों पाप कमाता है ॥
समझै बूझै कुछ नहिँ मूरख । जगत विषय मद माता है ॥टेक॥
दर दर भिरै भटकता जग में । खाय ठोकरें नित डगडग में ॥
तो भी नहिँ शरमाता है ॥१॥
कहाँ से आया कहाँ जायगा । करनी का फल कहाँ पायगा ॥
इसका सोच न लाता है ॥२॥
धन के कारण रहै निमाना । कूकर सम तू फिरै दिवाना ॥
घर घर पूंछ हिलाता है ॥३॥
झूठे रस की चाट बढ़ा कर । स्वाद इन्द्री भोगन के पाकर ॥
धाय धाय विष खाता है ॥४॥

यह है काल बली की रचना। नई नई नित होवै घटना ॥
जीव बहुत दुख पाता है ॥ ५ ॥
काल बिछाये काँटे जग में। सो नित चुभैं तुम्हारे पग में ॥
क्यों तू धोखा खाता है ॥ ६ ॥
रैन दिवस चिन्ता में रहता। पुनि पुनि कर्म भर्म में बहता ॥
कष्ट पाय पछताता है ॥ ७ ॥
करै बेशरम काम वही फिर। स्याह करै मुँह कीचड़ में गिर ॥
यों ही आयु बिताता है ॥ ८ ॥
अघ की गठरी सिर पर धरके। कुछ दिन विषय भोग फ़िर मरके ॥
नर्क को सीधा जाता है ॥ ९ ॥
अब हूं सोच बहुत नहिँ बिगड़ा। गुरु बल ले पटकौ सब झगड़ा ॥
काल शिकारी आता है ॥१०॥
सतगुरु भक्ति करो अब प्यारे। सत मग लो हो जग से न्यारे ॥
सब यहाँ झूठा नाता है ॥११॥
'धारासिंधु प्रताप' सुझाया। हिय की आँख खोल दरसाया ॥
सो यह दास सुनाता है ॥१२॥

शब्द २३४.

करूं मैं आरति सखियन संग। गुरू पद परसूं उमँग उमंग ॥ १ ॥
चढ़ै घट प्रेम लगन का रंग। काल की कला होय सब भंग ॥ २ ॥
हृदय का थाल बनाऊँगी। बिरह की जोति जगाऊँगी ॥ ३ ॥
आरती गुरु सनमुख फेरूँ। दृष्टि में दृष्टि जोड़ हेरुँ ॥ ४ ॥
आरती अन्तर्मुख गाऊँ। शंख और घंटा बजवाऊँ ॥ ५ ॥
सुनूं फिर त्रिकुटी चढ़ मिरदंग। लगावैं सतगुरु अपने अंग ॥ ६ ॥

जब आवै सुन की शब्द तरंग । पकड़ धुन पहुँचू पद रारंग ॥ ७ ॥
आरती गाऊँ हंसन संग । पुरुष पिरकिरती होवें दंग ॥ ८ ॥
बँधै जहाँ नूरों का मंडल । सुगंधें अद्भुत उठें विमल ॥ ९ ॥
सुरत फिर भँवरगुफा आई । गुरू मुरली धुन सुनवाई ॥१०॥
हिंडोला झूलै हंसन संग । गई फिर सतपुर होय निहंग ॥११॥
पुरुष का अद्भुत रूप निहार । आरती गावै धुन की लार ॥१२॥
करै फिर हंसन संग बिहार । रचावै मंडप दिव्याकार ॥१३॥
होंय जहँ रहस्य बहु भाँती । नहीं शोभा बरनी जाती ॥१४॥
ठाठ सब निर्मल चैतन का । देश सब यहँ से सन्तन का ॥१५॥
सुरत गई अलख अगम के पार । रली फिर धारा सिन्धु मँझार॥१६॥
मिली प्रीतम से जाय विदेह । धार सिर गुरु चरनन की खेह ॥१७॥
सराहै 'धारा सिन्धु प्रताप' । बिराजे केन्द्र मध्य जो आप ॥१८॥

शब्द २३५.

घन घटा घुमँड़ रही भारी । पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥टेक॥
रही चहुँ दिश छाय अँधेरी । स्रुत को ब्रह बिथा घनेरी ॥
आँखों से आँसू जारी । पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ १ ॥
जब दामिन दमक दिखावै । पिय का धोखा हो जावै ॥
अब आवत दिखै सवारी । पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ २ ॥
पूरब दिशि घन जब दमकै । स्रुत घट अकाश लँग लमकै ॥
हो रही प्रेम मतवारी । पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ३ ॥
फिर खाय पछाड़ें घट में । जब दमक छिपे तम पट में ॥
हो ज्यों की त्यों अँधियारी । पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ४ ॥

जब बादल नभ में गरजै। बिरहिन का जियरा लरजै ॥
बाँधै पुनि आस बिचारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ५ ॥
जब हूं पिय रूप न दरसै। ज्यों की त्यों बिरहिन तरसै ॥
होवै अत्यंत दुखारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ६ ॥
दो चिन्ह हैं पिया मिलन के। धुनि और प्रकाश गगन के ॥
जब दोनों हों बेकारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ७ ॥
जब खाली मेघा बरसे। पिया डिगें नहीं निज घर से ॥
स्रुत गिरै मूर्छा खा री। पिय बन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ८ ॥
रो रो बरसात निकारी। हा हा विनती कर हारी ॥
अब सत्गुरु करौ सम्हारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥ ९ ॥
पिय हुए ऐसे बेदरदी। उन मात निठुरता करदी ॥
स्रुत की सब बिधि लाचारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥१०॥
गुरु 'धारा सिन्धु प्रतापी'। अब करौ रहम तुम आपी ॥
सुन लो प्रभु टेर हमारी। पिय बिन तड़पै स्रुत प्यारी ॥११॥

शब्द २३६.

सतगुरु बन्दी छोर कहावें ॥ टेक ॥

तीन प्रकार कर्म जीवन के, सो वे सहज कटावें ॥ १ ॥
बहुत अनोखी युक्ती से वे, दासन मुक्त करावें ॥ २ ॥
परारब्ध तौ सब जीवन के, मृत्यू पर मिट जावें ॥ ३ ॥
उन हूं का गुरु ज़ोर दया से, मौज अनुसार घटावें ॥ ४ ॥
क्रियावान जो हों प्रति दिन के, सतसँग से छुट जावें ॥ ५ ॥
यह तौ फल उनको भी देवें. जिन को हाज़िर पावें ॥ ६ ॥
सुनैं गुनैं जो बचन चित्त दे, और अमल में लावें ॥ ७ ॥

उनके फल का कौन ठिकाना, संचित हू मुरझावें ॥ ८ ॥
सुमिरन ध्यान और भजन आदि से, वे सब धुलते जावें ॥ ९ ॥
कर निःकरम बेगि गुरु दाता, अमर लोक पहुँचावें ॥१०॥
अन्य मतों के जो आचारज, मायक पंथ चलावें ॥११॥
आप फँसे औरन को फाँसें, बंधन पुष्ट करावें ॥१२॥
जो जन चरन शरन सतगुरु की, संस्कार से पावें ॥१३॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से, परमानन्द समावें ॥१४॥

शब्द २३७.

देखि मन चंचल भय मत मान ॥ टेक ॥
जो पछितावा आवै मन में, सोई औषधि जान ॥ १ ॥
यही भेद सतसँगी जन और, जग जीवन दरम्यान ॥ २ ॥
बाहर मुख बिरती में जग जन, समझैं नहिँ कुछ हान ॥ ३ ॥
सतगुरु जन वामें दुख मानें, यही सुधार निशान ॥ ४ ॥
जैसे कटे वृक्ष की सब्ज़ी, थोड़े दिवस रहान ॥ ५ ॥
सतगुरु जन का जग व्यवहारा, ऐसहि निर्बल जान ॥ ६ ॥
लगी रहै नित भजन बचन से, मन में खींचा तान ॥ ७ ॥
क्रम क्रम तुमको भासत जावै, झूठा सकल जहान ॥ ८ ॥
दुर स्वभाव जो पहिले तुम्हरे, रहे अधिक बलवान ॥ ९ ॥
निरख परख जो देखो उनको, बहुत फ़रक़ पहिँचान ॥१०॥
अन्य मतों के अनुयायिन से, अपना करो मिलान ॥११॥
तुम्हें फ़िक्र जो निज बिरती की, उससे वे अन्जान ॥१२॥
होय बाहरी भूल चूक जो, जानैं गुरू सुजान ॥१३॥
सतसँग सुमिरन भजन कराके, माफ़ी करें प्रदान ॥१४॥

विरती सिमट करत नित जावै, मुरदा मन सुल्तान ॥१५॥
धीरे धीरे मारें जब तक, तुमको काम जहान ॥१६॥
पर जब निर्मलता का देखें, तुम में वे अभिमान ॥१७॥
तब ही मन का ज़ोर दिखा कर, करैं तुम्हें हैरान ॥१८॥
गुरु का हाथ शीस पर तुम्हरे, तामें शक्ति महान ॥१९॥
जब चाहैं छिन में मन मारैं, खोल प्रेम की खान ॥२०॥
आवैगा इक दिन हम सब को, मन उलटै घट आन ॥२१॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया से, होय तुरत कल्यान ॥२२॥

शब्द २३८.

निज भक्तों पर दुःख कष्ट । दुनिया में ज़्यादा आते हैं ॥ १ ॥
मूरख संसारी जन इसका । भेद समझ नहिँ पाते हैं ॥ २ ॥
करते हैं निष्काम भक्ति । जो उनको दुःख सताते हैं ॥ ३ ॥
दुनिया से नफ़रत उनके । दिल में पैदा करवाते हैं ॥ ४ ॥
इन्द्री विषय भोग जग । के से मन को दूर हटाते हैं ॥ ५ ॥
तन और इन्द्री से भी । मन की वृत्ती घट उलटाते हैं ॥ ६ ॥
अन्तः करन मलीन साफ़ कर । जग की चाह मिटाते हैं ॥ ७ ॥
फिर मन से भी सुरत धार को । अन्तर में खिँचवाते हैं ॥ ८ ॥
आधि वियाधि उपाधि जो जग में । तीन ताप कहलाते हैं ॥ ९ ॥
यह तीनों सुत को जग । तन मन से न्यारा करवाते हैं ॥१०॥
इक अंगी इक रंगी भक्ती । यही तीन करवाते हैं ॥११॥
सच्चा प्रेम गुरू चरनों का । घट में यही जगाते हैं ॥१२॥
सत्गुरु परारब्ध शिष्यों की । मौज से खुद बनवाते हैं ॥१३॥
कर्म भक्ति बढ़वाने वाले । संचित से खिँचवाते हैं ॥१४॥

जन्म से पहिले ही वे दाता। यह सब काम कराते हैं ॥१५॥
भाग हीन जग जीवन की। नहिँ भेद समझ में आते हैं ॥१६॥
कोई यों कहते गुरु शिष की। अज़मायश करवाते हैं ॥१७॥
गुरु तो पूरे अन्तरयामी। क्यों शिष को अज़माते हैं ॥१८॥
शिष की कमज़ोरी और बल। गुरु से नहिँ छिपे रहाते हैं ॥१९॥
गुरु दासों में गुरु का बल है। फिर गुरु क्या अज़माते हैं ॥२०॥
तीन ताप के सिवा भक्त को। बिरह के दुःख सताते हैं ॥२१॥
आवागमन छुड़ाना है इस से। सब कर्म कटाते हैं ॥२२॥
परम सन्त सत गुरु भी जो धुर। घर से जग में आते हैं ॥२३॥
सब प्रकार के दुख। अपने ऊपर भी वे दिखलाते हैं ॥२४॥
निज भक्तों के बड़े कर्म। .खुद लेकर साफ़ कराते हैं ॥२५॥
और उनका जग जीवन से। वे मेल मिलाप कटाते हैं ॥२६॥
इस कारन जग की जानिब से। कभी उपाधि बुलाते हैं ॥२७॥
निन्दा और लड़ाई उनसे। शिष की कभी कराते हैं ॥२८॥
किसी न किसी तरह भक्तों का। पूरा काम बनाते हैं ॥२९॥
जो जानें यह भेद कभी। दुख से नहिँ वे घबराते हैं ॥३०॥
'धारा सिन्धु प्रताप' दया का। रैन दिवस गुन गाते हैं ॥३१॥
देख अमर सुख का भविष्य। .खुश होकर कर्म कटाते हैं ॥३२॥

शब्द २३९.

सुमिरौ परम सर्व सुख दाता। सन्त सतगुरू परम विधाता ॥ १ ॥
पाँच नाम का कीजै सुमिरन। जो गुरु बतलाईं सुषमन धुन ॥ २ ॥
सुमिरौ सतगुरु प्रति अस्थाना। रूप अस्थानी में गुरु ध्याना ॥ ३ ॥
सुमिरौ सतगुरु रूप अनामी। 'धारा सिन्धु प्रताप' सुआमी ॥ ४ ॥

सुमिरौ सतगुरु अगम स्वरूपा । सुमिरौ अलख पुरुष गुरु रूपा ॥ ५ ॥
सत्तनाम में सुमिरौ सतगुरु । 'धारा सिन्धु प्रताप' परम गुरु ॥ ६ ॥
सोवत जागत सुमिरौ सतगुरु । खाते पीते बिसरैं नहिँ गुरु ॥ ७ ॥
सुमिरौ सतगुरु चलते फिरते । याद रहैं गुरु जग कृत करते ॥ ८ ॥
भरी रहै रग रग सतगुरु धुन । निज मन पिण्डी मन और इन्द्रिन ॥ ९ ॥
जिव्हा स्वाँस और श्रवन दृगन में । हृदय जिगर और सारे तन में॥१०॥
रोम रोम से नाम उचारौ । तन मन गुरू नाम पर वारौ ॥११॥
दुःख कष्ट में नाम न भूलौ । सुख में गुरु हिय धर, मत फूलौ॥१२॥
क्रोध आवै तौ सुमिरौ सतगुरु । विषय भोग में बिसरौ मत गुरु॥१३॥
स्त्री, पति, सुत जब ही मोहैं । बोल चाल और छबि जब सोहैं॥१४॥
सुमिर सुमिर सत्गुरू दयाला । ढीला करो मोह का जाला ॥१५॥
घट नहिँ व्यापै मोह हलाहल । दूर हटाओ ले सतगुरु बल ॥१६॥
मान ईर्षा जब मन आवै । गुरू ध्यान से तुरत नसावै ॥१७॥
नाम गुरू का हृदय बसाओ । जब भूलौ तब ही पछिताओ ॥१८॥
डोरी लगी रहै दिन राती । कसकत रहै घाव सम छाती ॥१९॥
ऐसी लगन लगी रहै गुरु से । पीछा छुटै बेगि मरपुर से ॥२०॥
सुमिरौ 'धारा सिन्धु प्रताप' । धारौ इसी नाम का जाप ॥२१॥

परमार्थी की रहनी

शब्द २४०.

अंग पहिला

॥ दोहा ॥

जो सच्चे परमारथी, सतगुरु के निज दास ।
गुरु भक्ती में दृढ़ रहैं, जग से रहैं उदास ॥ १ ॥

परम पिता की याद में, मगन रहैं दिन रात ।
मन से देहिँ निकार सब, झूठे जग के नात ॥ २ ॥
कार्य मात्र बरतत रहैं, कुल कुटुम्ब के साथ ।
चित उचटा रहै जगत में गुरु चरनन रहै माथ ॥ ३ ॥
निज सम्बन्धिन की तरफ़, उनके जो जो फ़र्ज़ ।
सब पूरे करते हुए, राखें गुरु से ग़र्ज़ ॥ ४ ॥
रिश्तेदार बिरादरी, उद्यम संगी यार ।
उन हूँ सब से राखते, कार्य मात्र ब्योहार ॥ ५ ॥
सब का भला बिचारते, काहू से नहिँ बैर ।
बैरिन हूं से प्यार धर, सोचैं उनकी ख़ैर ॥ ६ ॥
काहू का चीतैं नहीं, बुरा हृदय के माहिँ ।
सबसे बरतें प्यार से, सब की खैर मनाहिँ ॥ ७ ॥
निज विरती निज चित्त मन, धर गुरु चरनन माहिँ ।
गुरु सतसंगिन से अधिक, हिय से नेह लगाहिँ ॥ ८ ॥
सत्सँग उनका निज कुटुम, धुर के संगी लोग ।
थोड़े दिन सँग छूट कर, फिर नहिँ होय वियोग ॥ ९ ॥
संसारी सम्बन्ध के मतलब के सब यार ।
अपना मतलब काढ़ के, रस्ता लेंहि नियार ॥१०॥
उचित यही गुरु भक्त को, रहनी रहो सुधार ।
क्रम क्रम से दुर अंग सब, मन से काढ़ निकार ॥११॥
जग सम्बन्धी लोग जो, मारें तुम पर तान ।
सहो जहाँ तक सह सकौ, जानो उन्हें अजान ॥१२॥

सही न जावै तान जब, अवसर लखि समझाउ।
उन्हें यथोचित रीति से, भिन भिन परख स्वभाउ ॥१३॥
जो तौहू मानैं नहीं, करैं और चित भंग।
तो युक्ती से दीन हो, त्यागो उनका संग ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' की, दया लेउ नित संग।
रहनी चलो सुधारंते, चढ़ै प्रेम का रंग ॥१५॥

अंग दूसरा

॥ दोहा ॥

बेईमानी मत करौ, कभी किसी के साथ।
खोटे धन और माल पर, कभी न डालौ हाथ ॥ १ ॥
मेहनत और ईमान से, कर अपना रुज़गार।
अपनी और कुटुम्ब की, बनै सो करौ सम्हार ॥ २ ॥
आमदनी जो भाग से, आवै तुम्हरे हाथ।
करौ गुज़ारा उसी में, सदा किफ़ायत साथ ॥ ३ ॥
उसही में राज़ी रहो, तृष्णा मत अधिकाउ।
उसही में सन्तोष कर अपना ख़र्च निभाउ ॥ ४ ॥
तुमसे धन में अधिक जो, थोड़े हैं जग माहिँ।
ऐसे निरधन बहुत हैं, जिनके कल को नाहिँ ॥ ५ ॥
गृह प्रबन्ध ऐसा करौ, आमदनी अनुसार।
पड़ै ज़रूरत क़र्ज़ की तुम्हें न बारम्बार ॥ ६ ॥
आदत लेने क़र्ज़ की, बहुत बुरी पहिँचान।
क़र्ज़दार को करत है, झूठा बेईमान ॥ ७ ॥

बुरी नियत रहती सदा, धोखा चोरी घूँस ।
पर धन को सोचत रहै, कोई बिधि लूँ मूँस ॥ ८ ॥
उसका भक्ती पन्थ में, हो नहिँ सकै निबाह ।
पाप पोट सिर धार कर, ले चौरासी राह ॥ ९ ॥
शुद्ध कमाई में गुज़र, कर कुछ भाग बचाउ ।
सो मालिक के नाम पर, गुरु कर ख़र्च कराउ ॥१०॥
गिरहस्थी को चाहिये, थोड़ा और बचाय ।
गृह कारज और रोग में, पड़ै ज़रूरत आय ॥ ११ ॥
करौ ईर्षा मत कभी, अधिक और को देख ।
परारब्ध और हाल के, कर्मों का है लेख ॥१२॥
या में कुछ भी लाभ नहिँ, नाहक़ हृदय जराय ।
मनुष ईर्षावान नित, ले निज दुःख बढ़ाय ॥१३॥
बरतो सब से निष्कपट, मन में राखौ साँच ।
गुरु के चरन लगे रहौ, लगै न जग की आँच ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' गुरु, समझाया यह मोइ ।
मैं उनके आदेश से, तुम्हें सुनाऊँ सोइ ॥१५॥

अंग तीसरा.

स्वाँसा मानुष जन्म की, एक एक अनमोल ।
तीन लोक की सम्पदा, है नहिँ उसका मोल ॥ १ ॥
काम ज़रूरी से समय, जो बच सकै बचाउ ।
सो वियर्थ खोओ नहीं, सतगुरु भक्ति कमाउ ॥ २ ॥
मौत शीश मड़रा रही, रखौ सदा यह याद ।
कर लो जो कुछ कर सकौ, समय न हो बरबाद ॥ ३ ॥

भजन ध्यान सतसंग धुनि, सुमिरन मनन विचार ।
गुरु महिमा और प्रार्थना, यही काम हैं सार ॥ ४ ॥

सुन्दर रचना सामने, अद्भुत और अपार ।
निरख परख उतपन करो, मन में सोच विचार ॥ ५ ॥

रचना अपने पिता की, लख लख प्यार बढ़ाउ ।
सोचो रोओ मनहिँ मन, कस पितु दर्शन पाउ ॥ ६ ॥

संसारिन का संग तज, भक्तन का सँग धार ।
संसारिन की बार्ता, खींचै जगत मँझार ॥ ७ ॥

दृश्य तमाशे जो करैं, बुरे ख़्याल उत्पन्न ।
उन्हें कभी देखो नहीं, वृत्ती हो छिन भिन्न ॥ ८ ॥

मनोराज संसार का, करौ न खाली बैठ ।
पिय सँग परम बिलास के, मनोराज में पैठ ॥ ९ ॥

मनोराज के चित्र पड़, मनाकाश के माहिँ ।
जौन तरफ़ के चित्र हों, तहँ को सुरत झुकाहिँ ॥१०॥

मन की निगरानी करौ, हो कर सदा सचेत ।
जब कुचाल देखौ तभी, गुरु सुमिरन से रेत ॥११॥

खाने में यह कर नियम बहुत पेट मत तान ।
भोजन में बहु स्वाद के, करत रहौ गुरु ध्यान ॥१२॥

निरख परख आहार कर, पर धन बुरा न खाउ ।
जहाँ कहीं नहिँ बच सकौ, कोइ बिधि बदल चुकाउ ॥१३॥

भोजन नित सात्विकी कर, तमो गुणी को त्याग ।
शुद्ध विचार रहैं सदा, घटै विकारी आग ॥१४॥

'धारा सिंधु प्रताप' का यह है निज उपदेश।
सोई निज हिरदे धरौ, नाशै काल कलेश ॥१५॥

अंग चौथा.

॥ दोहा ॥

आदर और सत्कार की, मन से चाह निकार।
मान बड़ाई छोड़ कर, रहौ दीनता धार ॥ १ ॥
नाहक़ बेजा दुख कभी, नहीं किसी को देउ।
जहँ तक बनै प्रसन्न कर, दुआ सबन की लेउ ॥ २ ॥
जब अपनी निन्दा सुनो, दुखी न हो मन माहिँ।
निन्दक जन तुमको सदा, बहुत लाभ पहुँचाहिँ ॥ ३ ॥
कभी किसी से अकड़कर, कड़ुआ बचन न बोल।
मुँह से बात निकालिये, अपने मन में तोल ॥ ४ ॥
दिन दिन चाहें जगत की, मन से काढ़त जाउ।
जग के लाभ और हानि में, मन में दुख मत पाउ ॥ ५ ॥
दुख सुख आवैं मौज से, कर्म कटावन हेत।
कर्म कटे बिन मिलै नहिँ, भौ सागर का सेत ॥ ६ ॥
जगत वस्तु या काम के, शौक़ जो हों मन माहिँ।
छोड़ो सब वे भक्ति में, बाधा बहुत कराहिं ॥ ७ ॥
जाति पाँति के भर्म सब, मन से दूर हटाउ।
सबसे ऊंचे भक्त हैं, जिन हिय गुरु पद भाउ ॥ ८ ॥
परम पिता पद कँवल का, प्रेम ऐसा हिय पाल।
जग नाते की प्रीति सब, वाके नीचे डाल ॥ ९ ॥

काम क्रोध की धार में, मन पर क़ाबू राख।
काहू के सम्बन्ध में, बुरे शब्द मत भाख ॥१०॥
कभी न पर निन्दा करौ, जब चित नहीं परार्थ।
निज जन रक्षा कारनें, बोलो बचन यथार्थ ॥११॥
शतरँज ताश और गंजफ़ा, चौपड़ आदिक खेल।
जिनको धत इनकी रहै, उनसे करौ न मेल ॥१२॥
पठन निरर्थक लेख का, मन बहलावन काज।
यह स्वभाव हू करत है, भक्ती माहिँ अकाज ॥१३॥
इन सब बातन में समय, होय बहुत बरबाद।
बाहर बिरती बिखर कें, बिसरावैं गुरु याद ॥१४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' की, दया लेउ नित संग।
ऐसी रहनी रहु सदा, होय न भक्ती भंग ॥१५॥

प्रश्नोत्तर.

शब्द २४१.

सतगुरु चरनन माथ नवाकर। पूछै सुरत कहो करुणा कर ॥ १ ॥
कुछ शंका मेरे मन आई। समाधान सो करौ गुसाईं ॥ २ ॥
पहिली मोक्ष स्वरूप विषय में। उठी नाथ अस मम हिरदय में ॥ ३ ॥
मोक्ष गती संतन अस भाखी। सुरत भिन्नता क़ायम राखी ॥ ४ ॥
बुन्दें रहैं सिन्धु के अन्तर। सुरत स्वरूपी आपा धर धर ॥ ५ ॥
कभी केन्द्र सँग इक हो जावैं। परम शान्ती रूप धरावैं ॥ ६ ॥
कभी केन्द्र के बाहर आवैं। भिन्न होय दरशन रस पावैं ॥ ७ ॥
कभी अगम कभी अलख लोक में। लेहिँ परम सुख हंस थोक में॥ ८ ॥

कभी जाहिँ सतलोक मँझारी। भोगैं हंसन सँग सुख भारी ॥ ९ ॥
परम शान्ति और परमानन्दा । दोनों गति भोगैं निरद्वन्दा ॥१०॥
यह कैसे सम्भव है बाता । बुँद रहि भिन कस सिन्धु समाता॥११॥
जब जल में जल बुन्द समावै। दुई मिटाय एक हो जावै ॥१२॥
चहै जो जल से पुरुष अनारी । वही ख़ास बुँद करूँ नियारी ॥१३॥
कितनहि ढूँढ़ै पता न पावै । वह जल सँग इक अँग हो जावै ॥१४॥
चहै तो दूसर बुन्द उठावै। वही ख़ास बुँद हाथ न आवै ॥१५॥
सुरत बुंद कस केन्द्र समावै। अन्तर भिन रह फिर अलगावै ॥१६॥
वेद शास्त्र जो मोक्ष बखानी । सायुज मुक्ती पूरन मानी ॥१७॥
आतम बुँद जब ब्रह्म समावै। जल बुँद सम आपा मिट जावै ॥१८॥
ब्रह्म सिन्धु में अस लय होवै । भिन्न ज्ञान सुधि बुधि सब खोवै ॥१९॥
जस यहँ जिव तन से अलगावै । जिवधारी तब मृतक कहावै ॥२०॥
मौत असल में तन को आवै । जीव अमर दूसर तन पावै ॥२१॥
तस सायुज्ज मुक्ति में आतम । अस लय होय मध्य परमातम ॥२२॥
मानो जीव अमर मर जाई । आपा सब विधि जाय नसाई ॥२३॥
मैं नहिँ समझा बात तुम्हारी । बुन्द भिन्न रहै सिंधु मँझारी ॥२४॥
'धारा सिँधु प्रताप' पद नीती । कहौ रहै कस प्रेमी प्रीती ॥२५॥
तब सतगुरु ने भेद बताया । अकह बना जो कहत सो गाया॥२६॥
जो उदाहरण तुमने दीन्हा । ता में जड़ तुम चेतन चीन्हा ॥२७॥
जल है जड़ पूरन अज्ञानी । आतम चेतन पूरन ज्ञानी ॥२८॥
जड़ उदाहरण चेतन माहीं । किंचित मात्र सकै घटि नाहीं ॥२९॥
करूं मैं अब थोड़ा विस्तारा । जस सुरतन को केन्द्र निकारा ॥३०॥
जब यह रचना नहिँ प्रगटाई । उनमुन दशा अनन्त रहाई ॥३१॥

एक ही एक न दूसर कोई । सो वह सुन्न समाध समोई ।।३२।।
कुल अनन्त में केन्द्र रहाना । जिमि शिशुमार चक्र में भाना ।।३३।।
चेतन सीमा रहित रहाना । चेतन में इक केन्द्र अस्थाना ।।३४।।
जिमि तन में है मग़ज़ ठिकाना । तन चेतन का केन्द्र अस्थाना ।।३५।।
खुली अवस्था उनमुन जब ही । धारें छुटीं केंद्र से तब ही ।।३६।।
मालिक का पुनि जगा प्रेम अँग । पर कोइ प्रीतम दिखा नहीं सँग ।।३७।।
तब निज धारें करीं भिन्न उन । सो भईं प्रीतम सुरतें बन बन ।।३८।।
मालिक का प्रेम अंग निवारन । यही हुआ रचना का कारन ।।३९।।
सुरतन को दे चेतन आपा । भिन्न रूप इक इक का थापा ।।४०।।
सब सुरतें हैं ज्ञान स्वरूपा । प्रेम रूप और आनँद रूपा ।।४१।।
भिन्न रूप इसका जो फूटै । तो रचना का कारन टूटै ।।४२।।
सिंधु प्रेम अँग जो मिट जावै । तो सुत सिंधु अभिन्न समावै ।।४३।।
नासै नहिँ जो सिंधु प्रेम अँग । कभी न हो सुत का आपा भँग ।।४४।।
प्रेम अंग तो कभी न नाशै । सुत भी भिन्न सदा परकासै ।।४५।।
सुरत सिन्धु में रहै समाई । जस मछली जल माहिँ रहाई ।।४६।।
ज्ञान रूप भिन हुआ जो क़ायम । रहेगा हर हालत में दायम[1] ।।४७।।
जहाँ जाय निज ज्ञान ले संगा । वह कैसे हो सकता भंगा ।।४८।।
ज्ञान अभंग भिन्न रहै सूरत । कुल मालिक की प्रेमी मूरत ।।४९।।
फिर सुत का सिन्धू में आपा । सो जानो चैतन्य निरापा ।।५०।।
रहै अभेद भिन्नता सुत की । यहाँ न आय समझ वा गति की ।।५१।।
सिन्धु केन्द्र जो मौज उठावै । एक संग सब माहिँ समावै ।।५२।।
ताते एक अनेकन जानो । प्रेमी प्रीतम एक पिछानो ।।५३।।
वेद शास्त्र गति ब्रह्म अण्ड तक । कोई लक्ष कोई है वाचक ।।५४।।

१ सदा रहनेवाला.

ब्रह्म अण्ड तक मुक्ति अधूरी। पूरन कर्म होंय नहिँ चूरी ॥५५॥
सायुज मुक्ती जो जिव पावै। ताहि समाधी निद्रा आवै ॥५६॥
सोता रहै लक्ष के बीचै। धोखा खुलै प्रलय के पीछै ॥५७॥
वेद शास्त्र त्रय लोक बँधाने। चौथे पद का पता न जाने ॥५८॥
वे और उनके कर्ता क्षय में। नाश होंय सिमटें परलय में ॥५९॥
परलय पीछे जो घटना हो। वे क्या जान सकें फिर वाको ॥६०॥
संत जो रहें अमर पद बीचे। वहँ से देखें होय जो नीचे ॥६१॥
संत देश प्रेमानँद धामा। पूरन प्रेम परम सुख ग्रामा ॥६२॥
रचा जौन हित यह पद मूरा। सुरत भिन्नता से हो पूरा ॥६३॥
ताते अमर सुरत हैं सब ही। होंय न लय जल बुँद सम कबही ॥६४॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया। सो मैं ने सब दीन्ह बुझाया ॥६५॥

शब्द २४२.

सुनो दूसरी शंका दाता। माया काल की है यह बाता ॥ १ ॥
तुमने हि मायक सृष्टि रचाई। तुमने हि माया काल उपजाई ॥ २ ॥
तुमने हि निज सुरतें फँसवाईं। चौरासी लख योनि बनाईं ॥ ३ ॥
तुमने हि जम और नर्क रचाये। तुमने हिं कर्म फंद बनवाये ॥ ४ ॥
त्रय गुण पाँच तत्व उपजाये। पाँच दूत सँग जीव बँधाये ॥ ५ ॥
तुम हीं उन्हें सबन को पोसौ। पुनि बैरी कह, सब को कोसौ ॥ ६ ॥
तुम हीं देउ सबन को गालीं। दुष्टन ने सुरतें फँसवालीं ॥ ७ ॥
याका कारण मोहि बताओ। मन का भ्रम सब दूर कराओ ॥ ८ ॥
तब सतगुरु ने कह समझाया। काल जाल हम ही रचवाया ॥ ९ ॥
जम माया कालादि रचाये। सुरत अंश हम ही फँसवाये ॥१०॥
लहर रूप सतगुरु को जानो। जो सिंधू से नहिँ अलगानो ॥११॥

माया काल आदि हू लहरें। छोटी बड़ी सिंधु की नहरें ॥१२॥
सृष्टि रचन इनका है काजा। मायक सृष्टि के हैं यह राजा ॥१३॥
इन्हें सुपुर्द है जाल बनाना। दुख अनुभव हित जीव फँसाना ॥१४॥
सतगुरु आवैं जीव उबारन। काल जाल से जीव निकारन ॥१५॥
दोनों के हैं विरुद्ध काजा। इक दूसर का करैं अकाजा ॥१६॥
काल से गुरू घृणा करवावैं। सुरतें उन से दूर हटावैं ॥१७॥
बिन उन की कृत बुरी बताए। सुरत अजान घृणा कस खाए ॥१८॥
जब तक सुरत न घिरणा खाये। तज उन को गुरु ढिँग कस आये॥१९॥
कैसे नफ़रत करै भोग से। कैसे छूटै काल रोग से ॥२०॥
कैसे जगत चाह को त्यागै। कैसे काल जाल तज भागै ॥२१॥
गुर करतब का यह इक अंगा। निन्दा बिन करतब हो भंगा॥२२॥
सिन्धु लहर जब गुरु तन धारै। सिन्धु काज इक ख़ास सम्हारै॥२३॥
कारज में आवश्यकता जो। गुरु को पूरी करन पड़ै सो ॥२४॥
धारैं सिन्धु रूप सतगुरु जब। काल काम लख स्याहैं वे तब ॥२५॥
दोनों मदद सिन्धु से पावैं। परम लक्ष्य पूरा करवावैं ॥२६॥
शक्ती चहिये जिसको जितनी। सिन्धू देवै उस को उतनी ॥२७॥
गुरु को चहिये अधिक काल से। तब तो जीव छुड़ायें जाल से ॥२८॥
ताते गुरू अधिक बलवाना। करैं काल को .जेर निमाना ॥२९॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बखाना। सो सेवक ने किया बयाना ॥३०॥

शब्द २४३.

प्रश्न तीसरा हाथ जोड़ कर। अर्ज़ करै सुत आरत होकर ॥ १ ॥
जो सुरतें तुम लेउ उबारा। आवें क्या भव माहिँ दुबारा ॥ २ ॥
जो वे फिर फिर भव में आवैं। काल जाल में फिर फँस जावैं ॥ ३ ॥

तो कैसी यह पूरण मुक्ती । झूंठी होय संत मत युक्ती ॥ ४ ॥
जो सुरतें यहँ लौट न आवैं । अरु सब क्रम क्रम सिंधु समावैं ॥ ५ ॥
दुख अनुभव पूरे कर कर सब ।लौट जाहिं इक दिन निज घर जब॥ ६ ॥
पिण्ड अण्ड ब्रह्मण्ड हो खाली । रहैं अकेले काल अरु काली ॥ ७ ॥
उजड़ जाँइ त्रय लोक अनन्ता । प्रजा बिहीन रहैं भगवन्ता ॥ ८ ॥
फिर क्या काल हु सिंधु समावै । वह बिन सन्त मुक्ति कस पावै॥ ९ ॥
जो कहो भव सृष्टी नहिँ उजड़ै । काल देश यह कभी न बिगड़ै ॥१०॥
तो क्या सुरतें नई नई आवैं । क्या प्रभु सुरतें नई बनावैं ॥११॥
यह सब भेद खोल बतलाओ । मन की शंका दूर कराओ ॥१२॥
तब गुरु बचन दया कर बोले ।भेद कहूं मैं तुम से खोले ॥१३॥
भव सृष्टी बिगड़ै नहिँ भाई । सुरतें आवत रहैं सदाही ॥१४॥
काल लौट घर को नहिँ जावै । याका काम अनन्त रहावै ॥१५॥
हर इक सुरत एक ही बारा । आवै यहँ नहिँ आय दुबारा ॥१६॥
पूरा किया दुःख अनुभव जिन । फिर आने का कौन प्रयोजन ॥१७॥
पूरन दुख अनुभव सुरत पाकर । रहै सदा सुख धाम समाकर ॥१८॥
जो यहँ सुरतें नईं न आवैं । इक दिन लोक शून्य हो जावैं ॥१९॥
नई सुरतें कैसे हों पैदा । याका तुम्हें बताऊं भेदा ॥२०॥
सिंधु केन्द्र आकर्षण शक्ती । बेकारी में रह नहिं सक्ती ॥२१॥
सर्व ओर से चेतन किरनी । खींचत रहै सदा लँग अपनी ॥२२॥
वही किरनियाँ केन्द्र निकालै । सुरत रूप दे बाहर डालै ॥२३॥
सब लँग चेतन भरा अपारा । कभी न चुकै वार नहिँ पारा ॥२४॥
जो चैतन्य कभी चुक जावै । तो अपारता ही मिट जावै ॥२५॥
जो चुकने का करौ विचारा । तो न कहो है सिन्धु अपारा ॥२६॥

यही सिन्धु की है अपारता । कितनाही दे कभी न चुकता ॥२७॥
तिस पर भी जितना वह देता । सुरत रूप में फिर लेलेता ॥२८॥
सर्व ओर चैतन्य पसारा । सदा अथाह अनन्त अपारा ॥२९॥
जो यह बुद्धी माहिँ समावै । तो न अनन्त अपार रहावै ॥३०॥
काहू की गम या में नाहीं । अगम अपार अनन्त अथाहीं ॥३१॥
ताते कभी न सृष्टी उजड़ै । काल राज भी कभी न बिगड़ै ॥३२॥
परलय और महा परलय में । हैं जो सुरतें सो सब सिमटैं ॥३३॥
सिमटैं यह सब भँवर गुफा में । प्रलय नहीं सतलोक सफ़ा में ॥३४॥
दुख अनुभव पूरा हो नाहीं । फिर फिर लौटैं भव के माहीं ॥३५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया । सो उनके सेवक ने गाया ॥३६॥

शब्द २४४.

सुनो दयानिधि सतगुरु स्वामी । सुरत कहै कर चरण प्रणामी ॥ १ ॥
ओर इक प्रश्न उठा मम मन में । सो कर जोर धरूं चरनन में ॥ २ ॥
प्रलय महा परलय क्यों होवै । तज निज काज काल क्यों सोवै ॥ ३ ॥
सतगुरु कहा सुरत सुन बचना । जितनी है यह मायक रचना ॥ ४ ॥
पिण्ड अण्ड ब्रह्मण्ड महासुन । माया काल और तीनों गुन ॥ ५ ॥
यह सब सिमटैं परलय माहीं । दयाल देश में परलय नाहीं ॥ ६ ॥
निज पुर चेतन रचना फैली । नीचे चेतन माया मेली ॥ ७ ॥
चेतन रहता सदा एक रस । माया है परिवर्तन के बस ॥ ८ ॥
जहँ माया अस्थूल रहावै । वहँ परिवरतन जल्दी आवै ॥ ९ ॥
माया जितनी सूक्षम है जहँ । उतनी देरी में बदलै तहँ ॥१०॥
माया है अस्थूल पिण्ड में । वहँ से सूक्षम ब्रह्म अण्ड में ॥११॥
पिण्ड अण्ड परलय अस्थाना । महाप्रलय ब्रह्मण्ड ठिकाना ॥१२॥

महा प्रलय बहु परलय पीछे। होय ब्रह्मण्ड महासुन बीचे ॥१३॥
काम आराम नियम माया का। परिवर्तन सबकी काया का ॥१४॥
काल अंश मन की जो रीती। सोई काल अंशी की नीती ॥१५॥
काम करै मन पुनि आरामा। तैसेहि काल करै विश्रामा ॥१६॥
काल और सभी काल कारिन्दा। इक दिन सब ही होवैं मुरदा॥१७॥
मायक तन सबके हों जर जर। सो वे त्याग जाँय खिँच ऊपर ॥१८॥
खिचै धार जब सृष्टि करन की। चलै हवा सब जीव मरन की ॥१९॥
तत्वादिक सूक्षम गति पावैं। जीव काल की स्वाँस समावैं ॥२०॥
पृथ्वी जल हो जल हो अग्नी। अग्नी मिट हो जावै पवनी ॥२१॥
पवन बदल होवै आकाशा। होय अकाश महा आकाशा ॥२२॥
महाकाश परमाणू रूपा। तिमिर धुन्ध रहै छाय कुरूपा ॥२३॥
परलय धार अण्ड तक सिमटै। महाप्रलय सोहँग में चिमटै ॥२४॥
परलय महाप्रलय का कारन। गुरु से सुन मैं कीन्हा वर्णन ॥२५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' शरण लो। परलय महाप्रलय सब तज दो ॥२६॥

शब्द २४५.

पंचम प्रश्न गुरू के आगे। सुरत सखी धर चरनन लागे ॥२७॥
इतने लोक और इतनी योनी। किमि कारण मालिक रच दीनी ॥ २ ॥
क्यों इतना उन किया पसारा। दिखै अगम मायक संसारा ॥ ३ ॥
योनिन का नहिँ रहा शुमारा ॥दुख अनुभव हो गया अपारा ॥ ४ ॥
तब सतगुरु ने दीन जवाबा। कर्मन ने सब किया ख़राबा ॥ ५ ॥
निरमल चेतन धाम जो चारी। जानो सब हुज़ूर दरबारी ॥ ६ ॥
कुल मालिक की है रजधानी। ज्ञान प्रेम आनँद की खानी ॥ ७ ॥
चतुर रूप मालिक जहँ धारा। निज प्रेमिन सँग करै बिहारा ॥ ८ ॥

प्रेमी प्रीतम सिवा न कोई। औरन की वहँ गम नहिँ होई ॥ ९ ॥
असली रचना वही पिछानौ। दूसर सृष्टि सहायक मानौ ॥१०॥
जस युवराज रहै विद्यालय। मार पीट का सहै दुःख भय ॥११॥
जब पढ़ लिख लायक़ बन जावै। तख़्त ताज का आनँद पावै ॥१२॥
नीचे की जो सृष्टी होई। विद्यालय सम जानौ सोई ॥१३॥
ये सब दुख अनुभव करवावै। जीवन सुख के योग बनावै ॥१४॥
बँदोबस्त दुख अनुभव काजा। शुरू हुआ जहँ सोहँ बाजा ॥१५॥
कर्म दुःख का कारन ठाना। लगा कर्म को बहु सामाना ॥१६॥
अहंकार इच्छा अरु क्रोधा। लोभ मोह और द्वेश विरोधा ॥१७॥
निज मन बुद्धी अरु पिण्डी मन। प्रकृति पाँच तत और तीनों गुन॥१८॥
कर्म व ज्ञान इन्द्री और नर तन। विषय भोग तन बाहर भिन भिन॥१९॥
जिन परमाणुन से यह सामा। बन सकती थी जिन २ ठामा॥२०॥
तहाँ तहाँ गये लोक रचाये। आवश्यक सामान बनाये ॥२१॥
भँवर गुफा है अह ठिकाना। सूक्षम तम महासुन्न रहाना ॥२२॥
अक्षर धाम है काम स्थाना। इच्छा उठै अहँग तन नाना ॥२३॥
बहुत दिवस इतनी रही रचना। हुआ न अनुभव चहिये जितना॥२४॥
पुनि त्रिकुटी अस्थान रचाई। मन और क्रोध जहाँ उपजाई ॥२५॥
सूक्षम गुण और तत्व रचाए। सगुण सृष्टि यहँ से फैलाए ॥२६॥
कँवल सहस दल रचना नीचे। लोभ मोह उपजे ता बीचे ॥२७॥
ताके नीचे अण्ड रचाना। त्रय गुण का त्रय देव ठिकाना ॥२८॥
पुनि इक लोक विराट बनाया। अग्र सृष्टि नक़्शा बनवाया ॥२९॥
नीचे माया लोक रचाई। शक्ती रानी तहाँ बिठाई ॥३०॥
फिर त्रय गुण देवन निज लोका। रचे बसाये निज गण थोका॥३१॥

पिण्डी मन महेश अस्थाना। दीर्घ विकारों का वह थाना ॥३२॥
फिर शुभ कर्म फलों के धामा। इन्द्र पुरी और स्वर्ग गिरामा॥३३॥
रचे रचा पुनि लोक गणेशा। पित्र अरु प्रेत योनि का देशा॥३४॥
मृत्यु लोक रच राखा नीचे। इन्द्री विषय बने ता बीचे ॥३५॥
यह है पूरण कर्म अस्थाना। दुख सुख फल सब यहीं कमाना॥३६॥
चौरासी लख योनि बनाई। कर्म भिन्नता जस जस पाई ॥३७॥
यह सब कर्म भोग अस्थाना। नर्क तलादि लोक हैं नाना ॥३८॥
भँवर गुफा से लोक पताला। जानो दुख अनुभव का जाला ॥३९॥
यह सब रचना तुच्छ और छोटी। नाशमान दुखदाई खोटी ॥४०॥
जीव न जानें निज घर सारा। ताते दीखै यही अपारा ॥४१॥
'धारा सिन्धु प्रताप' उजियारा। मिलै छुटै जब यह अँधियारा॥४२॥

शब्द २४६.

छटवाँ प्रश्न करै सुत प्यारी। गुरु दयाल की चरण अधारी ॥ १ ॥
सुरतें सब सत लोक मँझारी। एक ही दशा माहिँ थीं सारी ॥ २ ॥
भँवर गुफा में धारे सबहिन। एक रूप के अहंकार तन ॥ ३ ॥
यक सां दशा व रूप सभी धर। आईं नीचे उतर उतर कर ॥ ४ ॥
फिर कस फ़रक़ हो गया उनमें। हो गईं दशा रूप भिन भिन में॥ ५ ॥
रहीं निः करम सत्पुर माहीं। फिर उन अहंग दुःख कस पाहीं ॥ ६ ॥
तब सत्गुरु ने उत्तर दीन्हा। तुम्हरा भ्रम हमने सब चीन्हा ॥ ७ ॥
मौज दयाल की जो थी इसमें। सो तुमसे कह भाखी सब मैं ॥ ८ ॥
अहंकार तन के धारन को। न थी ज़रूरत कर्म की उनको ॥ ९ ॥
कोई दुःख अहँग तन माहीं। हुआ कभी सुरतन को नाहीं ॥१०॥
आपा धर धर नीचे उतरीं। जहाँ तहाँ सुन माहीं बिखरीं ॥११॥

हँग तन पर तन काम चढ़ाई। ता माहीं इच्छा उपजाई ॥१२॥
यहँ तक एक ही दशा रहाई। आगे भई भिन्नता भाई ॥१३॥
इच्छा विषय रहैं तन बाहर। भाँति भाँति के भिन भिन सुन्दर॥१४॥
इच्छा आपा सहित सुतन्तर। भरी प्रति एक सुरत के अन्तर॥१५॥
दृष्टि पड़े जब भिन्न पदारथ। आपा ने उपजाया स्वारथ ॥१६॥
विचरन के भिन भिन अस्थाना। जहाँ पदारथ भिन भिन नाना॥१७॥
इच्छा उठी प्राप्ती केरी। जहँ सुन्दरता दिखी घनेरी ॥१८॥
इक को लिया एक को छोड़ा। कोइ सुख दायक बहु कोइ थोड़ा ॥१९॥
अब सुख की उपजी अभिलाषा। तितर बितर भई धर धर आशा॥२०॥
लागीं काट छाँट सब करने। भिन भिन भाँति सुक्ख रस भरने॥२१॥
भई भिन्नता भोग नशा की। सो पड़ गइ जड़ भिन्न दशा की ॥२२॥
बढ़त गई यह भोग भिन्नता। दशा एकता की भइ हरता ॥२३॥
जैसे जैसे नीचे उतरीं। अधिक भिन्नता में सब पसरीं ॥२४॥
भिन्न दशा से भए रूप भिन। भिन्न रूप के धरत गईं तन ॥२५॥
बाहर की भिनता ने अन्तर। किया एकता में रूपन्तर ॥२६॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया। कारण भिन्न दशा का गाया ॥२७॥

शब्द २४७.

सप्तम प्रश्न सुरत ने कीन्हा। सतगुरु दयाल मौज आधीना ॥ १ ॥
सन्तन ने जो कँवल बताए। भिन्न भिन्न उनके दल गाए ॥ २ ॥
सो यह कँवल कहाँ से आए। कौन पदारथ कँवल कहाए ॥ ३ ॥
प्रति अस्थान धनी का रूपा। बतलाया उन कँवल सरूपा ॥ ४ ॥
कँवल रूप क्यों उन्हें बताए। दल उनमें कैसे गिनवाए ॥ ५ ॥
तब सतगुरु ने भेद बताया। कँवलन का सब हाल सुनाया ॥ ६ ॥

सिन्धु केन्द्र जब सम्पट खोली । जब उनमुनी अवस्था डोली ॥ ७ ॥
सृष्टी की उन मौज उठाई । निज स्वरूप से धार बहाई ॥ ८ ॥
एक बड़ी धारा भइ जारी । चैतन सृष्टि रचावन हारी ॥ ९ ॥
वही धार नीचे को पैठी । अगम अलख सतरूप हो बैठी ॥१०॥
फिर मायक सृष्टी की धारा । आई नीचे सुन्न मँझारा ॥११॥
तहाँ असंखन धारें बिखरीं । ठेके लेतीं लेतीं उतरीं ॥१२॥
बड़े वेग अरु बड़े ज़ोर से । धारें उतरीं शब्द शोर से ॥१३॥
जहाँ जहाँ उन ठेके लीन्हे । चेतन झील तहीं रच दीन्हे ॥१४॥
गिरत धार रहि झील मँझारी । धार वेग ज्यों का त्यों जारी ॥१५॥
एकहि ठौर सदा वह गिरती । झील माँहि गड्ढा सा करती ॥१६॥
बनै वह गड्ढा कँवल फूल सम । लघु धारें उठतीं जहँ दम दम॥१७॥
लघु धारें गड्ढा में फूटीं । कई इक और तली से छूटीं ॥१८॥
उनकी शकल कँवल दल केरी । सो सन्तन निज नैनन हेरी॥१९॥
ज़ोर अधिक कम जहँ जस होई । तहँ फूटें तितने दल सोई ॥२०॥
चेतन मलिन और निर्मल पर । रहै शुमार दलन का निर्भर ॥२१॥
जस जल में जल धार गिरै जहँ । गड्ढा एक बनावै वह तहँ ॥२२॥
लघु धारें वाहू में फूटें । वेग अनुसार कई इक छूटें ॥२३॥
सब भगवन्त कँवल मुख धर कर । बैठे सृष्टिकरन्ता बन कर॥२४॥
जो गुरु कारण कँवल दलन का । भाख हटाया भ्रम मम मन का॥२५॥
सो सब मैंने तुम्हें सुनाया । 'धारा सिँधु प्रताप' गुन गाया ॥२६॥

शब्द २४८.

अष्टम प्रश्न सुरत यों करती । सतगुरु चरन हिये में धरती ॥ १ ॥
घट प्रकाश का जो अनुमाना । तुमने भिन भिन किया बखाना॥ २ ॥

सो सुन शंका उपजी मम मन । दूर करो सो प्रभु दुखभंजन ॥ ३ ॥
दिक्षा में जो रूप बताये । प्रति इक के प्रकाश समझाये ॥ ४ ॥
पुनि वचननि में रूप सुनाये । उनके अन्य प्रकाश बताये ॥ ५ ॥
बड़ी भिन्नता दोनों माँहीं । याका कारण कहो गुसाईं ॥ ६ ॥
तब सत्गुरु सब भेद बताया । भली भाँति कारण समझाया ॥ ७ ॥
बचननि में जो कहे प्रकाशा । सो हैं अन्तर विश्व अकाशा ॥ ८ ॥
दीक्षा में जो कहे स्वरूपा । सो हैं अन्तर सुषमन कूपा ॥ ९ ॥
विश्व अकाश प्रकाश जो गाया । सो सब सृष्टि धार से आया॥१०॥
सुषमन है इक खोल सुरत पर। सुरत धार बहती तिस अन्तर॥११॥
ज्यों ज्यों सुरत उतरती आई । प्रति इक लोक आवरण लाई ॥१२॥
प्रति आवरण–केन्द्र अस्थाना । लोक धनी का रूप निशाना॥१३॥
वही आवरण नैन ठिकाना । वही गया है कँवल बखाना ॥१४॥
ताहि असल की नक़ल पिछानो । सुरत चढ़ावन मारग जानो॥१५॥
उसका मेल लोक से होई । जहँ से चढ़ा आवरण जोई ॥१६॥
घट सरूप मारग अस्थाना । जिसमें घुस स्रुत करे पयाना ॥१७॥
मग से उतर लोक धस जावे । जो सत्गुरु की मरज़ी पावे ॥१८॥
गौन अंग से चढ़े सुरत जब । सत्गुरु लोक न देखन दें तब ॥१९॥
जो सत्गुरु मग लोक दिखावें। सुरतें सुख समाय रुक जावें ॥२०॥
गौन चढ़ाई में गुरु ताते । नक़ल रूप स्रुत को दरसाते ॥२१॥
सतगुरु दृष्टी खोलें उतनी । जानें उचित सुरत को जितनी ॥२२॥
उतनी झलक रूप की आवै । जितना गुरु को उचित दिखावै ॥२३॥
मुख्य अंग से चढ़े सुरत जब । दरसैं विश्व स्वरूप असल तब ॥२४॥
तब दरसै पूरन परकाशा । लोक लोक के दिखें अकाशा ॥२५॥

विश्व अरु घट प्रकाश का भेदा। समझ मिटाओ मन का खेदा॥२६॥
करत रहो धर प्रीति कमाई। इक दिन स्वयं भेद खुल जाई॥२७॥
'धारा सिन्धु प्रताप' बताया। सो सेवक ने भाख सुनाया॥२८॥

शब्द २४९.

सुरत प्रश्न इक और उठाया। सतगुरु को कर जोर सुनाया॥ १॥
काम क्रोध मद आदि रचे जो। पृथक अस्थान भए उनके सो॥ २॥
जहँ जैसे परमाणु रहाए। तहँ से तैसे अँग प्रगटाए॥ ३॥
क्या तरतीब ख़ास कोइ उनकी। या भई ऊट पटाँग सबन की॥ ४॥
यह समझाओ कर निरधारा। भ्रम सब दूर कराउ हमारा॥ ५॥
तब सतगुरु ने उत्तर दीन्हा। सब रचना है मौज अधीना॥ ६॥
परमाणू भिन भिन्न प्रकारा। फैले थे सब शून्य मँझारा॥ ७॥
सिन्धु मौज से छट एकत्रित। भये जहाँ जस रही ज़रूरत॥ ८॥
तहँ तहँ सृष्टि धार ने ठेका। ले रच दीन्हें लोक अनेका॥ ९॥
सुनो ज़रूरत का अब लेखा। तुम्हरे मन जो हुआ परेखा॥१०॥
आतम द्याल देश से आई। जहाँ एकता भाव रहाई॥११॥
सृष्टि लक्ष था अनुभव दुख का। ताको चहिये सँग कुछ सुख का॥१२॥
जो सुख सँभव नहीं बिना दुख। दुख हू संभव नहीं बिना सुख॥१३॥
ताते करम शुभाशुभ चहिये। दुख अनुभव को सुख कुछ लहिये॥१४॥
कर्म को चहिये कुछ सामाना। इच्छा और पदारथ नाना॥१५॥
मन में इच्छा भोग जगत में। दोनों बीच इन्द्रियाँ बट में॥१६॥
मन को चहिये औरहु प्रेरक। काम क्रोध और मद मोहादिक॥१७॥
यह सब मन में तरँग उठावें। विषय भोग को मन ललचावें॥१८॥
आवै तरँग ज्ञान इन्द्रिन में। वे चौकन्नो होवें तन में॥१९॥

इन्द्री परखें जगत पदारथ । करै कौन पूरा मन स्वारथ ॥२०॥
परख ख़बर मन को पहुँचावे । तब मन कर्म इन्द्री उकसावै ॥२१॥
कर्म इन्द्रियाँ करें कर्म तब । बनें मनुष से धर्म अधर्म सब ॥२२॥
होवै काज तभी उपजै सुख । विघ्न पड़ै उपजै तब ही दुख ॥२३॥
क्रोध मोह और लोभ विकारा । यह सब हैं इच्छा की लारा ॥२४॥
इच्छा नहिँ उपजै हँगता बिन । ताते पहिले हुआ अहं तन ॥२५॥
सोहँ लोक रचा इस कारन । पुनि सुन में बख़्शा इच्छा तन ॥२६॥
इच्छा पूरन होय न जब ही । क्रोध अंग प्रगटै घट तब ही ॥२७॥
त्रिकुटी में जड़ राखी ताकी । पुनि नीचे उपजे अँग बाक़ी ॥२८॥
मोह लोभ पीछे उत्पाने । कँवल सहसदल में प्रगटाने ॥२९॥
जब इच्छा मन की हुई पूरन । मिला पदारथ हुआ मगन मन ॥३०॥
उपजा प्यार पदारथ में जब । जमी मोह की जड़ मन में तब ॥३१॥
मन नहिँ चाहे तजन मोह बस । हुआ यहीं से प्रगट लोभ रस॥३२॥
पहिले इच्छा नहीं पुराई । क्रोध धार तासे उपजाई ॥३३॥
फिर इच्छा पूरन करवाई । मोह लोभ तासे उपजाई ॥३४॥
जो पहिले इच्छा पुरवाते । तो सब जीव वहीं रुक जाते ॥३५॥
ताते इच्छा निष्फल की जड़ । प्रथम जमाई गइ त्रिकुटी गढ़ ॥३६॥
नीचे जो इच्छा भइ पूरी । रही सफलता सदा अधूरी ॥३७॥
निष्फलता त्रिकुटी से आई । सर्व सफलता माहिँ समाई ॥३८॥
ताते तृप्ती कभी न होई । इच्छा अँग मन कभी न खोई ॥३९॥
इच्छा सफल प्रथम जो होती । वहीं सृष्टि सब रहती सोती ॥४०॥
आगे कोई कर्म न बनते । जीव पाप में कभी न सनते ॥४१॥
सृष्टि लक्ष होता नहिँ पूरा । सुरतें कस पातीं पद मूरा ॥४२॥

अब तुम समझ लेहु मन माहीं । बिन मसलहत रचा कुछ नाहीं ॥४३॥
प्रति वस्तू के रूप ठाम गुण । रचे गये नाहीं बिन कारण ॥४४॥
ऊट पटाँग रचा कुछ नाहीं । बड़ी मसलहत है सब माहीं ॥४५॥
'धारा सिन्धु प्रताप' धियाओ । सब भ्रम छोड़ चरण गुण गाओ॥४६॥

शब्द २५०.

सतगुरु और इक भ्रम मन मोरे । रहत उठावत जग नर बौरे ॥ १ ॥
बहुधा अस घटना होवै जग । करै भक्त की श्रद्धा डगमग ॥ २ ॥
बहुतक पापी दुर आचारी । अन्त समय कुछ कष्ट न धारी ॥ ३ ॥
बिन दुख पाय मृतक हो जावें । क़ायम होश हवास रहावें ॥ ४ ॥
बहुतक योगी भक्त और ज्ञानी । साध महात्मा सन्त सुजानी ॥ ५ ॥
रोग दुःख से प्रान निकालें । कोइ बेहोश न बोलें चालें ॥ ६ ॥
ऐसे उलटे फल क्यों होवें । पापी हँसें भक्त दुख रोवें ॥ ७ ॥
तब सतगुरु ने उत्तर दीन्हा । मूरख नर कुछ भेद न चीन्हा ॥ ८ ॥
तन अस्थूल कर्म का ढाँचा । परारब्ध यह ढालै साँचा ॥ ९ ॥
है यह तीन प्रकार कर्म गति । क्रियामान प्रारब्ध और संचित॥१०॥
मनाकाश में संचित चित्रा । बहुत जन्म के कर्म एकत्रा ॥११॥
उनमें से थोड़े घट जावें । सोई जिव प्रारब्ध बनावें ॥१२॥
परारब्ध से देही बनती । उनहीं से स्वाँसा की गिनती ॥१३॥
जन्म से ले मरने तक दुख सुख । परारब्ध से आवें सम्मुख ॥१४॥
इस ही को नर भाग्य बतावें । याही के बस जीव रहावें ॥१५॥
क्रियावान वे कर्म कहाहीं । जो नर जीवन माहिँ कराहीं ॥१६॥
उन में कुछ प्रारब्ध समावें । बाक़ी संचित में मिल जावें ॥१७॥
.कुदरत कर्म नियम अनुसारा । छाँट करै इनका निरवारा ॥१८॥

संचित कर्म योग से कटते । बिन भोगे प्रारब्ध न हटते ॥१९॥
परारब्ध जैसा जब होई । ताको बदल सकै नहिँ कोई ॥२०॥
कर्मन काट छाँट मिनहाई[1] । कर्म शुभाशुभ फल बदलाई ॥२१॥
कर्म नियम अनुसार न होई । जो जस होवें फल दें सोई ॥२२॥
कभी दो फल ऐसे मिल जावें । मानन में दुख सुख अधिकावें॥२३॥
फल तौ उनके न्यारे होवें । मानन में कुछ तेज़ी खोवें ॥२४॥
अन्त में परारब्ध हो जैसा । दुख सुख का फल देवै तैसा ॥२५॥
अन्त में परारब्ध पतितन का । शुभ हो दुख नहिँ होय मरन का॥२६॥
अन्त में परारब्ध सज्जन का । होइ अशुभ दुख होइ मरन का॥२७॥
कोई जो हैं भक्ती से बेमुख । सहें मृत्यु के पहिले बहु दुख ॥२८॥
कोई भक्त पहिले सुख पावें । अन्त समय दुख में पड़ जावें ॥२९॥
अन्त मध्य में कुछ नहीं भेदा । नाहक़ मन को है यह खेदा ॥३०॥
आयू समय तार एक बन्ता । तामें क्या पहिले क्या अन्ता॥३१॥
मृत्यू के पहिले दुख भोगा । या मृत्यू पर रोगा सोगा ॥३२॥
जब जस कर्म की बारी आवै । तब जिव दुख सुख तैसा पावै॥३३॥
पुन्न पाप और धर्म अधर्मा । तप योगादिक कर्म सुकर्मा ॥३४॥
वर्तमान जीवन के जोई । मृतु से सम्बंधित नहिँ कोई ॥३५॥
मूरख जन समझें नहिँ बूझें । भागहीन को ऐसिहि सूझें ॥३६॥
यह भ्रम मन से देउ निकारी । पुन्न पाप फल से मृतु न्यारी ॥३७॥
परारब्ध दुख सुक्ख करन्ता । मृत्यू है प्रारब्ध का अन्ता ॥३८॥

१. घटाना ।

॥ दोहा ॥

उन सुख दुक्खन के सिवा, क्रियावान से जोय ।
या औरन के कर्म से, जो अपने को होय ॥३९॥

जन्म से पहिले दुःख सुख, नियत सभी हो जाँय ।
परारब्ध बनते समय, समय सहित लिखि जाँय ॥४०॥

'धारा सिन्धु प्रताप' की, जिन पर किरपा होय ।
बाधा उनकी भक्ति में, डालै भ्रम नहिँ कोय ॥४१॥





